सङ्ग्रहग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन

Saṅgrahagranthoṁ meiṁ Pratipādita Vaiśeṣika Darśana

(जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय की पी-एच.डी. शोध-उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध)

शोध-निर्देशक

प्रो. राम नाथ झा

शोध-छात्र

राज किशोर आर्य

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय

नई दिल्ली – 110067

2017

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- ११००६७

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

September 18, 2017

DECLARATION

I declare that the thesis entitled "सङ्ग्रहग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन" **(Saṅgrahagranthoṁ meiṁ Pratipādita Vaiśeṣika Darśana)** *submitted by me for the award of degree of* ***Doctor of Philosophy*** *is an original research work and has not been previously submitted for any other degree or diploma in any other institution/University.*

Rajkishor
21/07/2017
(Raj Kishor Arya)

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली- ११००६७

SPECIAL CENTRE FOR SANSKRIT STUDIES
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
NEW DELHI – 110067

September 18, 2017

CERTIFICATE

The thesis entitled सङ्ग्रहग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन" **(Saṅgrahagranthoṁ meiṁ Pratipādita Vaiśeṣika Darśana)** *submitted by* ***Raj Kishor Arya*** *to Special Centre for Sanskrit Studies, Jawaharlal Nehru University, New Delhi – 110067 for the award of degree of* ***Doctor of Philosophy*** *is an original research work and has not been submitted so far, in part or full, for any other degree or diploma in any University. This may be placed before the examiners for evaluation.*

Prof. Girish Nath Jha
(Chairperson)

PROF. GIRISH NATH JHA
Chairperson
Special Centre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067, INDIA

Prof. Ram Nath Jha
(Supervisor)
28/09/2017

Dr. Ram Nath Jha
Professor
Special Cetre for Sanskrit Studies
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

॥ समर्पण ॥

पूजनीय पिताजी

एवं

माताजी के चरण कमलों

में सविनय समर्पित

....

संकेताक्षर-सूची

अ. द. सं. – अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह

आ. वि. सु. – आर्यविद्यासुधाकर

कि. व. – किरणावली

टी. ग. द्वा. सं. स. का स. अ. – टी.गणपति द्वारा सम्पादित सर्वमतसङ्ग्रह का समीक्षात्मक अध्ययन

त. र. दी. – तर्करहस्यदीपिका

त. भा. – तर्कभाषा

त. सं. – तर्कसङ्ग्रह

त. सं. दी. – तर्कसङ्ग्रहदीपिका

द. मी. – दर्शनमीमांसा

द्वा. द. स. – द्वादशदर्शनसमीक्षणम्

द्वा. द. सो. – द्वादशदर्शनसोपानावलि

न्या.वा.ता.टी. – न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका

न्या. क. – न्यायकन्दली

न्या. सि. मु. – न्यायसिद्धान्तमुक्तावली

प. ध. सं. – पदार्थधर्मसङ्ग्रह

प्र. भि. प्र. – प्रत्यभिज्ञाप्रदीप

प्र. क. मा. – प्रमेयकमलमार्तण्ड

प्र. भे.	–	प्रस्थानभेद
ल. ष. द. स.	–	लघुषड्दर्शनसमुच्चय
वै. सू.	–	वैशेषिक सूत्र
वै. द. प. नि.	–	वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ निरूपण
शा. वा. स.	–	शास्त्रवार्तासमुच्चय
ष. द. समु.	–	षड्दर्शनसमुच्चय (राजशेखर सूरि)
ष. द. नि.	–	षड्दर्शननिर्णय
ष. द. प.	–	षड्दर्शनपरिक्रम
ष. द. स. अ.	–	षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि
ष. द. स. के मू.	–	षड्दर्शनसमुच्चय के मूलाधार
ष. ड. स.	–	षड्दर्शनसमुच्चय
ष. द. प.	–	षड्दर्शनपरिक्रम
स. सि. सं.	–	सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह
स. द. सं.	–	सर्वदर्शनसङ्ग्रह
स. द. कौ.	–	सर्वदर्शनकौमुदी
स. सि. प्र	–	सर्वसिद्धान्तप्रवेशक
स. म. सं.	–	सर्वमतसङ्ग्रह

स.द.सं.के. अ. सां. द. का अ. – सर्वदर्शनसङ्ग्रह के अन्तर्गत साङ्ख्यदर्शन का अध्ययन

Abbreviations

C.I.R	–	Critique of Indian Realism
C.I.P	–	Causation of Indian Philosophy
E.I.P	–	Encyclopaedia of Indian Philosophy
I.P	–	Indian Philosophy
S.N.V.M	–	Studies in Nyaya-Vaisheshika Metaphysics
E.N.V.C	–	Evolution of Nyaya-Vaisheshika Categoriology
C.M.N.V	–	Conception of Matter according to Nyaya-Vaisheshika
I.D.M	–	Indian Definition of Mind
M.S.N.N.L	–	Material for the Study of Navya-Nyaya Logic
P.R.I.P	–	Problem of Relation in Indian Philosophy
P.S.A.H	–	Positive Science of Ancient Hindus
S.N.V.T	–	Studies in Nyaya-Vaisheshika Theism
T.N.V	–	Theism of Nyaya-Vaisheshika
T.S	–	Tarkasamgraha
T.S.D	–	Tarkasamgrahadipika
V.P	–	Vaisheshika Philosophy
V.S	–	Vaisheshika System

आत्मनिवेदन

परमपिता परमेश्वर की असीम कृपादृष्टि, पतितपावनी गायत्री माता के आशीर्वाद तथा गुरुजनों की कृपादृष्टि से ही मैं अकिञ्चन अपना शोध-प्रबन्ध लिख पाया हूँ। इसमें जो दोष हैं वह मेरे हैं तथा जो उत्कृष्टता है, वह सब गुरुजनों का आशीर्वाद है।

सर्वप्रथम मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ, ज्ञानविज्ञान विशारद, छात्रहितैषी, हमेशा आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाले, अपने शोध-निर्देशक परमश्रद्धेय गुरुवर प्रो. राम नाथ झा सर का, जिनके कुशल निर्देशन में मैं अपना शोधकार्य अच्छी तरह से सम्पन्न कर सका। मेरे शोध की प्रत्येक समस्या का समाधान श्रद्धेय गुरु जी ने दूर कर मुझे अनुगृहीत किया। अत: मैं जीवन भर उनका आभारी रहूँगा।

पुनः मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ, परमश्रद्धेया मातृकल्पा, स्नेहदायिनी प्रो० शशिप्रभा कुमार जी का, जिनके कुशल निर्देशन में वैशेषिक दर्शन का ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ एम.फिल. की उपाधि प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ ।

आर्ष गुरूकुल नोएडा के प्राचार्य, श्रद्धेय गुरुवर डॉ० जयेन्द्र कुमार जी का धन्यवाद जिनका आशीर्वाद मेरे ऊपर बचपन से अब तक रहा है। शायद गुरु जी नहीं होते तो मेरे जैसा छात्र कभी भी शिक्षित नहीं हो पाता। गुरु जी का वरदहस्त सदा मेरे ऊपर बना रहा। उन्होंने मुझे बचपन से ही बहुत प्यार व स्नेह प्रदान किया है। जीवन के प्रत्येक विषय की शिक्षा उन्होंने मुझे प्रदान की। गुरु जी आपके लिए मेरे पास कोई शब्द नही है जिससे आपका धन्यवाद ज्ञापित कर सकूँ।

विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र के अध्यक्ष प्रो. गिरीशनाथ झा जी, प्रो० उपेन्द्र राव जी, प्रो. सन्तोष शुक्ल जी, प्रो. रामनाथ झा जी, प्रो. हरीराम मिश्र जी, प्रो. रजनीश मिश्र जी, डॉ० सुधीर कुमार जी, डॉ० टी. महेन्द्र जी, डॉ० सत्यमूर्ति जी, डॉ० पाण्डेय जी, आप सभी के द्वारा प्रदत्त शिक्षा की सहायता से ही यह शोध कर सका हूँ अतः आप सभी का धन्यवाद ज्ञापित करना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।

प्रो. ओमनाथ बिमली जी के प्रति मैं अत्यधिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ जिनके द्वारा मेरे विषय चयन में अत्यधिक सहयोग प्रदान किया गया । मैं धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ प्रो. एच. एस.

प्रसाद सर (दर्शन विभाग, दि. वि. वि.) का, जिन्होंने अनेक शोध सम्बन्धी समस्याओं को दूर कर अनुगृहीत किया ।

श्री व्यङ्कटेश्वर महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय की यशस्विनी, सुभाषिणी प्राचार्या पी. हेमलता रेड्डी जी, वर्तमान संस्कृत विभागाध्यक्ष डॉ० कंवर सिंह सर, डॉ० पुनीता शर्मा, डॉ० उर्वी अग्रवाल जी का भी धन्यवाद ज्ञापित करना चाहता हूँ जिन्होंने मुझे अपने महाविद्यालय में पढ़ाने का अवसर प्रदान कर कृतकृत्य किया ।

डॉ० पङ्कज मिश्र जी, डॉ० बलराम शुक्ल जी, डॉ० सत्यकाम वेदालङ्कार जी (दिल्ली विश्वविद्यालय) तथा हंसराज महाविद्यालय के डॉ० एणाक्षी बनर्जी जी, डॉ० सन्ध्या राठौर जी, डॉ० रणजीत कुमार मिश्र जी, डॉ० ब्रह्मप्रकाश जी, डॉ० अवनीश कुमार जी, डॉ० सतीश मिश्र जी, रतीश झा जी, आप सभी का स्मरण करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। आज भी प्रत्येक समस्या का समाधान मुझे मेरे महाविद्यालय में प्राप्त हो जाता है।

गुरुकुलीय समस्त गुरुजनों सोमनाथ शास्त्री जी, मोहन प्रसाद उपाध्याय जी, भगतसिंह जी, विनोद शास्त्री जी, प्रमोद वेदालंकार जी, मैं आप सभी का धन्यवाद ज्ञापित करना अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

मैं इस शोध-कार्य के लिए जो कुछ भी कर सका हूँ, उसमें मेरे माता-पिता, और बड़े भैया कमल का योगदान अकथनीय है, जिन्होंने तमाम बाधाओं से जूझते हुए भी मेरी शिक्षा को प्राथमिकता दी है। मेरे प्रति उनके अटूट स्नेह और विश्वास ने मुझे सदैव जीवन-संघर्षों से लड़ने की प्रेरणा दी है। मेरे प्रत्येक निर्णय पर अपनी सहज स्वीकृति देकर मुझे अगणित संघर्षों से जूझने और सफल होने की शक्ति देने वाली अपनी बहनों कंचन दीदी, सुमन, पुष्पा, ममता, दीदी, किरन, गुञ्जन आदि का हृदय से ऋणी हूँ । राम बहादुर, कमला भाभी, सीमा जी का भी धन्यवाद करता हूँ।

अपने अग्रजों में डॉ० अनीता स्वामी जी, डॉ० देवेन्द्र सर, डॉ० विश्वबन्धु, डॉ०विश्वेश, डॉ०सर्वेश, डॉ०प्रवीण कुमार, डॉ०मणि शंकर, डॉ०अरविन्द, मेघराज मीणा, प्रदीप शास्त्री, चमन सर, भोलानाथ जी, महेन्द्र यादव, प्रीति मैम, आप सबके सहयोग से मैं अपना कार्य निर्विघ्न कर सका, अतः आप सभी का धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अपने मित्रों में कामाख्या, वरुण, विमल, प्रेमपाल, श्यामलाल, पार्थ सारथि, दिव्या भारती, रामावतार, गजेन्द्र, शतरुद्र, सुमित, नरेश, नीरज, निर्मला, प्रदीप, तथा विशेष रूप से राजेश कुमार

(दि.वि.वि.) का आभारी हूँ जिन्होंने अन्य कार्यों में तथा संशोधन करने में अथक परिश्रम किया। इन सबकी हृदय से हार्दिक अनुमोदना करता हूँ।

अपने कनिष्ठों में दिलीप, वेदांशु, अनिल आर्य, अनिल, जयन्त, रवि मीणा, चन्द्रकिशोर, आशु, स्मृति, तेजू, छोटा भीम, अञ्जली, भारती, राजवीर आप सभी के भविष्य की मङ्गलकामना करता हूँ। मेरे शोधकार्य को सुव्यवस्थित रूप प्रदान करने के लिए अनिल आर्य जी को विशेष धन्यवाद देना चाहता हूँ जिनके कारण से मेरा शोधकार्य सुव्यवस्थित हुआ।

संस्कृत केन्द्र के विकास जी, शबनम जी, मञ्जू जी तथा अरुण जी ने सौहार्द पूर्ण सहयोग प्रदान कर जो मुझे अनुग्रहीत किया अतः आप सभी का भी धन्यवाद।

मुझे इस कार्य में कुछ व्यक्तियों का सहयोग मिला जिनमें वीरेन्द्र आहूजा जी, काका हरिओम जी, ओम सपरा जी, हिमांशु जी, माता टण्डन जी, गुरुकुल वानप्रस्थाश्रम नोएडा की समस्त माताएं, आप सभी का स्मरण करना भी अपना परम कर्त्तव्य समझता हूँ।

जे०ने०यू० केन्द्रीय व संस्कृत केन्द्र, श्री. ला. शा. रा. सं. विद्यापीठ, दि. वि. वि., राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर, हंसराज महाविद्यालय, आनलाइन जैन, भारतीय विद्याभवन, लालभाई दलपतभाई पुस्तकालय अहमदाबाद में रत सभी अधिकारी कर्मचारियों तथा इस कार्य में जिनकी कृतियों से अधिक सहयोग प्राप्त किया है, को भी धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

पारिवारिक जिम्मेदारी से मुक्त रखकर पढ़ने के लिए प्रेरित करने वाली अपनी धर्मपत्नी श्रीमती रञ्जन लता को धन्यवाद देता हूँ, जिनके अथक परिश्रम से यह शोधकार्य मै सम्पन्न कर सका। अन्त में ज्ञात-अज्ञात सभी शक्तियों का धन्यवाद।

राज किशोर आर्य

विषयानुक्रमणिका

संकेताक्षर-सूची...i-iv

आत्मनिवेदन...v-viii

विषयानुक्रमणिका...ix-xxiii

विषय प्रवेश...१-४

प्रथम अध्याय: भारतीय-दर्शन की परम्परा में सङ्ग्रह-ग्रन्थों का स्थान...५-७६

सङ्ग्रह शब्द का निर्वचन

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की संख्या

सङ्ग्रह-ग्रन्थों के प्रणेता एवं प्रणयन काल

षड्दर्शनसमुच्चय...

शास्त्रवार्तासमुच्चय...

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनकौमुदी...

प्रस्थानभेद...

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक...

राजशेखरसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय...

षड्दर्शननिर्णय...

सर्वमतसङ्ग्रह...

लघुषड्दर्शनसमुच्चय...

विवेकविलास...

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...

पदार्थधर्मसङ्ग्रह...

द्वादशदर्शनसोपानावलि..

अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह...

आर्यविद्यासुधाकर..

दर्शनोदय...

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप...

युक्तिप्रकाशविवरण...

षड्दर्शनपरिक्रम..

सर्वदर्शनसमन्वय...

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीकाएं, प्रणेता व प्रणयनकाल

षड्दर्शनसमुच्चय की टीकाएं..

लघुवृत्ति...

तर्करहस्यदीपिका...

विवृत्ति..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह की टीकाएं...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह की टीकाएं..

वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर-दर्शनाङ्कुर....................................

E.B.COWELL& A.E GOUGH– English Translation– Notes..........

र. पं. कंगले– सटीपमराठीभाषान्तर......................................

सङ्ग्रह ग्रन्थों के प्रणेताओं का परिचय व उनमें प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त

हरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय..

हरिभद्रसूरिकृत शास्त्रवार्तासमुच्चय....................................

आचार्य हरिभद्रसूरि का परिचय..

आचार्य हरिभद्रसूरि कृतित्व..

आगम ग्रन्थों एवं पूर्वाचार्यों की कृतियों पर टीकाएं........................

स्वरचित ग्रन्थ एवं स्वोपज्ञ टीका...
कथा साहित्य..
ग्रन्थ-सूची...
पदार्थधर्मसङ्ग्रह..
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहकारशङ्कराचार्य का परिचय..
शङ्कराचार्य कृतित्व...
सर्वदर्शनसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनसङ्ग्रह के रचयिता...
माधवाचार्य का परिचय...
माधवाचार्य का व्यक्तित्व...
माधवाचार्य कृतित्व...
मीमांसा सम्बन्धी रचनाएँ...
साहित्य सम्बन्धी रचनाएँ..
धर्मशास्त्र सम्बन्धी रचनाएँ..
अद्वैतवेदान्त के प्रतिष्ठापक ग्रन्थ...
सर्वदर्शनकौमुदी...
प्रस्थानभेद...
कृति परिचय..
प्रस्थानभेद...
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक..
राजशेखरसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय...
राजशेखरसूरि कृतित्व...
षड्दर्शननिर्णय...
सर्वमतसङ्ग्रह..

सर्वमतसङ्ग्रह के सम्पादक टी. गणपति शास्त्री का व्यक्तित्व, कर्त्तृत्व और सम्पादकत्व..

जन्म..

शिक्षा..

व्यक्तित्व..

कृतित्व..

मूलग्रन्थ...

टीकाग्रन्थ...

सम्पादकत्व...

सर्वमतसङ्ग्रह का परिचय...

विषयवस्तु...

सर्वमतसङ्ग्रहकार का काल...

अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह...

आर्यविद्यासुधाकर...

षड्दर्शनपरिक्रम...

विवेकविलास...

लघुषड्दर्शनसमुच्चय...

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...

द्वादशदर्शनसोपानावलि..

द्वादशदर्शनसोपानावलिकार श्रीपादशास्त्री हसूरकर का परिचय.................

कृतित्व..

षड्दर्शनपरिक्रम...

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप...

सर्वदर्शनसमन्वय..

षड्दर्शनदर्पण..

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीकाओं में प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त…………..

लघुवृत्ति……………………………………………………......

अवचूर्णि……………………………………………………….

निष्कर्ष………………………………………………………..

द्वितीय अध्याय : सङ्ग्रह-ग्रन्थ एवं भारतीय दार्शनिक शाखाएँ....

..७७-१५७

भारतीय दार्शनिक शाखाएँ………………………………………..

उपलब्ध सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वर्णित चार्वाक दर्शन ....

षड्दर्शनसमुच्चय………………………………………………….

शास्त्रवार्तासमुच्चय……………………………………………….

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह………………………………………………..

सर्वदर्शनसङ्ग्रह……………………………………………………

सर्वदर्शनकौमुदी…………………………………………………..

सर्वमतसङ्ग्रह……………………………………………………..

द्वादशदर्शनसोपानावलि…………………………………………......

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्………………………………………..……….

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप……………………………………………………

प्रस्थानभेद……………………………………………………......

षड्दर्शनसमुच्चय (राजशेखर)………………………………………

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक…………………………………………...…..

बौद्ध-मत...

षड्दर्शनसमुच्चय…………………………………………………..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह,माध्यमिकपक्ष……………………………………..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, सौत्रान्तिक-पक्ष…………………………………..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह,योगाचार-पक्ष...

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह,वैभाषिक-पक्ष..

सर्वदर्शनसङ्ग्रह..

माध्यमिक...

योगाचार..

सौत्रान्तिक...

वैभाषिक..

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक..

षड्दर्शनपरिक्रम..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप...

सर्वमतसङ्ग्रह..

द्वादशदर्शनसोपानावलि...

द्वादशदर्शनसोपानावलि -१. वैभाषिक (क्षणिकात्मवाद).......................

द्वादशदर्शनसोपानावलि- सौत्रान्तिक – (दुःखविज्ञानात्मवाद)..................

द्वादशदर्शनसोपानावलि,योगाचार (स्वलक्षणविज्ञानात्मवाद)...................

द्वादशदर्शनसोपानावलि,माध्यमिकदर्शन.......................................

आर्हतदर्शन..

षड्दर्शनसमुच्चय..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह..

सर्वदर्शनकौमुदी...

सर्वमतसङ्ग्रह..

द्वादशदर्शनसोपानावलि...

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप...

लघुवृत्ति...

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि...
लघुषड्दर्शनसमुच्चय...
राजशेखरसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय...
षड्दर्शननिर्णय...
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक...
षड्दर्शनपरिक्रम...

न्यायदर्शन...

षड्दर्शनसमुच्चय...
शास्त्रवार्तासमुच्चय...
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनकौमुदी...
द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...
द्वादशदर्शनसोपानावलि...
लघुवृत्ति...
अवचूर्णि...
लघुषड्दर्शनसमुच्चय...
षड्दर्शनसमुच्चय...
षड्दर्शननिर्णय...
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक...
षड्दर्शनपरिक्रम...
सर्वमतसङ्ग्रह...

साङ्ख्य दर्शन.....................................

षड्दर्शनसमुच्चय...
शास्त्रवार्तासमुच्चय...

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनकौमुदी...

द्वादशदर्शनसोपानावलि...

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्..

प्रस्थानभेद..

सर्वमतसङ्ग्रह...

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक...

षड्दर्शनसमुच्चय..

षड्दर्शननिर्णय...

लघुवृत्ति..

अवचूर्णि..

लघुषड्दर्शनसमुच्चय...

योगदर्शन-..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनकौमुदी...

द्वादशदर्शनसोपानावलि...

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्..

प्रस्थानभेद..

राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय...

मीमांसा दर्शन.......................................

षड्दर्शनसमुच्चय..

शास्त्रवार्तासमुच्चय...

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...

प्रभाकरपक्ष..
भट्टाचार्यपक्ष..
सर्वदर्शनसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनकौमुदी...
सर्वमतसङ्ग्रह...
कुमारिल सम्प्रदाय (भाट्ट मत)..
प्रभाकर सम्प्रदाय (गुरु मत)...
प्रस्थानभेद...
द्वादशदर्शनसोपानावलि..
द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...
लघुवृत्ति...
अवचूर्णि..
षड्दर्शनसमुच्चय..
षड्दर्शननिर्णय...
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक..
प्रत्यभिज्ञाप्रदीप..
वेदान्त दर्शन...
शास्त्रवार्तासमुच्चय...
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनकौमुदी...
सर्वमतसङ्ग्रह...
औपनिषदिक...
पौराणिक..
सगुणब्रह्मवादी...

निर्गुणब्रह्मवादी..

द्वादशदर्शनसोपानावलि..

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप..

वेदव्यास पक्ष..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...

द्वैतवाद दर्शन...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह..

अङ्कन...

नामकरण...

भजन..

सर्वदर्शनकौमुदी..

द्वादशदर्शनसोपानावलि..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप..

विशिष्टाद्वैतवाद...................... ....

सर्वदर्शनसङ्ग्रह..

चित्...

अचित्...

ईश्वर..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप..

द्वादशदर्शनसोपानावलि..

सर्वदर्शनकौमुदी..

शुद्धाद्वैत...

सर्वदर्शनकौमुदी..

द्वादशदर्शनसोपानावलि..

अचिन्त्यभेदवाद..

सर्वदर्शनकौमुदी..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, वल्लभसिद्धान्त..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, भास्करसिद्धान्त..

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, रसेश्वरदर्शन-..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, रसेश्वरदर्शन-..

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, पाणिनिदर्शन-...

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, पाणिनिदर्शन-...

नकुलीशपाशुपतदर्शन...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, नकुलीश–पाशुपतदर्शन......................................

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, शैवदर्शन..

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, प्रत्यभिज्ञादर्शन-...

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, शैवदर्शन..

तृतीय अध्याय : सङ्ग्रह-ग्रन्थों में द्रव्य का स्वरूप...........१५९-२१०

सङ्ग्रह-ग्रन्थोंमें में प्रतिपादित द्रव्य व उनके विभिन्न भेदों का स्वरूप.........

षड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित द्रव्य..

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में पदार्थ..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य ....

सर्वदर्शनकौमुदी में प्रतिपादित द्रव्य...

सर्वमतसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य..

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में प्रतिपादित द्रव्य.......................................

द्वादशदर्शनसोपानावलि में प्रतिपादित द्रव्य.....................................

राजशेखरसूरिकृतषड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित द्रव्य.........................

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक में प्रतिपादित द्रव्य...

षड्दर्शनपरिक्रम में प्रतिपादित द्रव्य..

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप परिशिष्ट में प्रतिपादित द्रव्य ....

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि में प्रतिपादित द्रव्य ....

लघुषड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित द्रव्य...

लघुवृत्ति में प्रतिपादित द्रव्य ....

षड्दर्शननिर्णय में प्रतिपादित द्रव्य..

षड्दर्शनसमुच्चय की टीका तर्करहस्यदीपिका में प्रतिपादित द्रव्य.................

चतुर्थ अध्याय : सङ्ग्रह-ग्रन्थों में गुण एवं कर्म निरूपण..२११-२६८

गुण विचार...

षड्दर्शनसमुच्चय...

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह..

पदार्थधर्मसङ्ग्रह ....

सर्वदर्शनसङ्ग्रह..

सर्वदर्शनकौमुदी..

सर्वमतसङ्ग्रह...

द्वादशदर्शनसोपानावलि...

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप ....

लघुवृत्ति..

तर्करहस्यदीपिका..

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्..

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि...

लघुषड्दर्शनसमुच्चय...

षड्दर्शनसमुच्चय...

षड्दर्शननिर्णय...

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक...

षड्दर्शनपरिक्रम..

कर्म विचार.. ....

षड्दर्शनसमुच्चय..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह ....

पदार्थधर्मसङ्ग्रह... ....

सर्वदर्शनकौमुदी... ....

सर्वमतसङ्ग्रह... ....

द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...................................... ....

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक ....

सर्वदर्शनसङ्ग्रह ....

लघुवृत्ति ....

तर्करहस्यदीपिका ....

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि.................................. ....

पञ्चम अध्याय : सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव निरूपण.......... ....२६९-३१२

सङ्ग्रहग्रन्थों में सामान्य निरूपण..

षड्दर्शनसमुच्चय ....

पदार्थधर्मसङ्ग्रह...

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनसङ्ग्रह...

सर्वदर्शनकौमुदी...

सर्वमतसङ्ग्रह ....

द्वादशदर्शनसोपानावलि...
द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...
लघुवृत्ति..
षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि..
तर्करहस्यदीपिका..
राजशेखरसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय...
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक..
षड्दर्शनपरिक्रम...
सङ्ग्रह-ग्रन्थों में विशेष निरूपण..
षड्दर्शनसमुच्चय..
पदार्थधर्मसङ्ग्रह...
सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...
सर्वदर्शनसङ्ग्रह..
सर्वदर्शनकौमुदी..
सर्वमतसङ्ग्रह...
द्वादशदर्शनसोपानावलि...
द्वादशदर्शनसमीक्षणम्...
लघुवृत्ति ....
तर्करहस्यदीपिका ....
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक...
षड्दर्शनपरिक्रम...
षड्दर्शनसमुच्चय..
सङ्ग्रहग्रन्थों में समवाय निरूपण...
षड्दर्शनसमुच्चय...
पदार्थधर्मसङ्ग्रह..

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह...
द्वादशदर्शनसमीक्षणम् ....
द्वादशदर्शनसोपानावलि...
लघुवृत्ति...
षड्दर्शनसमुच्चय...
सर्वसिद्धान्तप्रवेशक..
तर्करहस्यदीपिका...
षड्दर्शनपरिक्रम...
सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अभाव निरूपण...
सर्वदर्शनसङ्ग्रह ....
सर्वदर्शनकौमुदी...
सर्वमतसङ्ग्रह...
द्वादशदर्शनसमीक्षणम्..
द्वादशदर्शनसोपानावलि...
समीक्षा- सङ्ग्रह ग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन...३१३-३१८
शोधसार...३१९-३३०
सन्दर्भग्रन्थसूची..i-xvii

विषय प्रवेश

भारतीय-दर्शन विषयक शास्त्रों में सङ्ग्रह-ग्रन्थों का महत्वपूर्ण स्थान है। भारतीय दर्शनों के अन्तर्गत प्रत्येक शाखा में सूत्र, भाष्य, वार्तिक, टीका आदि ग्रन्थों का प्रणयन किया गया है। यदि अध्येता प्रत्येक शाखा का अध्ययन सूत्र, भाष्य, वार्तिक, टीका आदि के क्रम से करेगा तो वह एक शाखा का भी सही से अध्ययन नहीं कर सकता है क्योंकि एक शाखा में सूत्रों पर ही असंख्य ग्रन्थों का प्रणयन हुआ है तथा अद्यावधि जारी है, फिर सूत्रों पर लिखा गया भाष्य का क्रम आता है। विभिन्न आचार्यों ने अपने मतों की सिद्धि के लिए स्वमतानुसार भाष्यों का प्रणयन किया। फिर भाष्यों पर भी भाष्य लिखे गए हैं। यथा प्रशस्तपादभाष्य पर तीन टीकाएं व्योमवती, न्यायकन्दली तथा किरणावली प्राप्त होती हैं। फिर उन तीन टीकाओं में से एक टीका न्यायकन्दली पर पुनः तीन टीकाएँ टिप्पण, कुसुमोद्गम एवं पञ्जिका प्राप्त होती है। इस प्रकार एक शाखा का अध्ययन भी बहुकालापेक्षी है। इससे जो जिज्ञासु सभी भारतीय दर्शनों का अध्ययन करना चाहता है, उसके लिए इस दर्शन रूपी घोर जंगल से निकल पाना अतीव दुष्कर कार्य है। अतः आचार्यों ने इस समस्या के समाधान हेतु दर्शन विषयक सङ्ग्रह-ग्रन्थों की रचना की, जिससे सभी भारतीय मतों का एक साथ, अल्प समय में मान्य सिद्धान्तों का परिचय प्राप्त कर सके। सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सभी मतों की तत्त्व-मीमांसा, आचार-मीमांसा तथा प्रमाण-मीमांसा पर प्रकाश डाला गया है। जिसका प्रथम निदर्शन आचार्य हरिभद्रसूरि के षड्दर्शनसमुच्चय में प्राप्त होता है। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध **'सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक-दर्शन'** में प्रकाशित तथा अप्रकाशित सङ्ग्रह-ग्रन्थों को आधार बनाया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध का अध्याय-विभाजन निम्नलिखित है -

प्रथम अध्याय – भारतीय-दर्शन की परम्परा में सङ्ग्रह-ग्रन्थों का स्थान – वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, रामायण, महाभारत आदि में सङ्ग्रह शब्द का क्या अर्थ है ? उसका प्रयोग किस अर्थ को द्योतित करता है ? इस अध्याय में इसके विषय में प्रकाश डाला गया है। भारतीय-दर्शन के सम्बन्ध में सङ्ग्रह एक पारिभाषिक शब्द है, यहाँ इस अध्याय में उसका अर्थ बतलाया गया है। इसी अध्याय में सङ्ग्रह-ग्रन्थों की संख्या, सङ्ग्रह-ग्रन्थों के प्रणेता, सङ्ग्रह-ग्रन्थों का प्रणयनकाल, सङ्ग्रह-ग्रन्थों के कर्त्ता तथा उनका कृतित्व, समय, उनके अन्य प्रकाशित-अप्रकाशित ग्रन्थों का परिचय दिया गया है। साथ ही सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीका, सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीकाओं का प्रणयनकाल, सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

द्वितीय अध्याय – सङ्ग्रह ग्रन्थ एवं भारतीय दार्शनिक शाखाएँ - इस अध्याय में सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रतिपादित भारतीय-दर्शन की विविध शाखाओं के सिद्धान्तों को बिना खण्डन-मण्डन के एक ही ग्रन्थ में बड़े सरल एवं सहज ढंग से प्रतिपादित किया गया है। प्रत्येक दर्शन की तत्त्व मीमांसा, आचार मीमांसा, प्रमाण मीमांसा, तथा लिङ्ग, वेष आदि का प्रतिपादन किया गया है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में आस्तिक व नास्तिक दर्शन का विभाजन प्राप्त होता है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में जैन-दर्शन को प्रथम स्थान पर रखा गया है क्योंकि उसके लेखक जैनाचार्य है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वेदान्त को अन्तिम स्थान पर प्रतिपादित किया गया है जिससे सभी दर्शनों का निराकरण करके वेदान्त मत की स्थापना का उद्देश्य द्योतित होता है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सभी दर्शनों की समालोचना प्रस्तुत कर जैन-दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध करते हैं। इस अध्याय में अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वर्णित क्रम को अपनाया गया है। अतः चार्वाक, बौद्ध, जैन, साङ्ख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, वेदव्यास, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, अचिन्त्यभेदवाद, रसेश्वर, पाणिनि, नकुलीश पाशुपत, प्रत्यभिज्ञा आदि दर्शनों का प्रतिपादन किया गया है।

तृतीय अध्याय – सङ्ग्रह-ग्रन्थों में द्रव्य का स्वरूप – इस अध्याय में वैशेषिक-दर्शन के छः पदार्थों के अन्तर्गत प्रथम पदार्थ द्रव्य की चर्चा सङ्ग्रह-ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में की गई है। द्रव्य के नौ भेद पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा व मन हैं। इस अध्याय में पृथिवी, जल, तेज, वायु आदि द्रव्यों के लक्षण, उनमें रहने वाले गुण, उनका नित्य व अनित्य स्वरूप तथा अनित्य के कार्य रूप शरीर में शरीर, इन्द्रिय, विषय का प्रतिपादन किया गया है। आकाश, काल, दिक् के नित्य, एक तथा विभु स्वरूप का प्रतिपादन किया गया है। आत्मा तथा मन का लक्षण प्रस्तुत करते हुए उनमें रहने वाले गुण तथा स्वरूप का विस्तार से प्रतिपादन सङ्ग्रह-ग्रन्थों की दृष्टि में किया गया है।

चतुर्थ अध्याय – सङ्ग्रह-ग्रन्थों में गुण एवं कर्म निरूपण - इस अध्याय में सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वर्णित चौबीस गुणों का विस्तार से कथन किया गया है। इन चौबीस गुणों का विभाजन एकादश प्रकार से किया गया है। सभी गुणों के लक्षण तथा उनके स्वरूप का कथन किया गया है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों में कर्म को गुण के पश्चात् रखा गया है। कर्म के स्वरूप तथा उसके पाँच भेदों का कथन सङ्ग्रह-ग्रन्थों की दृष्टि में किया गया है।

पञ्चम अध्याय – सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव निरूपण – अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वैशेषिक-दर्शन के छः ही पदार्थ स्वीकार किये गए हैं परन्तु आधुनिक सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अभाव का कथन भी प्राप्त होता है। अतः इस अध्याय में अभाव के साथ-साथ सामान्य के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए उसके लक्षण, उसके पर तथा अपर भेदों का प्रतिपादन लक्षण सहित किया गया है। विशेष

नामक पदार्थ वैशेषिक-दर्शन की महत्त्वपूर्ण कल्पना है। विशेष के अन्त्य, नित्य, अनेक, आदि पदों का विस्तार से वर्णन किया गया है। समवाय नामक पदार्थ को अयुत्सिद्ध कहा गया है। उसके लक्षण की प्रमाण पूर्वक परीक्षा सङ्ग्रह-ग्रन्थों की दृष्टि में प्रस्तुत की गयी है। आधुनिक सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अभाव का जो स्वरूप प्राप्त होता है उसका कथन तथा उसको क्यों पदार्थ स्वीकार किया जाय इसका प्रतिपादन किया गया है। अभाव के लक्षण तथा भेदोपभेदों का कथन भी बहुत ही सरस, सरल सङ्ग्रह-ग्रन्थों की भाषा में प्रतिपादित किया गया है। अन्त में समीक्षा पूर्वक वैशेषिक-दर्शन का तुलनात्मक विवेचन करने के उपरान्त उपर्युक्त पाँच अध्यायों में वर्णित विषयों का संक्षेप में सार प्रस्तुत किया गया है।

प्रथम-अध्याय

भारतीय दर्शन की परम्परा में सङ्ग्रह-ग्रन्थों का स्थान

सङ्ग्रह शब्द का निर्वचन

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की संख्या

सङ्ग्रह-ग्रन्थों के प्रणेता

सङ्ग्रह-ग्रन्थों का प्रणयनकाल

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीका

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीकाओं के प्रणेता

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीकाओं का प्रणयनकाल

सङ्ग्रह-ग्रन्थ के प्रणेताओं का परिचय व उनमें प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त

प्रथम-अध्याय

भारतीय दर्शन की परम्परा में सङ्ग्रह-ग्रन्थों का स्थान

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा का विकास वैदिक काल से लेकर अद्यावधि जारी है। इस चिन्तन परम्परा का निदर्शन सर्वप्रथम ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में दार्शनिक प्रश्नों के रूप में होता है। यह चिन्तन धारा ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् के रूप में प्रवाहित होती हुई लगभग ई. पू. सातवीं शताब्दी में विभिन्न दार्शनिक शाखाओं के रूप में व्यवस्थित हुई। उस समय तक विकसित दार्शनिक चिन्तन को दार्शनिकों ने विभिन्न शाखाओं के सूत्र-ग्रन्थों के रूप में निबद्ध किया। परवर्ती आचार्यों ने सूत्रग्रन्थों में निबद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों को सुगम बनाने के लिए भाष्य, वार्त्तिक, टीका, वृत्ति आदि के रूप में व्याख्या ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार प्रत्येक दार्शनिक शाखा का विकास सूत्र, भाष्य आदि ग्रन्थों के रूप में होता रहा। सातवीं-आठवीं शताब्दी ई. के निकट दार्शनिक शाखाओं के विपुल साहित्य की उपलब्धता होने के कारण आचार्यों को सभी शाखाओं का परिचय एक ही ग्रन्थ में उपलब्ध कराने की आवश्यकता अनुभव हुई, फलस्वरूप दार्शनिक सङ्ग्रह-ग्रन्थों की रचना होने लगी।

सङ्ग्रह शब्द का निर्वचन - भारतीय-दर्शन पर स्वतन्त्र रूप से विभिन्न आचार्यों ने अनेक सङ्ग्रह-ग्रन्थों की रचना की है। इनमें कुछ अवैदिकदर्शनों के परिचायक है, कुछ वैदिकदर्शनों के। कुछ दोनों प्रकार के दर्शनों का परिचय देते हैं। सङ्ग्रह शब्द सम् उपसर्ग पूर्वक ग्रह् धातु से बना है। सङ्ग्रह का लक्षण करते हुए कहते हैं कि जहाँ पर सूत्र एवं भाष्यों में वर्णित विस्तृत सिद्धान्तों का संक्षेप में अर्थात् समासशैली के द्वारा प्रतिपादन किया गया हो उसे सङ्ग्रह कहते हैं-

"विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः।

निबन्धो यः समासेन सङ्ग्रहन्त विदुर्बुधाः ॥"[1]

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की संख्या – दर्शन विषयक सङ्ग्रह-ग्रन्थों की निश्चित संख्या के विषय में अभी तक कुछ नहीं कहा जा सकता है, क्योंकि अभी भी अनेक प्राच्य विद्या प्रतिष्ठानों तथा अन्य सरकारी, अर्ध सरकारी, तथा व्यक्तिगत लोगों के पास हजारों की संख्या में पाण्डुलिपियाँ प्राप्त होती है। जब इन सबका अध्ययन हो जायेगा, तब इनकी निश्चित संख्या के विषय में ज्ञान होना सम्भव है। पाण्डुलिपि की विषय सूची में दर्शन विषयक सङ्ग्रह-ग्रन्थों की अलग सूची प्राप्त होती है। जिससे इस विषय में

---

[1] शास्त्री, ढुण्डिराज, प्रशस्तपादभाष्य, भूमिका, चौखम्बा संस्कृत संस्थान वाराणसी, वि. सं. २०६३, पृ. २७

उपलब्ध असंख्य पाण्डुलिपियों की संख्या के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है। वर्तमान में उपलब्ध सङ्ग्रह-ग्रन्थ निम्नलिखित है –

षड्दर्शनसमुच्चय, सर्वदर्शनसङ्ग्रह, प्रस्थानभेद, द्वादशदर्शनसमीक्षणम्, सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, विवेकविलास, सर्वदर्शनकौमुदी, षड्दर्शनसमुच्चय, षड्दर्शननिर्णय, लघुषड्दर्शनसमुच्चय, आर्यविद्यासुधाकर, अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह, दर्शनोदय, द्वादशदर्शनसोपानावलि, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, सर्वमतसङ्ग्रह, शास्त्रवार्तासमुच्चय, युक्तिप्रकाशविवरण, षड्दर्शनपरिक्रम, सर्वदर्शनसमन्वय, प्रत्यभिज्ञाप्रदीप आदि।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों के प्रणेता एवं प्रणयनकाल – सङ्ग्रह-ग्रन्थों के लेखक एवं उनका समय अधोलिखित है -

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** इसके लेखक हरिभद्रसूरि हैं। यह आठवीं शताब्दी के उत्तरार्ध की कृति है।[2]
- **शास्त्रवार्तासमुच्चय –** इसके प्रणेता भी हरिभद्रसूरि हैं। इसकी भाषा संस्कृत है तथा यह पद्यमय रचना है।[3] इसका प्रकाशन लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मन्दिर, अहमदाबाद से १९६९ में किया गया है।
- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** इसके कर्त्ता शङ्कराचार्य हैं। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह आद्य शङ्कराचार्य की रचना है, इसके विषय में विद्वानों में मतभेद है।
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** इसके रचयिता माधवाचार्य हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। यह गद्य-पद्यमय रचना है। माधवाचार्य का समय १२९५ ई. से १३८५ ई. तक माना गया है।[4]
- **सर्वदर्शनकौमुदी –** इस नाम के दो ग्रन्थों का वर्णन मिलता है। एक के कर्त्तामाधव सरस्वती हैं। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् संस्कृतग्रन्थमाला से ई. १९३८ में के. साम्बशिव शास्त्री ने किया

---

[2] हरिभद्रसूरि, ष. ड. स., व्या. मिश्र कामेश्वरनाथ, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन वाराणसी, दिल्ली, २००६, भूमिका, पृ. ४

[3] हरिभद्रसूरिकृत, शा. वा. स., सं. शाह जितेन्द्र बी., लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, १९६९, कारिका, १

[4] ऋषि, उमाशङ्करशर्मा (सं.), माधवाचार्यकृत स. द. सं., प्रस्तावना, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००६, पृ.४२

था।[5] द्वितीय ग्रन्थ श्री जगन्नाथ देवपुरोहित महामहोपाध्याय विद्यासागर पण्डित श्री दामोदरमहापात्र शास्त्री द्वारा लिखित है -

संस्कृते मातृभाषायां बहुदर्शनलेखकः।
श्रीमान् दामोदरशास्त्री लोकानां ज्ञानवृद्धये ॥

इसका प्रकाशन ओडिशा साहित्य अकादमी से सन् १९७५ ई. में हुआ है।[6]

- **प्रस्थानभेद –** प्रस्थानभेद मधुसूदन सरस्वती (१५४०-१६४७) की कृति है। इसकी भाषा संस्कृत है। यह अत्यन्त लघुकाय ग्रन्थ है। यह गद्य में है।
- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक -** सर्वसिद्धान्तप्रवेशक के कर्त्ता अज्ञात हैं। इसकी भाषा संस्कृत है तथा यह गद्यमय कृति है।
- **राजशेखरसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय –** यह कृति आचार्य राजशेखर (१४०५ई.) की है। इसमें १८० कारिकाएं हैं। इसका प्रकाशन श्रीहर गोविन्ददास तथा बेचरदास ने काशी से करवाया था।
- **षड्दर्शननिर्णय –** यह आचार्य मेरुतुंगसूरि की रचना है।[7] इनका समय लगभग १४०० ई. का उत्तरार्ध है।[8] इसकी एक हस्तप्रति नं. १६६६, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, मुम्बई में विद्यमान है।
- **सर्वमतसङ्ग्रह –** इसका प्रकाशन टी. गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् संस्कृतग्रन्थमाला से सन् १९१८ में किया था।[9] इसके लेखक का नाम अज्ञात है।
- **लघुषड्दर्शनसमुच्चय –** यह प्राचीन, लघु व गद्यमय ग्रन्थ है, जिसके प्रणेता का नाम अज्ञात है। यह लघुषड्दर्शनसमुच्चय श्री विद्यातिलकसूरि वृत्ति के साथ अहमदाबाद से प्रकाशित हुआ है।
- **विवेकविलास –** यह आचार्य जिनदत्त सूरि की रचना है।

---

[5] मिश्र, कामेश्वरनाथ (सं.), ष. ड. स. , भूमिका, पृ. २०

[6] शास्त्री, दामोदरमहापात्र, स. द. कौ, ओडिशा साहित्य अकादमी, कटक, १९७५

[7] ष. द. नि., पृ. ३२९

[8] जैन महेन्द्रकुमार, ष. ड. स. , पृ. १५

[9] मिश्र कामेश्वरनाथ, ष. ड. स., भूमिका, पृ. २०

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम्**[10] **–** इसके कर्त्ता सीताराम हेब्वार हैं। इसकी भाषा संस्कृत तथा यह गद्यमय कृति है।
- **पदार्थधर्मसङ्ग्रह –** यह वैशेषिक-दर्शन का स्वतन्त्र ग्रन्थ है। विद्वानों ने इसको सङ्ग्रह ग्रन्थ की श्रेणी में रखा है। इसका समय वैशेषिक सूत्रों के बाद का है।
- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** द्वादशदर्शनसोपानावलि के कर्त्ता श्रीपादशास्त्री हसूरकर हैं। इसका प्रकाशन गुड कम्पेनियन्स बडोदरा से सन् १९९३ में हुआ है। यह गद्यमय कृति है।
- **अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह –** अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह के प्रणेता गङ्गाधर वाजपेय जी हैं। यह ग्रन्थ श्रीरङ्गम के श्रीवाणीविलासमुद्रणयन्त्रालय से सन् १९११ ई. में प्रकाशित हुआ था।[11] यह ग्रन्थ अप्राप्त है।
- **आर्यविद्यासुधाकर –** आर्यविद्यासुधाकर ग्रन्थ के रचयिता यज्ञेश्वर चिमणभट्ट हैं। इसका सम्पादन पं शिवदत्त कुडाल ने किया था। मोतीलाल बनारसीदास की संस्था 'दि पञ्जाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर ने इसे सन् १९२२ ई. में प्रकाशित किया था।
- **दर्शनोदय -** इसके प्रणेता श्रीनिवासाचार्य हैं। यह मैसूर से प्रकाशित है।[12]
- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** इसके लेखक रङ्गेश्वरनाथ मिश्र हैं। सम्पादक राम कुमार शर्मा हैं। नाग पब्लिशर्स, दिल्ली से सन् १९९८ई. में प्रथम सस्करण प्रकाशित हुआ है।
- **युक्तिप्रकाशविवरण –** इसके रचयिता पद्मसागरगणि हैं। इसमें २८ कारिकाएं हैं।
- **षड्दर्शनपरिक्रम –** षड्दर्शनपरिक्रम के प्रणेता अज्ञात हैं।। यह पद्यमय रचना है।
- **सर्वदर्शनसमन्वय –** सर्वदर्शनसमन्वय के सम्पादक मण्डन मिश्र हैं। श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत-विद्यापीठ के शारद ज्ञान महोत्सव में श्री गोपालशास्त्री ने दो व्याख्यान प्रदान

---

10 इसका प्रकाशन गायत्री आश्रम, सालिग्राम उडुपि तालूक, दक्षिणकन्नड कर्नाटक स्टेट से १९८० में हुआ है।

11 मिश्र कामेश्वरनाथ, ष. ड. स. , भूमिका, चौखम्बा अमरभारती प्रकाशन वाराणसी, दिल्ली, २००६, पृ. १७

12 वही, पृ. १८

किये थें, यह ग्रन्थ व्याख्यान का ही संकलन है। इसका प्रकाशन श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठ से सन् १९८१ में हुआ था।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक सङ्ग्रह ग्रन्थ हैं जिनमें भारतीय-दर्शन के विषय में बतलाया गया है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीका, प्रणेता, प्रणयनकाल – सङ्ग्रह-ग्रन्थों की निम्नलिखित टीकायें उपलब्ध होती हैं।

- **षड्दर्शनसमुच्चय की टीकाएं –** दर्शन से सम्बन्धित सङ्ग्रह-ग्रन्थों में से हरिभद्रसूरि कृत **'षड्दर्शनसमुच्चय'** ही एकमात्र ऐसा ग्रन्थ है, जिसे विभिन्न विद्वानों ने अपनी-अपनी व्याख्याओं से विभूषित किया है।
- **'षड्दर्शनसमुच्चय'** पर प्रथमतः जैन आचार्य सोम तिलकसूरि ने **'लघुवृत्ति'** नामक टीका लिखी है। इस टीका में प्रमाण वाक्यों की प्रचुरता है अतः यह व्याख्या परवर्ती व्याख्याकारों के लिए प्रामाणिक उपजीव्य रही है।
- **'षड्दर्शनसमुच्चय'** पर दूसरी महत्त्वपूर्ण व्याख्या जैन आचार्य गुणरत्नसूरि कृत **'तर्करहस्यदीपिका'** है। गुणरत्नसूरि का समय १२४३ ई. से १४१८ ई. तक माना गया है। सोम तिलकसूरि कृत वृत्ति से विस्तृत होने के कारण इसे **'बृहद्वृत्ति '** के नाम से भी जाना जाता है। **'तर्करहस्यदीपिका'** की विशेषता यह है कि सम्बन्धित कारिकाओं की व्याख्या के क्रम में गुणरत्न ने तत्तद् दर्शनों के प्रामाणिक ग्रन्थों का प्रत्यक्ष प्रयोग किया है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने ८७ कारिकाओं में 'षड्दर्शनसमुच्चय' ग्रन्थ को निबद्ध किया है, किन्तु उसके प्रकरणों का उल्लेख नहीं किया है। आचार्य गुणरत्न ने विषय-विभाग की दृष्टि से इसे छः अधिकारों में विभक्त कर दिया है, और विस्तृत टीका लिखी है।
- **'षड्दर्शनसमुच्चय'** पर प्राप्त तीसरी महत्त्वपूर्ण व्याख्या श्रीविद्यातिलक द्वारा प्रणीत **'विवृत्ति'** है। मूलग्रन्थ के अभिप्राय को स्पष्ट करने में यह विवृत्ति यद्यपि सक्षम है, तथापि सोम तिलकसूरि कृत लघुवृत्ति का प्रभाव इसके ऊपर स्पष्ट दिखायी पड़ता है। इसके अतिरिक्त 'षड्दर्शनसमुच्चय' पर और भी टीकाऐं उपलब्ध होती हैं, जिनका संकेत निम्नलिखित है -

सोमतिलकसूरि विरचित वृत्ति,[13] वाचक उदयसागरकृत अवचूरी, ब्रह्मशान्तिदासकृत अवचूर्णि, वृद्धिविजयकृत विवरण[14]।

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह की टीकाएं -** सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह पर अंग्रेजी भाषा में अनुवाद हुआ है जो विस्तृत भूमिका, टिप्पणी, सूची के साथ अजय बुक सर्विस, दिल्ली से १९८३ में एम. रंगाचार्य के द्वारा प्रकाशित हुआ है। प्रारम्भ में सभी मतों का वर्णन किया गया है तथा फुटनोट में क्रिटिकल संस्करण के अन्य शब्दों को रखा गया है। अन्त में प्रत्येक मत पर विस्तारपूर्वक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अन्त में पारिभाषिक सूची दी गई है।
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह की टीकाएं –** सर्वदर्शनसङ्ग्रह पर एक संस्कृत टीका, एक अंग्रेजी अनुवाद, एक मराठी अनुवाद प्राप्त होता है –
- **वासुदेवशास्त्री अभ्यंकर - दर्शनाङ्कुर**
- **E.B.COWELL& A.E GOUGH – English Translation – Notes**
- **र. पं. कंगले – सटीप मराठी भाषान्तर**
- **दर्शनाङ्कुर-** यह वासुदेवशास्त्री कृत टीका है। जिसका प्रथम प्रकाशन भण्डारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना से १९२४ से हुआ था। दर्शनाङ्कुर टीका प्रारम्भ करने से पूर्व ग्रन्थकार ने सम्पूर्ण सर्वदर्शनसङ्ग्रह के सभी मतों पर विस्तृत भूमिका लिखी है, जिससे विषय को समझना सरल हो जाता है। प्रत्येक मत पर सरल भाषा में अन्य ग्रन्थों को उद्धृत करते हुए प्रत्येक पद की व्याख्या प्रस्तुत की है।
- **E.B.COWELL& A.E GOUGH – English Translation Notes –** यह सर्वदर्शनसङ्ग्रह का अंग्रेजी अनुवाद है। इसमें वेदान्त मत का अनुवाद प्रस्तुत नहीं किया गया है। अन्य सभी मतों का अनुवाद किया गया है। इसके सम्पादक के.एल. जोशी है तथा यह परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली से २००६ में इसका चतुर्थ संस्करण प्रकाशित हुआ है।
- **र. पं. कंगले – सटीप मराठी भाषान्तर –** यह मराठी अनुवाद महाराष्ट्र राज्य साहित्य संस्कृति मंडल, मुंबई से सन् १९८५ ई. में प्रकाशित हुआ है। इसमें प्रथम संस्कृत रखा गया है उसके नीचे मराठी भाषा में अनुवाद है।

---

[13] इसके विषय में विद्वानों मे मतभेद है कि यह सोमतिलकसूरिकृत है अथवा मणिभद्र विरचित, लेकिन अधिकांश विद्वान् इसे सोमतिलकसूरि की रचना मानते हैं। 'ष. ड. स.' 'त. र. दी. टीका', सं. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, २०००,पृ. २०

[14] वही, पृ. २१

सङ्ग्रहग्रन्थ के प्रणेताओं का परिचय व उनमें प्रतिपादित प्रमुख सिद्धान्त

- **हरिभद्रसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय -** षड्दर्शनसमुच्चय में कुल ८७ कारिकाएँ हैं जिनमें छः दार्शनिक शाखाओं के मूल सिद्धान्तों को सरस व सुबोध शैली में सुव्यवस्थित व सन्तुलित रुप में प्रस्तुत किया गया है। ये शाखाएँ हैं – बौद्ध, न्याय, साङ्ख्य, जैन, वैशेषिक एवं मीमांसा[15]। इस प्रकार इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें षड्दर्शनों के अन्तर्गत वैदिक और अवैदिक दोनों दर्शनों का समावेश किया गया है। हरिभद्रसूरि ने विवेचनीय दर्शनों के विषयों का प्रतिपादन निष्पक्ष रूप से पूर्ण निष्ठा के साथ किया है।
- **हरिभद्रसूरि कृत शास्त्रवार्तासमुच्चय –** शास्त्रवार्तासमुच्चय के कर्त्ता आचार्य हरिभद्रसूरि हैं। इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत है। इसकी भाषा पद्यमय है।[16] इसका प्रकाशन लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति मन्दिर, अहमदाबाद से १९६९ में किया गया था। इसमें जैनदृष्टि से विविध दर्शनों का निराकरण करके जैन-दर्शन की स्थापना की गयी है। आचार्य हरिभद्र अपने ग्रन्थ शास्त्रवार्तासमुच्चय के प्रारम्भ में ग्रन्थ रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसका अध्ययन करने से अन्य दर्शनों के प्रति द्वेष बुद्धि समाप्त होकर तत्त्व का बोध हो जाता है।[17]

  इसका विषय विभाजन तत्त्व की दृष्टि से किया गया है। इसमें सर्वप्रथम चार्वाक के भौतिकपक्ष का उल्लेख किया गया है।[18] शास्त्रवार्तासमुच्चय में कहते हैं कि जीवमात्र तात्त्विक दृष्टि से शुद्ध होने के कारण परमात्मा का अंश है और वह अपने अच्छे-बुरे का कर्त्ता भी है। इस प्रकार जीव ईश्वर है और वही कर्त्ता है।[19] शास्त्रवार्तासमुच्चय में आचार्य हरिभद्रसूरि न्याय, वैशेषिक के ईश्वरवाद पर प्रश्न करते हुए कहते हैं कि एक प्राणी कोई कार्य करने में स्वतन्त्र है या नहीं?

---

[15] 'ष. ड. स.', हरिभद्रसूरि, (लघुवृत्ति टीका), व्या. आचार्य रूद्र प्रकाश दर्शनकेसरी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २००२, का. २-३

[16] हरिभद्रसूरिकृत, शा. वा. स., सं. शाह जितेन्द्र बी., लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, १९६९, कारिका, १

[17] यं श्रुत्वा सर्वशास्त्रेषु प्रायस्तत्त्वविनिश्चयः।
जायते द्वेषशमनः स्वर्गसिद्धिः सुखावहः ॥ शा. वा. स., पृ. ३६

[18] वही, कारिका, ३०

[19] वही, कारिका, २०७

यदि कार्य करने में स्वतन्त्र है तो ईश्वर को उसका प्रेरक क्यों माना जाय?[20] यदि कार्य करने में स्वतन्त्र नहीं है तो प्राणी को इन कार्यों का भला-बुरा फल पाने वाला क्यों माना जाय?[21]

आचार्य हरिभद्र सूरि का परिचय

आचार्य हरिभद्रसूरि ने षड्दर्शनसमुच्चय की रचना कर भारतीय-दर्शन में एक नवीन दृष्टि को आरम्भ किया, जो कि दर्शन के बाह्य पक्ष पर केन्द्रित न होकर दर्शन के आत्म-पक्ष पर केन्द्रित थी। अन्तः जगत् के समस्त भौतिक पदार्थों के विवेचन आचार्य हरिभद्रसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय में प्राप्त होते हैं। आचार्य हरिभद्रसूरि आठवीं शताब्दी के शीर्षस्थ जैनाचार्य थे। यद्यपि वे चित्तौड़ के राजा जितारी के राज पुरोहित थे पर पारङ्गत वैदिक विद्वान् होने के कारण अभिमानी होने पर भी ज्ञान पिपासु थे। वही ज्ञान पिपासा उन्हें आर्या महत्तरा के आग्रह पर आचार्य जिनभद्रसूरि के पास ले गयी और परिणामतः वे जैनाचार्य हरिभद्र बन गये। आवश्यकनिर्युक्तिटीका के अनुसार जिनभट्ट उनके गच्छपति गुरु, जिनदत्त दीक्षा गुरु, याकिनी महत्तरा धर्म जननी थी। उनका कुल विद्याधर एवं सम्प्रदाय श्वेताम्बर था।

आचार्य हरिभद्रसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय में बौद्ध, नैयायिक, साङ्ख्य, जैन, वैशेषिक और जैमिनीय दर्शनों का परिचय-मात्र दिया गया है। षड्दर्शनसमुच्चय में न्याय और वैशेषिक को एक मान लेने से पञ्चदर्शनसमुच्चय ही होता है इसलिए उसमें चार्वाक का भी वर्णन करके दर्शनों की संख्या छः होने से षड्दर्शनसमुच्चय कहलाता है।

आचार्य हरिभद्रसूरि कृतित्व - आचार्य हरिभद्रसूरि की गन्थों की संख्या बहुत बडी मानी जाती है। पूर्व परम्परा के अनुसार वे १४००, १४४०, १४४४ प्रकरणों के कर्त्ता माने जाते हैं।[22] अभयदेवसूरि ने पंचाशक की टीका में आचार्य हरिभद्रसूरि को १४०० प्रकरणों का रचयिता कहा है। राज शेखर सूरि जी अपने प्रबन्धकोश में इनको १४४० प्रकरणों का रचयिता कहा है।[23] आचार्य हरिभद्रसूरि की रचनाओं को ३ भागों में विभक्त किया जा सकता है–

- **आगम ग्रन्थों एवं पूर्वाचार्यों की कृतियों पर टीकाएं –** आचार्य हरिभद्रसूरि ने यद्यपि आगमों की परम्परा के अनुसार ही इस साहित्य का सृजन किया है पर यह आगम काल से अधिक व्यवस्थित और तार्किकता लिए हुए हैं। भाषा की प्राजंलता और आगम मत विशिष्टताओं का सरलता से विशदीकरण करके आचार्य ने इन इन टीकाओं को अधिक महत्त्वपूर्ण और मार्मिक बना दिया है।

---

[20] वही, कारिका, १९८

[21] वही, कारिका, १९९

[22] ष. ड. स., भूमिका, पृ. ०४

[23] जिनविजय, मुनि श्री, हरिभद्रसूरि का समय निर्णय, पृ. ६२

- **स्वरचित ग्रन्थ एवं स्वोपज्ञ टीका –** आचार्य हरिभद्रसूरि ने जैन-दर्शन और समकालीन अन्य दर्शनों का गहन अध्ययन करके उन्हें अत्यन्त सूक्ष्म निरूपण शैली में प्रस्तुत किया है। इन ग्रन्थों में साङ्ख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, अद्वैत, चार्वाक, बौद्ध, जैन, आदि दर्शनों की अनेक तरह से आलोचना और प्रत्यालोचना की है। जैन-योग के तो वे आदि प्रणेता थे उनका योग विषयक ज्ञान मात्र सैद्धान्तिक नहीं था, अपितु वे योग साधना के प्रखर पण्डित थे। उन्होंने 'अनेकान्तजयपताका' नामक क्लिष्ट न्याय ग्रन्थ की भी रचना की थी।
- **कथा साहित्य –** आचार्य ने लोक प्रचलित कथाओं के माध्यम से धर्म-प्रचार को एक नया रूप दिया है, उन्होंने व्यक्ति और समाज की विकृतियों पर प्रहार कर उनमें सुधार लाने का प्रयास किया है। उनकी कथाओं में जहाँ त्याग, साधना और वैराग्य की प्रचुरता है, वहाँ जीवन के व्यवहारिक पहलुओं के छूने वाले भी अनेक प्रकरण हैं जिनमें आध्यात्मिकता और भौतिकता के समवेत स्वर हैं। उन्होंने समराइच्चकहा, धूर्ताख्यान और अन्य लघु कथाओं के माध्यम से अपने युग की संस्कृति का स्पष्ट एवं सजीव चित्रांकन किया है।
- **ग्रन्थ सूची –** आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित ग्रन्थ सूची में निम्न ग्रन्थ समाविष्ट हैं[24] -
  - **अनुयोगद्वारवृत्ति**
  - **अनेकान्तजयपताका**
  - **अनेकान्तघट्ट**
  - **अनेकान्तवादप्रवेश**
  - **धर्मसारमूलटीका**
  - **धूर्ताख्यान**
  - **नदीवृत्ति**
  - **न्यायप्रवेशसूत्रवृत्ति**
  - **अष्टकप्रकरण**
  - **आवश्यकनिर्युक्तिलघुटीका**
  - **उपदेशपद**
  - **कथाकोश**
  - **कर्मस्तववृत्ति**
  - **कुलक**
  - **क्षेत्रसमासवृत्ति**

---

24 मेहता, मोहन लाल, सं. दलसुख मालवणिया, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-३, पृ. ३६२

- चतुर्विंशतिस्तुति
- चैत्यवन्दनभाष्य
- जीवाभिगमलघुवृत्ति
- ज्ञानपंचकविवरण
- ज्ञानदिव्यप्रकरण
- दशवैकालिक – अवचूरि
- दशवैकालिक बहु टीका
- देवेन्द्र नरकेन्द्र प्रकरण
- द्विजवदनचपेटा
- धर्म बिन्दु
- धर्मलाभसिद्धि
- धर्मसङ्ग्रहणी
- लग्नशुद्धि
- लोकतत्वनिर्णय
- लोकबिन्दु
- विंशतिविंशिका
- न्यायविनिश्चय
- न्यायामृततरंगिणी
- पञ्चनिर्ग्रन्थी
- पञ्च लिङ्गी
- पञ्चवस्तुसटीक
- पञ्चसङ्ग्रह
- पञ्चसूत्रवृत्ति
- पञ्च स्थानक
- पञ्चाशक
- परलोकसिद्धि
- पिण्डनिर्युक्तिवृत्ति
- प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या
- प्रतिष्ठाकल्प
- वृहन्मिथ्यात्वमंचन
- मुनिपति चरित्र
- यतिदिनकृत्य
- यशोधरचरित
- योगदृष्टिसमुच्चय

- **योगबिन्दु**
- **योगशतक**
- **वीरस्तव**
- **वीरांगदकथा**
- **वेदबाह्यतानिराकरण**
- **व्यवहारकल्प**
- **शास्त्रवार्तासमुच्चय**
- **श्रावकप्रज्ञप्तिवृत्ति**
- **श्रावकधर्म तन्त्र**
- **षड्दर्शनसमुच्चय**
- **षोडशक**
- **समक्ति पचासी**
- **सङ्ग्रहणी वृत्ति**
- **सपञ्चासित्तरी**
- **संबोधसित्तरी**
- **संबोधप्रकरण**
- **संसारदावस्तुति**
- **आत्मानुशासन**
- **समराइच्चकहा**
- **सर्वज्ञसिद्धिप्रकरणसटीक**[25]
- **स्याद्वादकुचोद्यपरिहार**
- **दशवैकालिकवृत्ति –** इस वृत्ति का नाम 'शिष्यबोधिनी' वृत्ति है, यह 'भद्रबाहु' विरचित 'नियुक्ति' पर लिखी गई है। इसमें विभिन्न कथानक लिखे गये हैं, जो प्राकृत में हैं। मङ्गल की आवश्यकता बतायी गई है। अभ्यन्तर और बाह्य तप, ध्यान, श्रवण, आचार्य, पञ्चमहाव्रत, रात्रिभोज विमरण, चौदह गुणस्थान, विनय, आचारप्रसिद्धि की प्रक्रिया एवं फल की चर्चा की गई है।
- **आवश्यक वृत्ति –** यह टीका आवश्यक निर्युक्ति पर है, कहीं-कहीं भाष्य की गाथाओं का भी प्रयोग किया गया है। अनेक प्रान्तीय , प्राकृत और संस्कृत गाथाओं का समावेश है। इसमें २२००० श्लोक प्रमाण हैं। इसमें पाँच प्रकार के ज्ञान मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्य्याय और केवल ज्ञान का भेद, प्रभेदपूर्वक व्याख्यान किया गया है। सामयिक,

---

[25] द्विवेदी, तरूण कुमार, ष. ड. स.के मू., पृ. ४७

चतुर्विंशतिस्तव, वंदन, ध्यान, कार्योत्सर्ग, प्रत्याख्यान आदि का विस्तृत विवेचन किया गया है। प्रशस्ति में आचार्य ने अपना सङ्क्षिप्त परिचय भी दिया है।

- **अनुयोगद्वारवृत्ति –** मूलग्रन्थ चूर्णि-अंश के साथ तत्त्व-प्ररूपण, प्रमाण-प्ररूपण, निक्षेप प्ररूपण तथा नय प्ररूपण के आधार से दार्शनिक पक्ष में स्पष्ट किया गया है।
- **नन्दिवृत्ति –** यह वृत्ति नन्दीचूर्णि का ही रूपान्तर है। नन्दी में ज्ञान के अध्ययन की योग्यता-अयोग्यता का विचार करते हुए अयोग्य को ज्ञान देना अकल्याणकर कहा गया है। ज्ञान के भेद-प्रभेद, स्वरूप, विषय आदि का विस्तृत विवेचन किया है।[26]
- **प्रज्ञापनाप्रदेशव्याख्या –** इसमें मङ्गल की विशेष विवेचना की गई है। प्रज्ञापना के विषय, कर्त्तत्व आदि का विवेचन किया गया है। जीव प्रज्ञापना और अजीव प्रज्ञापना का वर्णन करते हुए एकेन्द्रियादि जीवों का विस्तारपूर्वक व्याख्यान किया गया है। वेद, लेश्या, इन्द्रियादि दृष्टियों से जीव-विचार, लोक, सम्बन्धी, आयुर्बन्ध, पुद्गल, द्रव्य, अवगाढ़ आदि सम्बन्धी अल्प-बहुत्व का विचार किया गया है। नरक सम्बन्धी नारकपर्य्याय, अवगाह षट्स्थानक, कर्मस्थिति तथा जीवपर्य्याय का विश्लेषण किया गया है। औदारिक शरीर, जीव-अजीव, गति, कषाय, इन्द्रिय, उपयाग, लेश्या, ज्ञान, दर्शन, चरित्र आदि की विस्तृत विवेचना है।[27]
- **योगविंशिका –** प्राकृत में निबद्ध योग-विषयक ग्रन्थ योगविंशिका है। २० गाथाओं में योगशुद्धि का विवेचन करते हुए स्थान, ऊर्ण, अर्थ-आलम्बन, अनालम्बन के भेद से ५ प्रकार का योग बताया गया है। योग की विकसित अवस्थाओं का वर्णन किया गया है।
- **अनेकान्तजयपताका –** यह जैन सिद्धान्त पर लिखा गया एक क्लिष्ट ग्रन्थ है। इसमें ६ अधिकार हैं, जिनमें क्रमशः सदसदरूपवस्तु, नित्यानित्यवस्तु, सामान्यविशेष, अभिलाप्यनभिलाप्य, योगाचार, मुक्ति आदि का गम्भीर वर्णन किया गया है। यह संस्कृत में लिखा गया ३५०० श्लोकों वाला प्रामाणिक ग्रन्थ है। सम्भवतः यह ग्रन्थ जैन दार्शनिक सिद्धान्त अनेकान्तवाद के विजयध्वज के रूप में प्रतिपादित किया गया है।
- **अनेकान्तप्रवेश -** यह संस्कृत में लिखा गया ग्रन्थ है। विषयवस्तु अनेकान्तजयपताका वाली ही है।

---

[26] मोहन लाल मेहता, सं. दलमालवणिया, जैनसाहित्य का बृहद् इतिहास, भाग – ३, पृ. ३६३

[27] वही, पृ.३७०

- **षोडशक –** यह २५७ गाथाओं में निबद्ध है। इसमें धर्म के आन्तरिक स्वरूप, धर्मपरीक्षा, देशना, प्रतिष्ठाविधि, पूजाफल, धर्मलक्षण, मन्दिर निर्माण आदि विषयों का विवेचन किया गया है। इसमें प्रत्येक विषय पर १६-१६ गाथायें हैं। इस पर यशोप्रभसूरि और यशोविजय जी की टीकायें उपलब्ध हैं।
- **ललितविस्तरा –** 'चैत्यवन्दन क्रिया' के सूत्रों पर यह वृत्ति है। इसमें अन्य दार्शनिक मान्यताओं का सूक्ष्म तर्कों से निराकरण किया गया है। तीर्थङ्करों के चरित्र, मोक्ष इत्यादि के बारे में भी उल्लेख किया गया है।
- **सर्वज्ञसिद्धि –** इसकी रचना गद्य और पद्य दोनों में हुई है। इसमें सर्वज्ञ की सत्ता सिद्ध करने का प्रयास किया गया है और सर्वज्ञ को न मानने वाले मीमांसा-दर्शन की आलोचना की गई है।
- **अष्टप्रकरण –** इस ग्रन्थ में आठ-आठ पद्यों के ३२ प्रकरण हैं, जिनमें आत्मवाद, नित्यवाद, क्षणिकवाद आदि विषयों का निरूपण किया गया है और धर्म, दर्शन, आचार, ज्ञान-मीमांसा का विवेचन किया गया है, जिसमें अनेकान्त मुखर है। चारित्र धर्म की व्याख्या करते हुए अहिंसा के विभिन्न आयाम स्पष्ट किये गये हैं। अन्त में तत्कालीन दार्शनिक चर्चाओं का उल्लेख किया गया है।
- **न्यायप्रवेश पर टीका –** हरिभद्र ने बौद्धाचार्य दिङ्नाग के 'न्यायप्रवेश' पर टीका लिखी है। इसमें मूल ग्रन्थ के विषय को स्पष्ट किया है और इस प्रकार जैन सम्प्रदाय में बौद्ध, न्याय के अध्ययन की परम्परा का शुभारम्भ किया है।
- **विंशतिविंशिका –** इसके २० प्रकरणों में प्रत्येक में २० गाथाएं हैं, उनमें लोक, अनादित्व, कूटनीति, चरमपरिवर्त, बीज, सन्दर्भ, दान, पूजाविधि, श्रावक-धर्म, यति-धर्म, शिक्षा, भिक्षा, आलोचना, प्रायश्चित, तदन्तराय, लिङ्ग, योग, केवलज्ञान, सिद्ध-भक्ति तथा सिद्ध-सुख आदि का वर्णन है। इनमें श्रावक तथा मुनिधर्म के सामान्य नियमों तथा नाना विधि-विधानों तथा साधनाओं का भी निरूपण है। आनन्दसूरि ने इस पर टीका लिखी है।
- **योगदृष्टिसमुच्चय –** इसमें कान्ता प्रभा और परा इन आठ दृष्टियों का विस्तृत वर्णन है। संसारी जीव की अचरभावर्तकालीन अवस्था को 'ओघदृष्टि' और चरमावर्तकालीन अवस्था का 'योगदृष्टि' कहा गया है। यशोविजयगणि और आचार्य की स्वयं कृत टीका भी उपलब्ध है, जो ११७५ श्लोक परिमाण की है। इसमें आचार्य ने मूल विषयों का विशद् स्पष्टीकरण किया है। योग की आठ दृष्टियों की पातञ्जल योग-दर्शन में आये यम, नियम, आसन,

प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि इन आठ योगाङ्गों के साथ तुलना की गई है।

- **योगशतक –** इस ग्रन्थ में १०१ गाथायें हैं। इसमें योग का निश्चय एवं व्यवहार दोनों दृष्टियों से विश्लेषण किया गया है। सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्चरित्र, इन तीनों के लक्षण, योगी का स्वरूप, आत्मा और कर्म का सम्बन्ध, योग के अधिकारी के लक्षण, लौकिक-धर्म, गृहस्थ का योग, साधु की समाचारी का स्वरूप, मैत्री आदि चार भावनाएँ, योगजन्य उपलब्धियाँ तथा उनका फल आदि विषयों का निरूपण किया गया है।[28]
- **धर्मसङ्ग्रहणी –** यह ग्रन्थ हरिभद्रसूरि जी का दार्शनिक ग्रन्थ है। १२९६ गाथाओं के द्वारा धर्म के स्वरूप का निक्षेपों द्वारा प्ररूपण किया गया है। मलयगिरि द्वारा इस पर संस्कृत टीका लिखी गई है। इसमें आत्मा के अनादि निधनत्व, अमूर्तत्व, परिमाणत्व, ज्ञायकत्व, कर्त्तत्व-भोक्तृत्व और सर्वज्ञसिद्धि का प्ररूपण है।[29]
- **ब्रह्मसिद्धान्तसार –** ४२३ पद्यों में रचित संस्कृत रचना है। इसमें सब दर्शनों का समन्वय किया गया है। इसमें मृत्यु-सूचक चिह्नों का उल्लेख है। इसकी बहुत सी गाथाएं हरिभद्रसूरि के अन्य ग्रन्थों में भी पाई जाती है।[30]
- **षड्दर्शनसमुच्चय –** यह दर्शन पर लिखी गई संस्कृत पद्यमय रचना है। आचार्य ने ८७ कारिकाओं में इस ग्रन्थ को समाप्त किया है। गुणरत्न ने इस पर टीका लिखी है। इसे विषय विभाग की दृष्टि से छः विभागों में विभक्त किया है। इसमें आचार्य ने छः भारतीय दर्शनों बौद्ध, नैयायिक, साङ्ख्य, जैन, वैशेषिक, जैमीनीय और चार्वाक का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। छः दर्शनों का आस्तिकवाद और चार्वाक को नास्तिकवाद की संज्ञा दी है। प्रत्येक दर्शन के निरूपण के समय वे उस दर्शन के मान्य देवता का भी सूचन करते हैं।
- **योगबिन्दु –** संस्कृत में रचित ५२७ पद्यों की रचना है। इसमें जैनयोग के विस्तृत प्ररूपण के साथ-साथ अन्य परम्परा सम्मत योग की भी चर्चा है और जैन योग की समालोचना की गई है। योग के अधिकारी और अनाधिकारी का निर्देश करते समय अचरमावर्त में वर्तमान संसारी जीवों को भवाभिनन्दी कहा है, जबकि चरमावर्त में वर्तमान शुक्लपाक्षिक भिन्न-ग्रन्थि और चारित्री जीवों का योग का अधिकारी कहा है। इस अधिकार के लिए पूर्व सेवा

---

[28] मेहता, मोहन लाल, जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-४, पृ. २२३-३६

[29] जैन, जगदीश चन्द्र, प्राकृत साहित्य का इतिहास, पृ.३३२

[30] मेहता, मोहन लाल, जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, भाग-४, पृ. २३७

के रूप में गुरु – प्रतिपत्ति, सदाचार, तप, मुक्ति के प्रति अद्वेष आदि गुणों का निर्देश किया है। विभिन्न प्रकार के चरित्रों के भेद के अन्तर्गत अपुनर्बन्धक, सम्यग्दृष्टि, देशविरति तथा सर्वविरति की चर्चा की गई है। आध्यात्मिक विकास में क्रमशः अध्यात्म, भावना, ध्यान, समता, वृत्तिसंक्षेप आदि भेदों का उल्लेख किया है। योगाधिकारी के अनुष्ठानों में विष, गरल, सद्-असद् अनुष्ठान और अमृतानुष्ठान का प्रतिपादन किया है। इसके स्पष्टीकरण के लिए सद्योग चिन्तामणि वृत्ति लिखी गई है, कई लोग इसे स्वोपज्ञ मानते हैं।[31]

- **शास्त्रवार्तासमुच्चय –** इसमें ७०० श्लोक हैं जो ग्यारह स्तबको में विभक्त हैं। इसमें प्रमुख दार्शनिक मान्यताओं की समीक्षा की गई है। इसमें भौतिकवाद, कालवाद, स्वभाववाद, नियतिवाद, कर्मवाद, ईश्वरवाद, प्रकृतिपुरूषवाद, क्षणिकवाद, विज्ञानवाद, शून्यवाद, ब्रह्माद्वैतवाद, सर्वज्ञता प्रतिषेधवाद का निरूपण किया गया है। हरिभद्रसूरि ने इस ग्रन्थ की व्याख्या भी स्वयं लिखी है, किन्तु संक्षिप्त है।
- **लोकतत्त्वनिर्णय –** लोकतत्त्वनिर्णय में हरिभद्रसूरि ने अपनी उदार दृष्टि का परिचय दिया है। अन्य दर्शनों के प्रस्थापकों को समन्वय दृष्टि से प्रस्तुत किया है। धर्म के मार्ग पर चलने वाले पात्र एवं अपात्र का विचार प्रस्तुत किया है। सुपात्र को ही उपदेश देने का विधान किया है।
- **लग्नशुद्धि –** लग्नशुद्धि १३३ गाथाओं में निबद्ध ज्योतिष ग्रन्थ हैं। इसमें गोचरशुद्धि, प्रतिद्वार दशक, मास, वार, तिथि, नक्षत्र, योगशुद्धि, सुगणदिन, रजछन्नद्वार, संक्रान्ति, कर्कयोग, हीरा, नवांश, द्वादशांश, षड्वर्गशुद्धि, उदयास्तशुद्धि इत्यादि विषयों पर चर्चा की गई है।[32]
- **द्विजवदनचपेटा –** यह एक व्यंग्यात्मक रचना है। इसमें ब्राह्मण परम्परा में पल रही मिथ्या धारणा एवं वर्णव्यवस्था का खण्डन किया गया है।
- **धूर्ताख्यान –** यह एक व्यंग्यप्रधान रचना है। इसमें वैदिक पुराणों में असंभव और अविश्वसनीय बातों का प्रत्याख्यान पांच धूर्तो की कथाओं द्वारा किया गया है। लाक्षणिक शैली की यह अद्वितीय रचना है। रामायण, महाभारत और पुराणों में पाई जाने वाली कथाओं की अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक, अबौद्धिक, मान्यताओं तथा प्रवृत्तियों का कथा के माध्यम से निराकरण किया गया है। व्यंग्य और सुझावों के माध्यम से असंभव और मनगढन्त

---

[31] मेहता, मोहन लाल, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-४, पृ. २३०-३३

[32] मालवणिया दलसुख सं., जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग-५, पृ. १६८

बातों को त्याग करने का संकेत दिया गया है। खड्ङपना के चरित्र और बौद्धिक विकास द्वारा नारी की विजय दिखलाकर मध्यकालीन नारी के चरित्र को उद्धाटित किया है।

- **सावयधम्मविहि -** १२० गाथाओं में सत्यत्व और मिथ्यात्व का वर्णन करते हुए श्रावकों के विधि-विधानों का प्रतिपादन किया गया है। यह प्राकृत भाषा में निबद्ध है। मानदेवसूरि ने इस पर टीका लिखी है।
- **धर्मबिन्दुप्रकरण -** इसमें ५४२ सूत्र हैं जो ४ अध्यायों में विभक्त हैं। श्रमण और श्रावक धर्म की विवेचना की गई है। श्रावक बनने के पूर्व जीवन को पवित्र और निर्मल बनाने वाले पूर्व मार्गानुसारी के ३५ गुणों की विवेचना की गई है। इस पर मुनि चन्द्रसूरि ने टीका लिखी है।
- **सम्यक्तवसप्तति –** इसमें १२ अधिकारों में ७० गाथाओं द्वारा सम्यक्त्व का स्वरूप बताया है। आष्ट प्रभावकों में वज्र स्वामी, भद्र बाहु, मल्लवादी, विष्णु कुमार, आर्य सपुट, पादलिप्त और सिद्धसेन का चरित्र प्रतिपादित किया गया है। इसमें सम्यक्त्व के ६७ बोलों पर प्रकाश डाला गया है। संघतिलक सूरि ने इस पर टीका लिखी है।
- **पंचाशक –** यह १९ पंचाशकों में विभक्त हैं। इसमें ९५० गाथाये हैं। इसमें श्रावक, धर्म, दीक्षा, चैत्यवन्दन, पूजा, प्रत्याख्यान, स्तवन, जिन-भवन, प्रतिष्ठा, यात्रा, साधुधर्म, यति समाचारी, पिण्डविधि, सीलांग, आलोचना विधि, प्रायश्चित, साधुप्रतिमा, तपोनिधि आदि का ५०-५० गाथाओं में वर्णन है।
- **सम्बोधप्रकरण –** १५९० पद्यों की प्राकृत रचना है तथा १२ अधिकारों में विभक्त है। इसमें गुरू, कुगुरु, सम्यक्त्व, देवों का स्वरूप, श्रावक धर्म और उसकी प्रतिमायें, व्रत, आलोचना, लेश्या, ध्यान, मिथ्यात्व आदि का वर्णन है।
- **उपदेशपद –** इसमें १०३९ गाथायें हैं, इस पर मुनि चन्द्रसूरि ने सुखबोधिनी टीका लिखी है। आचार्य ने धर्म कथानुपयोग के माध्यम से इस कृति में मन्दबुद्धि वालों के प्रबोध के लिए जैन धर्म के उपदेशों को सरल लौकिक कथाओं के रूप में संग्रहित किया है। मानव पर्याय की दुर्बलता एवं बुद्धि चमत्कार को प्रकट करने के लिए कई कथानकों का ग्रन्थन किया है। मनुष्य जन्म की दुर्लभता को चोल्लक, पाशक, धान्य, द्यूत, रत्न, स्वप्न, चक्रयूप आदि दृष्टान्तों के द्वारा प्रतिपादित किया गया है। बुद्धि के चार भेद औत्पत्तिकी, वैनयिकी, कर्मजा और परिणामिका का विस्तृत विश्लेषण किया गया है।
- **योगदृष्टिसमुच्चय –** यह २२६ पद्यों में रची गई है। आध्यात्मिक विकास की भूमिकाओं का तीन प्रकार से वर्णन किया गया है –

१. दृष्टि योग
२. इच्छा योग
३. सामर्थ्य योग

- **पञ्चवस्तुक –** इसमें १७१४ गाथायें हैं। इसमें पाँच अधिकारों में प्रव्रज्याविधि, दैनिक अनुष्ठान, गच्छाचार, अनियोग, गुणानुज्ञा और संलेकना की प्ररूपणा की गई है। इसमें मुनिधर्म सम्बन्धी साधनाओं का भी निरूपण है।
- **श्रावकप्रज्ञप्ति –** यह गाथाबद्ध ग्रन्थ प्राकृत भाषा में रचा गया है। गाथाओं की संख्या ४०१ है। १२ प्रकार के श्रावक धर्म की प्ररूपणा की गई है। शंकाओं का समाधान करके पक्षों को उजागर किया गया है। श्रावक की लक्षणा बताते हुए कहा गया है कि जो सम्यक दर्शन प्राप्त करके प्रतिदिन यतिजनों के पास सदाचार के उपदेश सुनता है, वह श्रावक है। इस पर स्वयं हरिभद्रसूरि ने दिक्प्रदा नामक संस्कृत टीका लिखी है, जिसमें जीव की नित्यता, अनित्यता संसार, मोक्ष आदि विषयों का निरूपण है।[33]

उपर्युक्त ग्रन्थों के अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि हरिभद्रसूरि एक प्रतिभाशाली लेखक थे। वैशेषिक-दर्शन, न्याय-दर्शन, जैन-दर्शन जैसे गूढ विषयों का निरूपण करने के साथ-साथ कथा जैसे सरल साहित्य का प्रणयन करके उन्होंने अपनी विद्वत्ता का परिचय दिया है तथा भारतीय जन-जीवन के विभिन्न रूपों को प्रस्तुत किया है।

- **पदार्थधर्मसङ्ग्रह -** वैशेषिक-दर्शन में इसे कुछ आचार्यों ने भाष्य की श्रेणी में रखकर इसे प्रशस्तपादभाष्य कहा है।[34] इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में इसको सङ्ग्रह ग्रन्थ ही माना गया है –

"प्रणम्य हेतुमीश्वरं मुनिं कणादमन्वतः।

पदार्थधर्मसङ्ग्रहः प्रवक्ष्यते महोदयः ॥"[35]

पारिभाषिक दृष्टि से भी यह सङ्ग्रह प्रतीत होता है। सङ्ग्रह का लक्षण इस प्रकार है –

"विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः।

---

[33] ष. ड. स. के मू., पृ. ७०

[34] व्योमवती, पृ.२०

[35] ढुण्ढिराजशास्त्री, प. द. सं. पृ.१

निबन्धो यः समासेन सङ्ग्रहन्त विदुर्बुधाः ॥"[36]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार का परिचय

पदार्थधर्मसङ्ग्रह के रचयिता प्रशस्तपाद हैं। इनका समय विभिन्न विद्वानों ने निम्नलिखित माना है –

१. बोडास – अनिश्चित

२. राधाकृष्णन – चतुर्थ शताब्दी

३. ए.वी.कीथ – पञ्चम शताब्दी

४. फ्राउवालनर – षष्ठ शताब्दी

प्रशस्तपाद की केवल दो ही रचनाएं ज्ञात होती हैं –

१. वाक्य-भाष्य टीका

२. पदार्थधर्मसङ्ग्रह

ढुण्ढिराजशास्त्री ने प्रशस्तपाद भाष्य की भूमिका में वाक्य-भाष्य टीका का नाम प्रशस्तमति हो ऐसी सम्भावना व्यक्त की है। उनका मानना है कि वाक्य-भाष्य टीका इनकी पहली कृति रही हो, बाद में उसकी विशालता के कारण उसी का सङ्क्षिप्त रूप पदार्थधर्मसङ्ग्रह के रूप में प्रस्तुत किया गया हो। वाक्य-भाष्य टीका का लुप्त हो जाना कुछ अंश में इस बात का प्रमाण हो सकता है कि अतिविशालता के कारण लोग उसको अधिक उपादेय नहीं मानते थे।[37]

इनकी दूसरी कृति पदार्थधर्मसङ्ग्रह है। इसके पदार्थसङ्ग्रह,[38] पदार्थ प्रवेश[39] या पदार्थ प्रवेशक[40] आदि नाम भी मिलते हैं किन्तु आजकल इसका सबसे प्रसिद्ध नाम प्रशस्तपादभाष्य है।[41]

प्रशस्तपादभाष्य पर आठ टीकाएं प्राप्त होती हैं, जिनमें व्योमवती, न्यायकन्दली तथा किरणावली अधिक प्रसिद्ध है।

---

[36] वही, भूमिका, पृ.२७

[37] प. ध. सं., पृ. २५

[38] व्योमवती, सर्वत्र प्रकरणान्त में

[39] न्यायकन्दली, प्रकरणान्त में

[40] प्र. क. मा., पृ. ५३१

[41] वही, पृ. २५

➢ **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** यह कृति शङ्कराचार्य की रचना है। इसमें चौदह दार्शनिक शाखाओं को समाहित किया गया है। ये शाखाएं निम्नलिखित हैं – लोकायतिकपक्ष, आर्हत (जैन) पक्ष, बौद्ध (माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक) पक्ष, वैशेषिकपक्ष, नैयायिकपक्ष, प्रभाकरपक्ष, भट्टाचार्यपक्ष, साङ्ख्यपक्ष, पतञ्जलिपक्ष, वेदव्यासपक्ष एवं वेदान्तपक्ष। इस ग्रन्थ में लोकायतिक (चार्वाक) पक्ष, पतञ्जलि (योग) पक्ष, वेदव्यास (पुराण) पक्ष एवं वेदान्तपक्ष को प्रथम बार स्थान मिला है। बौद्ध शाखा को माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक इन चार भागों में विभक्त कर दिया गया है। मीमांसा को भी प्राभाकर और कुमारिल पक्ष के रूप में स्थापित किया गया है। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह का प्रारम्भ अवैदिकदर्शनों से होता है। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में वैशेषिक, न्याय, भाट्ट दर्शन का निरूपण करते हुए कहते हैं कि वैशेषिकों ने,[42] नैयायिकों ने,[43] भाट्टों ने,[44] वेद प्रामाण्य को स्थापित किया है और वेदविरोधी दर्शनों का निराकरण किया है। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहकार सभी दर्शनों के अन्त में वेदान्त का कथन करते हैं।[45]

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहकार शङ्कराचार्य का परिचय

वेदान्त की भूमि भारत वर्ष में प्रसिद्ध नामों का अनुकरण करना एक प्राचीन परम्परा रही है। यही कारण है कि यहाँ एक ही नाम से अनेक लोगों ने प्रसिद्धि पाई है। आचार्य शङ्कर के व्यक्तित्व एवं कृतित्व की चर्चा करने से पूर्व हमें देखना है कि सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह ग्रन्थ के रचयिता क्या आदि गुरु श्री शङ्करभगवत्पाद ही है अथवा कोई अन्य पूर्ववर्ती या परवर्ती शङ्कराचार्य, क्योंकि प्रस्तुत ग्रन्थ के पाण्डुलिपियों को प्राप्त करने वाले कतिपय विद्वानों ने इसे आदि गुरु श्री शङ्कराचार्य की कृति होने पर शंका जाहिर की है।

एतदर्थ ध्यान देने पर ज्ञात होता है कि प्रो. जे. एगलिंग जिन्होंने इस ग्रन्थ को 'India Office in London' लाइब्रेरी के Manuscript No – 2442 से सम्प्राप्त किया। उनका अभिप्राय यह है कि (यह आद्य शङ्कराचार्य की ही कृति प्रतीत होती है।) 'The Work is (Wrongly) Ascribed Shankaracharya'. यहाँ कोष्ठक में Wrongly शब्द का देना इस बात का सूचक है कि प्रो. जे.

---

[42] नास्तिकान् वेदबाह्यास्तान् बौद्धलोकायतार्हतान्।
निराकरोति वेदार्थवादी वैशेषिकोऽधुना ॥ स. सि. सं., पृ. १८

[43] वही, पृ. १८

[44] वही, पृ. २०

[45] मुनि जिनविजय, समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि, पृ.४६

एगलिंग Wrongly वाले पक्ष से स्वयं भी पूर्णतः सहमत नहीं हैं। पुनश्च इस ग्रन्थ के अनुवादक श्री एम. रंगाचार्य का भी यही मत है और वह भी इसे आद्य शङ्कराचार्य की ही कृति मानते हैं।

श्री एम. रंगाचार्य इस ग्रन्थ को निर्बाध रूप से भाष्यकार भगवान शङ्कराचार्य की कृति स्वीकार करते हैं क्योंकि उनका कथन है कि यह कृति शेषगोविन्द से पूर्व के काल में भी शङ्कराचार्य की कृति के रूप में लोकविश्रुत थी।[46]

अतएव प्रस्तुत ग्रन्थ 'सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह' भाष्यकार श्री मच्छंकरभगवत्पाद की कृति है जो भाष्यकार श्री शेषगोविन्द को अपने गुरुदेव अद्वैतसिद्धिकार श्री मधुसूदन सरस्वती से प्राप्त हुई थी। आचार्य मधुसूदन सरस्वती का शिष्य[47] अपने गुरु से केवल आचार्य शङ्कर की ही कृति प्राप्त कर सकता है किसी अन्य की कृति को नही, अतएव संशयावकाश रहता ही नहीं कि सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह जगत्गुरु आद्यशङ्कराचार्य की ही कृति है।

शङ्कराचार्य – शङ्कराचार्य की कृति के रूप में दौ सौ से भी अधिक ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। आदि शङ्कराचार्य के द्वारा लिखित ग्रन्थों को हम तीन भागों में विभक्त कर सकते हैं –

१. भाष्य
२. स्तोत्र
३. प्रकरण ग्रन्थ

भाष्य ग्रन्थों को हम दो श्रेणियों में बाँट सकते हैं –

१. प्रस्थानत्रयी भाष्य
२. इतर ग्रन्थों के भाष्य

(क) प्रस्थानत्रयी भाष्य

१. ब्रह्मसूत्रभाष्य / शारीरक भाष्य
२. गीताभाष्य २/११श्लोक से

---

[46] `But it is evident that even before his time the `Sarva-Siddhant-Sangraha' was known to be the Work of Sankaracharya...........|" रंगाचार्य, एम.स. सि. सं. , पृ. १०

[47] गुरुणाम् मधुसूदनेन यद्यत्करुणापूरित चेतसोपदिष्टम्।
तदिदं प्रकटीभूतं मयास्मिन् भगवच्छङ्कपूज्यपादमूले ॥ अद्वैतसिद्धि

३. **उपनिषद्भाष्य –** आचार्य के द्वारा लिखित उपनिषद् भाष्य ये हैं – ईश, केन पर – पदभाष्य, वाक्यभाष्य - कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, तैत्तिरीय, ऐतरेय, छान्दोग्य, बृहदारण्यक, श्वेताश्वतर, नृसिंहतापिनी पर है।

(ख) इतर ग्रन्थों पर भाष्य

प्रस्थानत्रयी के अतिरिक्त अन्य ग्रन्थों पर भी शङ्कराचार्य विरचित भाष्य उपलब्ध हैं। इनमें कुछ उनकी असन्दिग्ध रचनाएँ हैं, परन्तु अन्य भाष्य वस्तुतः किसी शङ्कर द्वारा विरचित हैं –

असन्दिग्धभाष्य –

१. विष्णुसहस्रनामभाष्य
२. सनत्सुजातीय भाष्य
३. ललितात्रिशती भाष्य
४. माण्डूक्य कारिका भाष्य

निम्नलिखित भाष्यों को शङ्कर रचित मानने में सन्देह बना हुआ है –

(क) कौषीतकि उपनिषद्भाष्य
(ख) मैत्रायणी उपनिषद्भाष्य
(ग) कैवल्य उपनिषद्भाष्य
(घ) महानारायण उपनिषद्भाष्य
(ङ) हस्तामलक स्तोत्र-भाष्य
(च) अध्यात्मपटल-भाष्य
(छ) गायत्री-भाष्य
(ज) सन्ध्या-भाष्य

(ग) स्त्रोत्र-ग्रन्थ

गणेश स्तोत्र - गणेश पञ्चरत्न, गणेश भुजंग प्रयात, गणेशाष्टक, वरद गणेश-स्तोत्र।

शिव स्तोत्र - शिव भुजङ्ग, शिवानन्द लहरी, शिवपादादिकेशान्त स्तोत्र, वेद-सार शिव स्तोत्र, शिवापराधक्षमापण, सुवर्णमालास्तुति, दक्षिणामूर्ति वर्णमाला, दक्षिणामूर्ति अष्टक, मृत्युञ्जय मानसिक

पूजा, शिवनामावल्यष्टक, शिव पञ्चाक्षर, उमा महेश्वर, दक्षिणामूर्ति स्तोत्र, कालभैरवाष्टक, शिव पञ्चाक्षर नक्षत्र माला, द्वादशलिङ्ग स्तोत्र, दशश्लोकी स्तुति,

देवी स्तोत्र - सौन्दर्यलहरी, देवी भुजङ्ग स्तोत्र, आनन्द लहरी, त्रिपुर सुन्दरी वेदपाद, त्रिपुर सुन्दरी मानसपूजा, देवीचतुष्टयुपचार पूजा, त्रिपुरसुन्दर्यष्टक, ललिता पञ्चरत्न, कल्याण वृष्टिस्तव, नवरत्नमालिका, मन्त्रमात्रिका पुष्पमाला, गौरीदशक, भवानी भुजंग, कनक धारा, अन्नपूर्णाष्टक, मीनाक्षी पञ्चरत्न, मीनाक्षी स्तोत्र, भ्रमराम्बाष्टकम्, शारदाभुजङ्गप्रयाताष्टक।

विष्णु स्तोत्र – कामभुजङ्गप्रयात, विष्णुभुजङ्गप्रयात, विष्णुपादादिकेशान्त, पाण्डुरंगाष्टक, अच्युताष्टक, कृष्णाष्टक, हरिमीडे स्तोत्र, गोविन्दाष्टक, भगवान् मानस पूजा, जगन्नाथाष्टक।

युगलदेवता स्तोत्र – अर्धनारीश्वर स्तोत्र, उमा महेश्वर स्तोत्र, लक्ष्मी नृसिंह पञ्चरत्न, लक्ष्मीनृसिंह करूणरस स्तोत्र।

नदी तीर्थ विषयक स्तोत्र – नर्मदाष्टक, गङ्गाष्टक, यमुनाष्टक, मणिकर्णिकाष्टक, काशीपञ्चक।

साधारण स्तोत्र – हनुमत् पञ्चरत्न, सुब्रह्मण्यभुजङ्ग, प्रातः स्मरण स्तोत्र, गुर्वष्टक।

शङ्कराचार्य के नाम से ऊपर जिन ६४ ग्रन्थों का उल्लेख किया गया है उन्हें श्रंगेरी मठ के शङ्कराचार्य की अध्यक्षता में श्री वाणी विलास प्रेस से प्रकाशित शङ्कराचार्य ग्रन्थावली में स्थान दिया गया है।[48]

निःसन्दिग्ध आदि शङ्कर कृत स्तोत्र –

- आनन्द लहरी
- गोविन्दाष्टक
- दक्षिणामूर्तिस्तोत्र
- दशश्लोकी
- चर्पट पञ्चरिका
- द्वादशपञ्चरिका
- षट्पदी
- हरिमीडे स्तोत्र
- मनीषा पञ्चक
- सोपान पञ्चक
- शिवभुजङ्ग प्रयात

[48] उपाध्याय, बलदेव, श्री शङ्कराचार्य, पृ. १४५-१४६

प्रकरण-ग्रन्थ –

- आत्मबोध
- उपदेशसाहस्री
- पञ्चीकरण प्रकरण
- प्रबोध सुधाकर
- लघुवाक्यवृत्ति
- वाक्यवृत्ति
- विवेकचूडामणि
- शतश्लोकी
- सर्ववेदान्तसिद्धान्तसारसङ्ग्रह
- सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह

तन्त्र-ग्रन्थ

- सौन्दर्य लहरी
- प्रपञ्चसार
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** इसके कर्त्ता माधवाचार्य हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। यह गद्यपद्यमय रचना है। माधवाचार्य का समय १२९५ ई. से १३८५ ई. तक माना गया है।[49] सर्वदर्शनसङ्ग्रह में सोलह दर्शनों का वर्णन किया गया है जो निम्नलिखित हैं – चार्वाकदर्शन, बौद्धदर्शन, आर्हत (जैन) दर्शन, रामानुज (विशिष्टाद्वैत) दर्शन, पूर्णप्रज्ञ (द्वैत) दर्शन, नकुलीश-पाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञा (काश्मीरशैव) दर्शन, रसेश्वर (आयुर्वेद) दर्शन, औलूक्य (वैशेषिक) दर्शन, अक्षपाददर्शन, जैमिनि (मीमांसा) दर्शन, पाणिनि (व्याकरण) दर्शन, साङ्ख्यदर्शन, पातञ्जल (योग) दर्शन, शङ्कर (अद्वैत) दर्शन।

चार्वाकदर्शन में कहा गया है कि जब तक जीवन रहे सुख से जीना चाहिए, ऐसा कोई नही है जिसकी मृत्यु नही होती है अर्थात् सबकी होती है। शरीर नष्ट हो जाने के बाद पुनः प्राप्त नहीं होता है।[50] वेदों के कर्त्ता के विषय में कहते हैं कि वे धूर्त, भाण्ड, निशाचर थें।[51]

---

49 ऋषि, उमाशङ्करशर्मा, माधवाचार्यकृत स. द. सं., प्रस्तावना, पृ.४२

50 यावज्जीवं सुखं जीवेन्नास्ति मृत्योरगोचरः।
भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥ स. द. सं., चार्वाक-दर्शनम्, पृ. ०३

51 वही, चार्वाक-दर्शन, पृ. २१

माधवाचार्य बौद्ध-दर्शन का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ये बौद्ध लोग चार प्रकार की भावना से परम पुरुषार्थ को मानते हैं। ये बौद्ध माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक के नाम से प्रसिद्ध हैं, तथा क्रमशः इन सामान्य सिद्धान्तों को मानते हैं कि 'सब कुछ शून्य होता है', 'बाह्यपदार्थ शून्य होते हैं', 'बाह्यपदार्थों का अनुमान से ज्ञान होता है', 'बाह्य पदार्थों का प्रत्यक्ष से ज्ञान होता है',।[52] इन चार मतों के विषय में धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री कहते हैं कि "१४वीं शताब्दी से कुछ पहले से लेकर बाद के सभी दार्शनिक ग्रन्थों में इन चार बौद्धदार्शनिक सम्प्रदायों का वर्णन है, परन्तु बौद्धों के किसी प्रामाणिक ग्रन्थ में बौद्ध-दर्शन को इन चार सम्प्रदायों में बाँटा गया हो, ऐसा नहीं मिलता है।[53]

जैन-दर्शन में सर्वज्ञ के विषय में कहते हैं कि जो सब कुछ जानता हो, रागादि दोषों को जीत चुका हो, तीनों लोकों में पूजित हो, वस्तुएँ जैसी हैं उन्हें वैसी ही कहता हो, वही परमेश्वर अर्हत देव हैं।[54] सर्वदर्शनसङ्ग्रह में दूसरे दर्शन के लोगों के साथ व्यंग्य किया गया है। जिससे ऐसा प्रतीत होता है कि माधवाचार्य एक दर्शन से दूसरे दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध करना चाहते हैं।[55] सागरमल जैन कहते हैं कि सर्वदर्शनसङ्ग्रह की मूलभूत दृष्टि भी यही है कि वेदान्त ही एकमात्र सम्यग्दर्शन है।[56]

वैशेषिक-दर्शन का उल्लेख करते हुए कहते हैं कि जिसकी बुद्धि द्वित्व सङ्ख्या के विषय में, पाकज उत्पत्ति के विषय में, विभाग से उत्पन्न होने वाले विभाग के विषय में स्खलित नहीं होती है वह वैशेषिक कहलाता है।[57] साङ्ख्य-दर्शन का निराकरण करते हुए माधवाचार्य कहते हैं कि कोई राजकुमार नीचों के साथ रहते हुए अपने को उन्हीं का पुत्र समझने लगता है उसी प्रकार प्रकृति के

---

52 वही, बौद्धदर्शनम्, पृ. ३१

53 शास्त्री, धर्मेन्द्रनाथ, भारतीय दर्शन शास्त्र (न्याय-वैशेषिक), मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, बनारस, १९५३, पृ. १२,

54 सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।
यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः ॥ स. द. सं., जैनदर्शनम्, पृ. १०३

55 तदित्थं मुक्तकच्छानां ....। सर्वदर्शनसङ्ग्रह, जैनदर्शनम्, पृ. ९०

56 जैन सागरमल, जैन दार्शनिकों का अन्य दर्शनों को त्रिविध अवदान, सम्बोधि, vol.xxxiv,2011, सं. जे.बी. शाह, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, २०११

57 द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे।
यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुः। स. द. सं., औलूक्यदर्श्नम्, पृ. ३६०

साथ रहते हुए पुरुष भी सुख, दुःख से घिरा हुआ अनुभव करता है, तो उसको धिक्कार है, यह तो मिथ्या है।[58]

इसमें रामानुजदर्शन, पूर्णप्रज्ञदर्शन, नकुलीशपाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञादर्शन, रसेश्वरदर्शन एवं पाणिनिदर्शन को प्रथम बार दर्शन के रूप में स्वीकृति मिली है। बौद्ध की विभक्त दार्शनिक शाखाओं को स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत न कर केवल बौद्ध शाखा के रूप में प्रस्तुत किया गया। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह के व्यासपक्ष को यहाँ एक दार्शनिक शाखा के रूप में मान्यता नहीं दी गई।

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह -** भारतीय-दर्शन शास्त्र के सङ्ग्रह-ग्रन्थों के इतिहास में सर्वदर्शनसङ्ग्रह एक अद्वितीय ग्रन्थ है क्योंकि इसमें सभी दर्शनों का रहस्योद्घाटन किया गया है।[59] सभी दर्शनों का एकत्रीकरण ही सर्वदर्शनसङ्ग्रह है। यह माधवाचार्य का एक दार्शनिक सङ्ग्रह है। सर्वप्रथम माधवाचार्य ने सन् १३३१ में अपनी दर्शन प्रणालियों के महान समुच्चय ग्रन्थ का नाम सर्वदर्शनसङ्ग्रह रखा था।[60]

समस्त दर्शन रूपी क्षीर से आपूरित-पीयूष कलश के सदृश सर्वदर्शनसङ्ग्रह भारतीय-दर्शन की भूमिका के समान अनुपम सारगर्भित परिचय प्रस्तुत करता है। तत्त्वदर्शियों के बुद्धि सौम्य के तारतम्य के अनुसार उत्तरोत्तर सूक्ष्म दृष्टि युक्त दर्शन का संकलन करते हुए द्विविध नास्तिक एवं आस्तिक दर्शनों का मञ्जुल गुम्फन मौलिक क्रम से किया है, जैसे सर्वप्रथम सर्वसाधारण बुद्धि ग्राह्य चार्वाक तथा अन्त में गूढार्थ विवेचन युक्त अद्वैत दर्शन।[61]

इस सङ्ग्रह में माधवाचार्य ने पाण्डित्यपूर्ण शैली में अपने काल में आस्तिक-नास्तिक सभी दर्शनों का संकलन किया है। इस सम्पूर्ण ग्रन्थ में दर्शनों की विवेचना में उद्धरणों की पुष्कलता, लेखक की अप्रतिम मेधा शक्ति एवं नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा की विजय पताका प्रत्येक पंक्ति में प्रसारित कर रही है। जिसके माध्यम से सिद्धान्त सहज ही हृदयंगम हो जाता है। यह सङ्ग्रह समुच्चयकार की शैली एकरूपता का अद्वितीय दृष्टान्त उपस्थित करता है।[62]

---

58 वही, शाङ्करदर्शनम्, पृ. ७५७

59 भारतीय दर्शन, एस.एन. दास गुप्त, पृ. ६८

60 स. द. सं. , उमा शङ्कर शर्मा ऋषि, पृ. ४३

61 स. द. सं. के. अ. सां. द. का अ., पृ. १

62 स. द. सं., पृ. ३

उन्होंने निखिल दर्शनों के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तथा गूढार्थ रहस्यों की विवेचना अधिकाधिक स्पष्ट रूप से निर्विकार भाव से की है। इस समुच्चय ग्रन्थ में सभी शास्त्रों सहित षोडश दर्शनों का समावेश किया गया है। सर्वदर्शनसङ्ग्रह में विभिन्न षोडश दर्शनों का क्रम इस प्रकार रखा गया है –

- चार्वाक-दर्शन
- बौद्ध-दर्शन
- आर्हत दर्शन (जैन-दर्शन)
- रामानुज दर्शन (विशिष्टाद्वैत वेदान्त)
- पूर्णप्रज्ञ दर्शन (द्वैत वेदान्त)
- नकुलीश पाशुपत दर्शन
- शैव दर्शन
- प्रत्यभिज्ञा-दर्शन (काश्मीर शैव दर्शन)
- रसेश्वर-दर्शन (आयुर्वेद दर्शन)
- औलूक्य दर्शन (वैशेषिक-दर्शन)
- अक्षपाद दर्शन (न्याय-दर्शन)
- जैमिनी दर्शन (मीमांसा-दर्शन)
- पाणिनि-दर्शन (व्याकरण दर्शन)
- साङ्ख्य-दर्शन
- पातञ्जल दर्शन (योग-दर्शन)
- शाङ्कर दर्शन (अद्वैत वेदान्त)

इन सभी दर्शनों की विवेचना में माधवाचार्य की निष्पक्षता श्लाघनीय है। दर्शनों के अध्ययन में सर्वदर्शनसङ्ग्रह का अत्यन्त महत्त्व है। आध्यात्मिक दृष्टि के साथ-साथ तात्त्विक दृष्टि भी दर्शनों में उतनी ही महत्त्वपूर्ण है। दर्शनों में आध्यात्मिक और तात्त्विक दृष्टि का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। लेकिन समन्वय का अनुपात पृथक्-पृथक् भी है। इसी कारण भारतीय-दर्शन के इतिहास में सर्वदर्शनसङ्ग्रह का महत्त्व सर्वोपरि है। हरेती लाल ने अपने शोध-प्रबन्ध में सर्वदर्शनसङ्ग्रह को समस्त दार्शनिक शास्त्रों का संग्राहक ग्रन्थ माना है।[63]

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह के रचयिता –** भारतीय-दर्शन के सङ्ग्रह-ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण कृति सर्वदर्शनसङ्ग्रह के रचयिता के सम्बन्ध में विद्वानों में मत वैषम्य है। कुछ विद्वान्

---

[63] स. द. सं. के. अ. सां. द. का अ., पृ. ३

सर्वदर्शनसङ्ग्रह के अन्तर्गत मंगलाचरण श्लोक में उद्धृत 'सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभ' के आधार पर[64] तथा सर्वसर्वज्ञ विष्णु नामक गुह के उल्लेख के कारण उसे सायण पुत्र मायण अथवा माधवाचार्य की कृति मानते हैं। परन्तु यह मत समीचीन नही है, क्योंकि 'पुण्यश्लोकमञ्जरी' में सायण सहोदर माधवाचार्य के गुरु विद्यातीर्थ के ही अपर नाम सर्वज्ञ विष्णु का उल्लेख है तथा मध्व के वंश का भी नाम सायण था। इसलिए सायण वंश से उत्पन्न होने के कारण दुग्धाभिकोत्सुमं विशेषण लगाया गया है।[65]

अतः इन युक्तियों के आधार पर स्पष्ट सिद्ध होता है कि शृंगेरी मठ को गौरव एवं प्रतिष्ठा प्रदान करने वाले अत्यन्त बुद्धिमान्, त्यागी, व्यवहार चतुर, एक उत्कष्ट (श्रेष्ठ) कर्मयोगी की भाँति निष्काम भाव से राज्य स्थापन एवं धर्म रक्षण के कार्य करके आर्य संस्कृति को जीवन्त रखने वाले माधवाचार्य ही सर्वदर्शनसङ्ग्रह के रचयिता हैं।

- **माधवाचार्य का परिचय –** सर्वदर्शनसङ्ग्रह के समुच्चयकर्त्तामाधवाचार्य का जन्म १२९५ ई. में हुआ था। इनके पिता का नाम मायण तथा माता का नाम श्रीमती था। उनका परिवार बहुत प्रसिद्ध था क्योंकि विद्या के क्षेत्र में बहुत आगे बढ़ा-चढ़ा था।

ये बौधायन सूत्र के मानने वाले कृष्ण यजुर्वेदी ब्राह्मण थे। इनके वंश को सायण वंश के नाम से जाना जाता था। वेदों के विख्यात भाष्यकर्त्ता सायणाचार्य इसी वंश में उत्पन्न हुए थे। माधवाचार्य सायण के बडे भाई थे। ये सूचनाएँ माधवाचार्य ने पाराशर स्मृति[66] की अपनी व्याख्या में भी वर्णित की हैं।[67] कर्मयोगी की भाँति निष्काम भाव से राज्य स्थापन एवं धर्म रक्षण के कार्य करके आर्य संस्कृति को जीवन्त रखने वाले माधवाचार्य ही सर्वदर्शनसङ्ग्रह के रचयिता हैं।

दक्षिण भारत में तुङ्गभद्रा नदी के किनारे पम्पापुर सरोवर के समीप विजय नगर में एक सुप्रसिद्ध साम्राज्य था, जिसमें प्रायः १३३५ ई. के आस-पास में महाराज बुक्का सम्राट् हुए थे। इस साम्राज्य की स्थापना महाराज हरिहर प्रथम ने माधवाचार्य की ही प्रेरणा से की थी।

---

[64] श्री मत्सायणदुग्धाब्धिकौस्तुभेन महौजसा।
क्रियते माधवाचार्येण सर्वदर्शनसंग्रहः ॥ स. द. सं., माधवाचार्य, पृ. २

[65] श्री शाङ्र्गपाणितनयं निखिलागमज्ञं।
सर्वज्ञ विष्णु गुरुमन्वतमाश्रयेऽहम् ॥ स. द. सं., माधवाचार्य, पृ. २

[66] श्रीमति जननी यस्य सुकीर्तिमायणः पिता
सायणो भोगायाश्च मनोबुद्धो सहोदरो।
बोधायनं यस्य सूत्रं शाखा यस्य च याजुषी
भारद्वाजं यस्य गोत्रं सर्वज्ञः स हि माधवः ॥ पराशर माधव, माधवाचार्य

[67] भारतीय दर्शन, बलदेव उपाध्याय, पृ. १३३-१३४

माधव सम्राट् बुक्का के यहाँ मुख्यमंत्री पद पर कार्य करते थे।[68] कालान्तर में ये विद्यारण्य के नाम से शङ्कराचार्य बन गए थे। विद्यारण्य अर्थात् माधवाचार्य के विषय में अहोबल पण्डित ने अपने तेलगु व्याकरण में इस प्रकार लिखा है –

वेदानां भाष्यकर्त्ताविवृत्तमुनिवचा धातुवृतेर्विधाता,

प्रोघद्विधानगर्यो हरिहर नृपतेः सार्वभौमत्वदायी।

वाणी नीलाहि सरसिज निलया किंकरीति प्रसिद्धा

विद्यारण्योऽग्रगण्यो भवदरिवलगुरूः शंकरो नीतशड्कः ॥[69]

- इससे माधवाचार्य के विषय में स्पष्ट पता चलता है कि ये ही माधवीय धातुवृत्ति के भी रचयिता थे। परन्तु सभी कृतियों में सर्वदर्शनसङ्ग्रह इनका सर्वोत्कृष्ट दार्शनिक सङ्कलन है। इसके अतिरिक्त इन्होंने पञ्चदशी, वैयासिक-न्यायमाला आदि बहुत से महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे थे। बाद में माधवाचार्य बुक्का के गुरु बन गए थे।

माधवाचार्य का व्यक्तित्व -

- **राजनैतिक व्यक्तित्व रूप में –** दक्षिण भारत में अत्याचारी मुस्लिम राजाओं के भयङ्कर आक्रमण से जब वहाँ की हिन्दू प्रजा त्राहि –त्राहि पुकार रही थी तब माधवाचार्य की प्रेरणा से मुसलमानों को परास्त करने के लिए दक्षिण भारत में पम्पापुर सरोवर के पास महाराज हरिहर तथा बुक्का ने विशाल विद्यानगर की स्थापना की तथा विजय नगर के नाम से कालान्तर में वह नगर विख्यात हो गया। तत्पश्चात माधवाचार्य ने ८० वर्ष की आयु पर्यन्त मंत्री पद को सुशोभित करते हुए राज्य को सुदृढ़ करने में अथक परिश्रम करते हुए अत्यधिक सहायता की।
- **सन्यासी के रूप में –** माधवाचार्य ने कर्मप्रधान जीवन तथा गृहस्थाश्रम को त्यागकर भारतीय संस्कृति की जागृति की मंगल कामना से ओत-प्रोत होकर आत्मिक शान्ति हेतु संन्यास धारण करके १३७९ ई. में श्रृंगेरी मठ के शङ्कराचार्य पद पर स्थापित हुए। सन् १३८५ ई. में ९० वर्ष की अवस्था में इनकी इहलीला समाप्त हो गई अर्थात् माधवाचार्य का जीवन-काल १२९५ ई. से १३८५ ई. तक युक्तियुक्त माना गया है।[70]

---

68 स. द. सं., पृ. ४१

69 वही, पृ. ४२

70 स. द. सं., पृ. ४२

- **माधवाचार्य का कर्तृत्व –** माधवाचार्य ने अपनी सर्वतोमुखी प्रतिभा द्वारा श्रृंगेरी के पीठ पर आरूढ़ होने से पूर्व वैदिक धर्म की जागृति हेतु धर्मशास्त्र, मीमांसा सम्बन्धी ग्रन्थों का प्रणयन किया तथा जीवन की गोधूली में संन्यास ग्रहण करने पर अद्वैत वेदान्त के सारभूत ग्रन्थों की रचना की।

उनके निखिल कर्तृत्व को विषय की दृष्टि से चार भागों में विभक्त किया जा सकता है–

१. मीमांसा सम्बन्धी रचनाएँ
२. साहित्य सम्बन्धी रचनाएँ
३. धर्मशास्त्र सम्बन्धी रचनाएँ
४. अद्वैतवेदान्त के प्रतिष्ठापक ग्रन्थ

- **मीमांसा सम्बन्धी ग्रन्थ –** माधवाचार्य की अलौकिक विद्वत्ता, गाढ़ अनुशीलन एवं अप्रतिम मेधा शक्ति का ज्वलन्त उदाहरण जैमिनीय सूत्रों की व्याख्या स्वरूप **जैमिनीय न्यायमाला विस्तर ग्रन्थ** है जो मीमांसा के ग्रन्थों में इन्हें महत्त्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।
- **साहित्य सम्बन्धी रचनाएँ –** साहित्य के क्षेत्र में माधवाचार्य के व्यापक प्रभाव, अलौकिक पाण्डित्य, कर्म जीवन का चित्र प्रस्तुत करने वाला माधव कृत **शङ्कर दिग्विजय** अद्वितीय ग्रन्थ है।
- **धर्मशास्त्र विषयक ग्रन्थ –** धर्मशास्त्र के इतिहास में माधवाचार्य कृत पराशर स्मृति के आधार एवं प्रायश्चित अध्याय पर विस्तृत व्याख्या स्वरूप **पराशर माधव** एवं धर्मानुष्ठान हेतु व निश्चित तिथियों के निरूपण के लिए अन्य ग्रन्थ इनकी कीर्ति को धर्म-शास्त्र के क्षेत्र में अक्षुण्ण रखने में समर्थ है।
- **अद्वैत वेदान्त के प्रतिष्ठापक ग्रन्थ –** अद्वैत वेदान्त के मूल सिद्धान्तों के प्रतिपादनार्थ माधवाचार्य ने सच्चिदानन्द ब्रह्म के व्याख्यान स्वरूप प्रमेय बहुल **पञ्चदशी,** संन्यासियों के धर्मों का व्याख्यान करने वाला **जीवन्मुक्तिविवेक** सुरेश्वराचार्य के बृहदारण्यक-वार्तिक का सारभूत परिचय प्रस्तुत करने वाला **बृहदारण्यक वार्तिक-सार** तथा अद्वैत वेदान्त ज्ञान की अद्भुत कसौटी स्वरूप चतुस्सूत्री के प्रमेयों पर आधारित **विवरण प्रमेय सङ्ग्रह** तथा प्रमुख बारह उपनिषदों ऐतरेय, तैतिरीय, छान्दोग्य, मुण्डक, प्रश्न, मैत्रायणी, कौषितकी, कठ, श्वेताश्वेतर, बृहदारण्यक, केन, नृसिंह, उत्तरतापिनी के सिद्धान्तों के सारभूत विवरण स्वरूप ग्रन्थ **अनुपम प्रकाश** की रचना की। समस्त दर्शनों में माधवाचार्य की कीर्ति को अक्षुण्ण रखने में समर्थ **सर्वदर्शनसङ्ग्रह** भी अन्ततः अद्वैत वेदान्त की प्रतिष्ठापना हेतु ही निर्मित है।

- **माधवाचार्य तथा विद्यारण्य की अभिन्नता –** विद्यारण्य का पूर्व नाम माधवाचार्य था परन्तु राम राव इत्यादि कुछ समालोचक पुष्ट समसामयिक ऐतिहासिक प्रमाणों के अभाव के कारण माधवाचार्य विद्यारण्य से अभिन्न व्यक्ति थे। इस मत का भी उपस्थापन करते हैं।[71] परन्तु माधवाचार्य एवं विद्यारण्य अभिन्न व्यक्ति थे। इसका समर्थन अनेक प्रबल प्रमाणों के आधार पर किया जा सकता है। नरसिंह नामक ग्रन्थकार (१३६०-१४३५ई.) ने अपनी कृति **प्रयोग-पारिजात** में कालमाधव का रचयिता विद्यारण्य को लिखा है।[72] कालमाधव निःसन्दिग्ध रूप से माधव की कृति है इसलिए इस ग्रन्थकार को माधवाचार्य तथा विद्यारण्य की अभिन्नता स्वीकार है। नृसिंह सूर्य ने अपनी रचना तिथि प्रदीपिका में यह मत प्रस्तुत किया है कि विद्यारण्य, यतीन्द्र आदि अनेक विद्वानों ने काल का निर्णय किया है।[73]

मित्र मिश्र की प्रसिद्ध कृति वीर मित्रोदय (१६वीं शती) में विद्यारण्य को पाराशर स्मृति व्याख्या का लेखक लिखा है। यह ग्रन्थ वस्तुतः माधवाचार्य की रचना है।

प्रसिद्ध विद्वान् अहोबल पण्डित माधव के भागिनेय थे। इन्होंने तेलगु भाषा का व्याकरण संस्कृत में लिखा जिसमें अहोबल पण्डित का यह कथन बड़े महत्व का है कि विद्या नगरी में हरिहर राय को सार्वभौमिक पद देने का गौरव विद्यारण्य को दिया गया है।[74] शिलालेखों के आधार पर स्पष्ट ही है कि माधवाचार्य की प्रेरणा से ही विद्या नगरी की स्थापना हुई तथा हरिहर ने सार्वभौम पद ग्रहण किया।[75] अतः एक ही कार्य सम्पन्नता के कारण विद्यारण्य माधव से अभिन्न सिद्ध हो रहे हैं। इस प्रकार विद्यारण्य को माधव के अभिन्न सिद्ध करना इतिहास सम्मत है।

- **माधवाचार्य की माधव मन्त्री से भिन्नता –** विजय नगर में हरिहर तथा बुक्का के राज्य में अत्यधिक प्रकाण्ड विद्वान् तथा प्रतापी योद्धा मन्त्री पद पर प्रतिष्ठित थे। माधव मन्त्री के कार्य-

---

[71] Ramrao, Indian Historical Quarterly, Vol. VI, pp. 701-717, Vol, VII, pp 78-92

[72] श्री मद्विद्यारण्यमुनीन्द्रैः कालनिर्णये प्रतिपादिते प्रकारः प्रदर्शयते। श्री शङ्कराचार्य, बलदेव उपाध्याय, पृ. १९९

[73] अन्ताचार्यवर्येण मन्त्रिणा मन्विगुल्लता
विद्यारण्यः यतीन्द्राघे निर्णीतः कालनिर्णयः ॥
अतिः शेषोकृतस्तेश्च मम दिष्टया क्रियान् कियान्
तमहं सुस्फुटं वक्ष्ये ध्यात्वा गुरुपदाम्बुजम् ॥ श्री शङ्कराचार्य, बलदेव उपाध्याय, पृ. १९९

[74] प्रोघद्विधा नगर्या हरिहर नृपतेः सार्वभौमत्वदायी।
वाणीनीला हि वेणी सरसिज नीलया किङ्करीति प्रसिद्धाः
विद्यारण्यो अग्रगण्यो भवदखिल गुरुः शङ्करो वीतशङ्कः ॥ श्री शङ्कराचार्य, बलदेव उपाध्याय, पृ. १९९

[75] Epigraphical Karnatika, Shikarpur, Vol. vII, p. 281

कलाप नाम समता के कारण माधवाचार्य पर आरोपित किये जाते हैं परन्तु यह आरोप नितान्त इतिहास विरूद्ध है क्योंकि माधव मन्त्री का गौत्र आंगिरस, पिता चौराड़य, माता माचाम्बिका तथा गुरु काशीविलास क्रियाशील थे। जबकि माधवाचार्य का गोत्र भारद्वाज पिता का नाम मायण था। माधव मन्त्री ने केवल सूत संहिता की तात्पर्य दीपिका नामक विद्वत्तपूर्ण व्याख्या लिखी।[76] जबकि माधवाचार्य ने बहुत से अनेक ग्रन्थों की रचना भी की थी।

माधवाचार्य कृतित्व

माधवाचार्य ने निम्न लिखित ग्रन्थों की रचना की है –

- पाराशर माधव
- काल निर्णय
- जैमिनीय न्यायमाला विस्तार
- पञ्चदशी
- जीवन्मुक्तिविवेक
- विवरणप्रमेयसङ्ग्रह
- अनुपम प्रकाश
- उपनिषद्दीपिका
- नृसिंह तापनीय के उत्तरखण्ड पर वेदान्त विद्यारण्य ने 'दीपिका' टीका
- बृहदारण्यक वार्तिक सार
- शङ्कर दिग्विजय
- सर्वदर्शनसङ्ग्रह
- संगीतसार

उपरोक्त पञ्चदशी से लेकर शङ्कर दिग्विजय तक के ग्रन्थ वेदान्त परक है।

- **पराशर-माधव –** धर्मशास्त्र में पराशर का मत कलियुग में विशेष मान्य है।[77] पराशर स्मृति पर सबसे प्राचीन तथा विस्तृत व्याख्या माधवाचार्य की ही है। माधव ने स्वयं लिखा है कि

---

[76] श्रीमत्काशीविलासाख्य क्रियाशक्ति सेविना
श्रीमत्त्रयम्बकपादाख्य सेवा निष्णात चेतसा
वेदशास्त्र प्रतिष्ठिता श्रीमत्माधव मंत्रिणा
तात्पर्य दीपिका सूत संहिताया विधीयते ॥ आचार्य सायण और माधव,
बलदेव उपाध्याय, पृ. १३९

[77] कलौ पाराशरस्मृति, उपाध्याय बलदेव, आचार्य सायण और माधव, पृ. १४५

उनके पहले किसी ने भी इस पर टीका नहीं लिखी थी। अतः उन्होंने कलियुग के लिए उपयुक्त स्मृति पर स्वयं व्याख्यान लिखा –

पराशरस्मृतिः पूर्वैर्न व्याख्याता निबद्धिभिः।
मयाऽपि माधवाचार्येण तद् व्याख्यायां प्रयत्यते ॥

पराशर स्मृति में केवल ५९२ श्लोक हैं। इनमें केवल आचार तथा प्रायश्चित्त का ही वर्णन उपलब्ध होता है। प्रथम तीन अध्यायों में आचार का विषय तथा अन्तिम नौ अध्यायों में प्रायश्चित्त का वर्णन है। पराशर-माधव माधवाचार्य की अलौकिक विद्वत्ता, गहन अनुशीलन, अप्रतिम मेधाशक्ति का ज्वलन्त उदाहरण है।

- **काल-निर्णय –** यह माधव का धर्मशास्त्र विषयक दूसरा ग्रन्थ है। इसे काल-माधव के नाम से भी जानते हैं। पराशर-स्मृति की व्याख्या लिखने के बाद माधव ने धर्मानुष्ठान के काल का निर्णय करने के लिए इस ग्रन्थ की रचना की थी -

व्याख्याय माधवाचार्यो धर्मान् पाराशरानथ।
तदनुष्ठानकालस्य निर्णयं वक्तुमुद्यतः ॥[78]

इस ग्रन्थ में पाँच प्रकरण हैं –

पञ्च प्रकरणान्यत्र तेषूपोद् घातवत्सरौ।
प्रतिपच्छिष्टतिथयो नक्षत्रादिरिति क्रमः ॥[79]

- **जैमिनीय न्यायमाला विस्तर –** माधवाचार्य ने जैमिनीय-सूत्रों को बोधगम्य बनाने के विचार से न्यायमाला नामक पुस्तक लिखी, जिसमें अधिकारियों का विवेचन बड़ी सुन्दरता के साथ किया गया है। ग्रन्थ कारिका बद्ध है। साधारणतया प्रत्येक अधिकरण के लिए दो कारिकाएं हैं। पहले पूर्वपक्ष का उत्थान है और बाद में सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। न्यायमाला की रचना पर इनके आश्रयदाता बुक्कराय प्रसन्न हो गये, उन्होंने भरी सभा में इनकी प्रशंसा की और इस ग्रन्थ के ऊपर विस्तृत टीका लिखने के लिए कहा –

स्व खलु प्राज्ञजीवातुः सर्वशास्त्रविशारदः।
अकरोत् जैमिनिमते न्यायमालां गरीयसीम् ॥
तां प्रशस्य सभामध्ये वीरश्रीबुक्कभूपतिः।
कुरु विस्तारमस्यास्त्वमिति माधवमादिशत् ॥
निर्माय माधवाचार्यो विद्वदानन्द दायिनीम्।

---

78 कालमाधव, कारिका - १

79 वही, पृ. २

जैमिनीन्यायमालां व्याचष्टे बालबुद्धये ॥[80]

- **पञ्चदशी –** विद्यारण्य ने इसमें अद्वैत वेदान्त के गूढ़ विषयों को सरल तथा सरस पद्यों में समझाया है।

  इस ग्रन्थ में तीन बड़े विभाग हैं – विवेक प्रकरण, दीप प्रकरण, आनन्द प्रकरण। प्रत्येक प्रकरण पाँच अध्यायों में विभक्त है। जिनके नाम से भी विषयों का ज्ञान हो जाता है। इन अध्यायों के नाम -

  (क) **विवेक प्रकरण –** तत्त्वविवेक, पञ्चभूतविवेक, पञ्चकोश विवेक, द्वैत विवेक, महावाक्य विवेक।

  (ख) **दीप प्रकरण –** चित्रदीप, तृप्तिदीप, कूटस्थदीप, ध्यानदीप, नाटक दीप।

  (ग) **आनन्द प्रकरण –** योगानन्द, आत्मानन्द, अद्वैतानन्द, विद्यानन्द, विषयानन्द।

- **जीवन्मुक्तिविवेक –** विद्यारण्य की यह अद्वैत परक प्रौढ़ रचना है। इस ग्रन्थ में चार अध्याय हैं। प्रथम अध्याय विस्तृत है। इसमें संन्यास के स्वरूप तथा विविध भेदों का विवरण प्राचीन ग्रन्थों के प्रामाणिक उद्धरणों के साथ विस्तार से दिया गया है। जीवन्मुक्ति के तीन साधन होते हैं – तत्त्वज्ञान, मनोनाश, वासना क्षय। वासना क्षय का वर्णन द्वितीय अध्याय में किया गया है। तृतीय अध्याय में मनोनाश का विवेचन है। मनोनाश के लिए योग की विविध क्रियाओं का वर्णन किया गया है। चतुर्थ अध्याय में जीवन्मुक्ति के पाँच प्रयोजनों का विवेचन किया गया है। इस पर अच्युतराय मोडक की पूर्णानन्देन्दुकौमुदी नामक विस्तृत व्याख्या है ।
- **विवरण प्रमेय सङ्ग्रह –** विद्यारण्य के वेदान्त ज्ञान का अद्भुत परिचायक ग्रन्थ है। इसका अपर नाम विवरणोपन्यास है। यह चार सूत्रों की व्याख्या है। यह ग्रन्थ नौ वर्णक या विभागों में विभक्त है।[81]
- **अनुपम प्रकाश –** यह ग्रन्थ बीस अध्यायों में विभक्त है। इसमें उपनिषदों में प्रतिपादित सिद्धान्तों का विवरण कारिकाओं में किया गया है। इसमें बारह उपनिषदों के सारांश क्रम से दिये गये हैं – ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य तीन अध्याय, मुण्डक, प्रश्न, कौषीतकी दो अध्याय, मैत्रायणी, कठ, श्वेताश्वतर, बृहदारण्यक (तेरह से लेकर अठारह अध्याय तक), केन, नृसिंह उत्तरतापिनी। काशीनाथ शास्त्री ने इस पर मितविवृति टीका की रचना की है।

---

[80] जैमिनीय न्यायमाला विस्तर, कारिका - ८

[81] उपाध्याय, बलदेव, आचार्य सायण और माधव, पृ. १५१

- **उपनिषद्दीपिका –** ऐतरेय उपनिषद् अथा नृसिंह तापनीय के उत्तर खण्ड पर विद्यारण्य ने दीपिका टीका लिखी है।
- **वृहदारण्यक वार्तिक सार –** विद्यारण्य स्वामी का यह ग्रन्थ अद्वैत वेदान्त के चूड़ान्त ग्रन्थों में गिना जाता है। वृहदारण्यक उपनिषद् स्वरूपतः तथा अर्थतः सब उपनिषदों में श्रेष्ठ समझा जाता है। इस उपनिषद् पर सुरेश्वराचार्य ने वार्तिक लिखा है।[82] वार्तिक के सार अंश को उपस्थित करने के लिए विद्यारण्य ने इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसकी कारिकाएं अत्यन्त सरल, सरस तथा सारगर्भित है।
- **शङ्कर दिग्विजय –** इसमें आचार्य शङ्कर का बृहद् जीवन चरित वर्णित है। इसमें सोलह सर्ग हैं।
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** यह माधवाचार्य का दर्शन विषयक ग्रन्थ है। इसमें आस्तिक-नास्तिक सभी सोलह दर्शनों का विवेचन प्राप्त होता है। यह भारतीय दर्शनों की सभी शाखाओं को एक ही ग्रन्थ में सार रूप में निबद्ध करता है। ग्रन्थ का प्रारम्भ चार्वाक-दर्शन से तथा अन्त वेदान्तदर्शन से होता है।
- **संगीत सागर –** विद्यारण्य ने संगीत शास्त्र के ऊपर भी ग्रन्थ लिखा है जिसका निर्देश तंजौर के विख्यात राजा रघुनाथ नायक के नाम से प्रसिद्ध संगीत-सुधा में प्राप्त होता है।[83]
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह** –सर्वदर्शनसङ्ग्रह में लेखक का प्रमुख मन्तव्य उस काल तक प्रवर्तित समस्त भारतीय दर्शनों के संक्षिप्त रूप में निदर्शन तथा उन पर व्याख्यात्मक विवेचन प्रस्तुत करना था। किन्तु यह वस्तुतः आश्चर्यजनक तथ्य है कि लेखक ने शाक्त दर्शन एवं शैव तथा वैष्णव दर्शनों की कतिपय शाखाओं की ओर ध्यान नही दिया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि माधवाचार्य ने शैव दर्शन एवं वैष्णव दर्शन की कतिपय शाखाओं की विस्तार पूर्वक विवेचना की है। संभव है कि उन्होंने भारतीय दर्शनों के विवेचन की भारतीय परम्परा में पहली बार इन धार्मिक प्रस्थानों का विवेचन किया हो और इसी कारण वे केवल चार शैव सम्प्रदायों एवं दो वैष्णव सम्प्रदायों का विवेचन ही कर सके हों।

  सर्वदर्शनसङ्ग्रह की अन्तर्वस्तु का संक्षिप्त निदर्शन कराने के प्रारम्भ में यह संकेतित करना अनिवार्य है कि इस ग्रन्थ में वर्णित सभी दार्शनिक प्रस्थानों में आधुनिक काल में सुविदित दर्शन की तत्व मीमांसा, ज्ञान मीमांसा एवं आचार मीमांसा की तीनों शाखाओं को समान महत्ता प्राप्त नही है। विभिन्न दर्शनों में इनमें किसी एक शाखा को अधिक महत्व प्राप्त है तो दूसरी को कम। न्याय-दर्शन में जहाँ ज्ञान मीमांसा या प्रमाण मीमांसा का शीर्ष स्थानीय महत्त्व

---

82 उपाध्याय, बलदेव, आचार्य सायण और माधव, पृ. १५३

83 अय्यर, सुन्दरम, श्री विद्यारण्य ऐण्ड म्यूजिक, पृ. ३३२-३४२

है वहीं इसके समान तन्त्रभूत वैशेषिक-दर्शन में तत्व मीमांसा प्रधान विवेच्य है। माधवाचार्य का विवेचन भी इसी तथ्य पर समाश्रित है।[84]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में सोलह अध्याय हैं। इनमें क्रमशः चार्वाक-दर्शन, बौद्ध-दर्शन, जैन-दर्शन, रामानुज दर्शन, विशिष्टाद्वैतपूर्णप्रज्ञ, द्वैतवेदान्त, नकुलीश-पाशुपत, शैव प्रत्यभिज्ञा, काश्मीरी शैव दर्शन, रसेश्वर-दर्शन, औलुक्य दर्शन, अक्षपाद दर्शन, जैमिनी दर्शन, पाणिनि-दर्शन, साङ्ख्य-दर्शन, पातञ्जल दर्शन, शाङ्कर दर्शन। अद्वैत वेदान्त इन सभी दर्शनों का साङ्गोपाङ्ग विवेचन किया गया है। कुछ विद्वानों की मान्यता है कि सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार ने पातञ्जल दर्शन के विवेचन के अन्त में निम्नलिखित पंक्तियों द्वारा ही अपनी रचना को समाप्त कर दिया है –

इतः परं सर्वदर्शनशिरोमणिभूतं शांकरदर्शनमन्त्रय लिखितमित्यत्रोपोक्षतमिति।[85]

अर्थात् इसके उपरान्त समस्त दर्शनों में शिरोमणिभूत शाङ्कर दर्शन का अन्यत्र विवेचन होने से उसे यहाँ नहीं दिया जा रहा है। कुछ विद्वानों ने इन पंक्तियों को लिपिकार का योगदान कहकर शाङ्कर दर्शन के विवेचन को सर्वदर्शनसङ्ग्रह का मौलिक स्वरूप माना है तो कुछ एक ने यह प्रतिपादित किया है कि माधवाचार्य ने बाद में अपने समकालीन आचार्यों के अनुरोध पर इस अध्याय को ग्रन्थों में जोड़ दिया होगा।[86]

माधवाचार्य के दर्शन विषयक समस्त शास्त्रों के ज्ञान का अप्रतिम निदर्शन स्वरूप सर्वदर्शनसङ्ग्रह का उद्देश्य केवल मात्र दर्शनों का संकलन ही नहीं परन्तु यह एक ऐसा निबन्ध है जिसमें अद्वैत मत की स्थापना सर्वथा मैलिक रूप से अन्य दर्शनों को भी यथार्थ रूप में प्रस्तुत कर उनकी अपेक्षा शांकर दर्शन को प्रधानता देते हुए की गई है। इसी लक्ष्य की सिद्धि के लिए उन्होंने दर्शनों को सर्वथा एक मौलिक क्रम से प्रस्तुत किया है जिसके विगत दर्शन का खण्डन करते हुए उत्तरोत्तर अन्य दर्शनों का समारम्भ करते हैं। समस्त दर्शनों में शिरोमणि अद्वैत वेदान्त पर आरोपित समस्त शंकाओं का तर्कसंगत समाधान प्रस्तुत करते हैं।

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** सर्वदर्शनकौमुदीकार ने इस ग्रन्थ का विभाजन वैदिक और अवैदिक रूप में किया है। वेद को प्रमाण मानने वालों को वह शिष्ट मानता है और वेद के प्रमाण को स्वीकार नहीं करने वाले बौद्ध आदि को अशिष्ट मानता है।[87] वैदिक दर्शनों में इनके अनुसार तर्क, तन्त्र, साङ्ख्य ये तीन दर्शन हैं। तर्क के दो भेद हैं- वैशेषिक और न्याय। तन्त्र के दो भेद हैं- शब्दमीमांसा (व्याकरण)

---

[84] स. द. सं. के. अ. सां. द. का अ., पृ. १०

[85] स. द. सं., उमा शङ्कर शर्मा, पृ. ७३९

[86] महामहोपाध्याय बी.एस. अभ्यंकर द्वारा सम्पादित स.द.सं.की भूमिका से

[87] वेदप्रामाण्याभ्युपगन्ता शिष्टः। तदनभ्युपगन्ता बौद्धोऽशिष्टः। सरस्वती, माधव, स. द. कौ, पृ. ३

तथा अर्थमीमांसा। अर्थमीमांसा के दो भेद हैं – पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा। पूर्वमीमांसा के दो भेद हैं- भाट्ट और प्राभाकर।

साड़्ख्यदर्शन के दो भेद हैं – १. सेश्वर साङ्ख्य २. निरीश्वरसाड़्ख्य (प्रकृतिपुरुष के भेद का प्रतिपादक)

इस प्रकार वैदिक दर्शनों के छः भेद हैं – योग, साड़्ख्य, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, न्याय, वैशेषिक। वैशेषिक-दर्शन के अन्तर्गत ही जैन-दर्शन का वर्णन प्राप्त होता है।[88] इसका प्रारम्भ वैशेषिक-दर्शन से होता है। तत्पश्चात् न्याय, मीमांसा, साड़्ख्य और योग-दर्शन आदि का उल्लेख है। अवैदिक दर्शन के तीन भेद हैं – बौद्ध, चार्वाक और आर्हत। बौद्ध-दर्शन के चार भेद हैं – माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक।[89]

प्रस्थानभेद

प्रस्थानभेद मधुसूदन सरस्वती की रचना है। इसका प्रारम्भ चतुर्दश विद्याओं से होता है।[90] इसमें द्वादश दार्शनिक शाखाओं का नामोल्लेखपूर्वक विवेचन है। ये हैं – न्याय, वैशेषिक, कर्ममीमांसा, शारीरकमीमांसा, पातञ्जल, पाञ्चरात्र (वैष्णव), पाशुपत, बौद्ध, दिगम्बर, चार्वाक, साङ्ख्य एवं औपनिषद्। इसमें सौगतदर्शन के प्रस्थान चतुष्टय, चार्वाक तथा जैनों का नामतः निर्देश कर उनको पुरुषार्थ में अनुपयोगी बतला कर छोड़ दिया गया है।[91] मधुसूदन सरस्वती ने नास्तिकों के छः प्रस्थानों का उल्लेख किया है – माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक तथा चार्वाक और दिगम्बर।[92] न्याय, वैशेषिक, साड़्ख्य, योग, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, पाशुपत और वैष्णव दर्शनों को भी वैदिक आस्तिक दर्शनों में रखा है।[93] इसमें वेद को धर्म, ब्रह्म प्रतिपादक, अपौरुषेय कहा है।[94] वेद को दो

---

88 मालवणिया दलसुख, ष. ड. स. , प्रस्तावना, पृ. १४

89 सरस्वती, माधव, स. द. कौ, पृ. ४

90 ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेद इति वेदाश्चत्वारः। शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरूक्तं छन्दो ज्योतिषामिति वेदाड़्गानि षट्। पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्राणि चेति चत्वार्युपाड़्गानि। सरस्वती मधुसूदन, प्र. भे. , सं. हरि, नारायण, पृ. १

91 वेदबाह्यत्वात्तेषां म्लेच्छादिप्रस्थानवत्परम्परयाऽपि पुरुषार्थानुपयोगित्वादुपक्षेणीयमेव। सरस्वती, मधुसूदन, प्र.भे.,पृ. १

92 एवं मिलित्वा नास्तिकानां षट् प्रस्थानानि। प्र. भे.,पृ. १

93 वही, पृ. ४-१०

94 वही, पृ. २

भागों में विभाजित किया है – मन्त्र और ब्राह्मण।[95] इसमें उपवेद वेदाङ्गों, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिसार की चर्चा प्राप्त होती है। यहाँ पर औपनिषद् दर्शन की नवीन स्वीकृति हुई है।[96]

मधुसूदन सरस्वती के काल सम्बन्धी मान्यता १३५० ई. से प्रारम्भ होकर १६७५ ई. तक मिलती है।

- लासन – १३५० ई.
- के. टी. तैलंग - १४७५ ई.
- एम. विण्टरनित्ज – १४७५ ई.
- रामाज्ञा शर्मा – १५४०-१६२८ ई.
- श्री कृष्ण शर्मा – १५४०-१६२३ ई.
- पी.सी.दीवानजी – १५४०-१६४७ ई.
- जे. एन. फाख्वर - १५६५ ई.
- चिन्ताहरण चक्रवर्ती – १५३८ ई.
- एस. एल. कात्रे – १५००-१५९३ ई.[97]
- गोपीनाथ कविराज – १५४५- १६१७ ई.[98]
- म. म. वासुदेव शास्त्री अभ्यंकर – १५७०-१६७५ ई.[99]

कृति परिचय – मधुसूदन सरस्वती के नाम से अनेक रचनाएँ प्रसिद्ध हैं। प्रो. ऑफरेक्ट[100] ने मधुसूदन सरस्वती के नाम पर निम्नलिखित कृतियों का उल्लेख किया है –

- अद्वैतब्रह्मसिद्धि[101]
- अद्वैतरत्नरक्षण

---

95 प्र. भे., पृ. २

96 झा, रामनाथ, साङ्ख्यदर्शन, विद्यानिधि प्रकाशन, दिल्ली, २००८

97 S.l.katre, ``Date of Madhusudan Saraswati’s Vedanta Kalplatika’’, Poona Oriental list, vol.XIII

98 Gopinath Kaviraj, ``Date of Madhusudan Saraswati’s’’, Saraswati Bhawana Studies, vol. VII

99 बाबूलाल, सिद्धान्तबिन्दु : समालोचनात्मक अध्ययन, पृ. ७-१०

100 Catalogus Catalogarum, Vol. I, p.427

101 प्रो. ऑफरेक्ट द्वारा ‘अद्वैतसिद्धि’ के स्थान पर ‘अद्वैतब्रह्मसिद्धि’ लिख दिया गया है, जबकि ‘अद्वैतब्रह्मसिद्धि’ मधुसूदन सरस्वती के पश्चाद्वर्ती सदानन्दयति द्वारा प्रणीत है।

- आत्मबोध-टीका
- आनन्दमन्दाकिनी
- ऋग्वेदजटाद्यष्टविकृतिविवरण
- कृष्णकुतूहलनाटक
- प्रस्थान भेद
- भक्तिसामान्यनिरूपण
- भगवद्गीतागूढार्थदीपिका
- भगवद्भक्तिरसायन
- भागपुराण प्रथम श्लोक व्याख्या
- भागवतपुराणाद्यश्लोक-त्रय व्याख्या
- महिम्नस्तोत्रव्याख्या
- राज्ञां प्रतिबोधः
- वेदस्तुतिटीका
- वेदान्तकल्पलतिका
- शाण्डिल्यसूत्रटीका
- शास्त्रसिद्धान्तलेश टीका
- सङ्क्षेपशारीरकसारसङ्ग्रह
- सर्वसिद्धान्तवर्णन (प्रस्थान भेद)
- सिद्धान्तबिन्दु
- हरिलीला व्याख्या

प्रस्थान भेद

महिम्नस्तोत्र के सप्तम श्लोक 'त्रयी साङ्ख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति' की व्याख्या में उन्होंने प्रस्थान-भेदों का निदर्शन किया है। इन्हीं प्रस्थान-भेदों को प्रो. ऑफरेक्ट ने प्रस्थान भेद नाम से इसे स्वतन्त्र ग्रन्थ मान लिया है।[102]

सर्वसिद्धान्तवर्णन के साथ कोष्ठक में प्रस्थान-भेद का नाम देना यह व्यक्त करता है कि कदाचित् यह प्रस्थान-भेद ही हो।[103]

---

102 मधुसूदन सरस्वती का दर्शन, अभिलाषा चौधरी, राष्ट्रीयसंस्कृतसाहित्यकेन्द्र, जयपुर, २००८, पृ.९

103 मधुसूदन सरस्वती का दर्शन, अभिलाषा चौधरी, राष्ट्रीयसंस्कृतसाहित्यकेन्द्र, जयपुर, २००८, पृ.९,

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक

इसकी भाषा संस्कृत है। यह गद्यमय कृति है। सर्वसिद्धान्त अर्थात् सभी भारतीय दर्शनों का परिचायक सर्वसिद्धान्तप्रवेशक जैसलमेर ग्रन्थालय में विद्यमान ताड़पत्र पर लिखित इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। इन पाण्डुलिपियों के कर्त्ता का नाम अज्ञात है। ताड़पत्र पर लिखी गयी इन प्रतियों में ग्रन्थकार ने अपने नाम का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, परन्तु मङ्गलाचरण के अनुसार जैन मुनि

ही इस ग्रन्थ के रचयिता प्रतीत होते हैं।[104] इस ग्रन्थ के अन्तरंग उद्धहरणों से ग्रन्थकार का काल आचार्य

हरिभद्र के पश्चात् अर्थात् विक्रम की आठवीं शती के पश्चात् और बारहवीं शताब्दी के पूर्व माना जा सकता है। इसमें उस काल के प्रधान एवं प्रसिद्ध दर्शनों यथा न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, बौद्ध, जैन, मीमांसा और लोकायत का उन–उन दर्शनों के प्राचीन ग्रन्थानुसार वर्णन किया गया है।

अपने ग्रन्थ के वर्ण्य विषय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इस ग्रन्थ में सभी दर्शनों के प्रमाण, प्रमेय का निरूपण किया जा रहा है।[105] इसमें वर्णित दर्शनों का क्रम इस प्रकार है – न्याय, वैशेषिक, जैन, साङ्ख्य, बौद्ध, मीमांसा, लोकायत। न्याय-दर्शन में प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन आदि षोडश पदार्थों का वर्णन किया गया है। इसमें प्रत्येक दर्शन के सूत्रों को उद्धृत किया गया है। सर्वसिद्धान्तप्रवेशक में वैशेषिक के छः पदार्थों का वर्णन किया गया है। आकाश यह एक पारिभाषिक शब्द है। यह एक है। इसमें सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, शब्द ये छः गुण इसमें रहते हैं।[106] सर्वसिद्धान्तप्रवेशक में गुणों का विभाजन प्राप्त होता है। अन्य सङ्ग्रह-ग्रन्थों में गुणों का विभाजन नहीं किया गया है। इसमें रूप, रस, गन्ध, स्पर्श को विशेष गुण कहा गया

---

104 सर्वभाव प्रणेतारं प्रणिपत्य जिनेश्वरम्।
वक्ष्ये सर्वविनिगमेषु यदिष्टं तत्त्वलक्षणम् ॥ स. सि. प्र., कारिका - १

105 वही, पृ. ३५७

106 आकाशम् इति पारिभाषिकी संज्ञा, एकत्वात् तस्य। सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, शब्दैः षड्भिर्गुणैर्गुणवत् शब्दलिङ्गं चेति। स. सि. प्र., पृ. ३६२

है।[107] सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व ये सामान्य गुण हैं।[108] बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये आत्मा के गुण स्वीकार किये गये हैं।[109] गुरुत्व पृथिवी और जल में रहता है।[110] द्रवत्व पृथिवी जल और अग्नि में रहता है।[111] स्नेह जल में ही रहता है।[112] वेग, संस्कार मूर्त द्रव्यों में ही रहते हैं।[113] शब्द आकाश में रहता है।[114]

- **राजशेखरसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय –** यह कृति आचार्य राजशेखर की है। इसमें प्रारम्भ की ३५ कारिकाएं हरिभद्रकृत षड्दर्शनसमुच्चय से मिलती हैं। इसमें १८० कारिकाएं हैं। इसमें जैन, साङ्ख्य, जैमिनीय अर्थात् पूर्वमीमांसा, योग, वैशेषिक तथा सौगत अर्थात् बौद्ध इन छह दार्शनिक शाखाओं का विवेचन है। इसके प्रारम्भ में लिङ्ग, वेष, आचार, गुरु और मुक्ति[115] का तथा अन्त में उस दर्शन सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख भी किया गया है। इसमें चार्वाक-दर्शन को दर्शन श्रेणी में नहीं रखा गया है किन्तु अन्त में चार्वाक का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है।[116] इसका प्रारम्भ जैन-दर्शन से किया गया है।[117]

राजशेखरसूरि कृतित्व

जैन-दर्शन के विद्वानों के लिए राजशेखरसूरि का नाम अपरिचित नहीं है। उनका कृतित्व निम्नवत् है -

- प्रबन्ध-कोश
- कारिका – स्याद्वाद

---

107 स. सि. प्र., पृ. ३६३

108 वही, पृ. ३६३

109 वही, पृ. ३६३

110 वही, पृ. ३६३

111 वही, पृ. ३६३

112 वही, पृ. ३६३

113 वही, पृ. ३६३

114 वही, पृ. ३६३

115 सं. मुनि जिनविजय, समदर्शी आचार्य हरिभद्रसूरि, प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर, १९६३, पृ. ४२

116 नास्तिकं तु न दर्शनम्। राजशेखरसूरि, ष. ड. समु. , कारिका, ४

117 वही, कारिका, ४

- पञ्जिका-रत्नावतारिका
- कथा कौतुक
- षड्दर्शनसमुच्चय
- अन्तर्कथासारसङ्ग्रह
- दानषट्-त्रिंशिका

राजशेखर की ये सभी कृतियाँ सुविख्यात हैं और इनमें से कुछ पहले से ही सम्पादित व प्रकाशित भी हैं। ये १४०५ ई. में विरचित प्रबन्धकोश के एक सङ्क्षिप्त कथन से ज्ञात होता है कि राजशेखरसूरि, तिलकसूरि के शिष्य थे तथा हर्षपुरीय गच्छ से सम्बन्धित थे।[118]

न्याय-कन्दली पर लिखित टीका पञ्जिका के एक सङ्क्षिप्त विवरण में राजशेखर को हर्षपुरीय गच्छ से पूर्व के सूरियों से भी सम्बन्धित बताया गया है। यह गच्छ जयसिंहसूरि के शिष्य अभयसिंहसूरि से सम्बन्धित हैं।

इसी परम्परा में महान् हेमचन्द्राचार्य भी आते हैं। श्री चन्द्रमुनीन्द्र तथा विबुधेन्द्रमुनि उनके शिष्य थे। श्री मुनिचन्द्र, श्री चन्द्रसूरि के शिष्य थे, जो समय के साथ-साथ श्री देवप्रभसूरि के गुरु हो गये थे। कन्दली व अनर्घराघव के रचयिता श्री नरचन्द्रसूरि, श्री देवप्रभसूरि के शिष्य थे। न्याय पर श्री नरचन्द्र ने टिप्पण टीका लिखी। श्री नरेन्द्रप्रभ, श्री नरचन्द्र के शिष्य थे, जिनकी परम्परा में सूरि भी पद्म थे व श्री तिलकसूरि के गुरु थे। राजशेखर के गुरु यही श्री तिलकसूरि थे।[119]

षड्दर्शननिर्णय

इसके लेखक मेरुतुंग हैं।[120] इसमें बौद्ध, मीमांसा, साङ्ख्य, न्याय, वैशेषिक और जैन-दर्शन का उल्लेख किया गया है। इसमें मुख्यरूप से देव, गुरु, धर्म का वर्णन किया गया है। इसमें जैन-दर्शन का प्राधान्य है। इसका प्रारम्भ वर्णाश्रम वर्णन से होता है।[121] चारों वर्णों में ब्राह्मण श्रेष्ठ है लेकिन

---

[118] श्रीप्रश्नवाहिककुले कोटिकनामनि गणे जगद्विदिते।
श्रीमध्यमशाखायां हर्षपुरीयाभिधेये गच्छे ॥१॥
मलधारिविरुदविदित श्रीअभयोपपद सूरिसन्ताने।
श्रीतिलकसूरिशिष्यः सूरिः श्रीराजशेखरो जयति ॥२॥

[119] न्यायकन्दली, स्व. जेटली तथा वसंतजी पारिख द्वारा सम्पादित सए.जे .डा. , ओरियण्टल इन्स्टीट्यूट, बड़ोदरा, १९९१, भूमिका

[120] ष. द. नि., पृ. ३२९

[121] वही, पृ. ३१८

वह ब्राह्मण सत्य बोलने वाला, तप करने वाला, जितेन्द्रिय होना चाहिए।[122] जो ब्राह्मण सत्याचरण, जितेन्द्रिय नहीं है वह ब्राह्मण नहीं है।[123] सभी जाति के लोग ब्राह्मण हो सकते हैं। सभी जाति के लोग चाण्डाल हो सकते हैं। ब्राह्मण भी चाण्डाल हो सकते हैं और चाण्डाल भी ब्राह्मण हो सकते हैं।[124] मेरुतुङ्गसूरि कहते हैं कि जो जिस आश्रम के नियमों का पालन करता है वह उस आश्रम के योग्य है यदि नियम का पालन नहीं करता तो अयोग्य कहलाता है।[125]

षड्दर्शननिर्णय में दर्शनों का क्रम इस प्रकार है – बौद्ध, मीमांसा, साङ्ख्य, न्याय, वैशेषिक, जैन।[126] यहाँ पर बौद्ध और जैन-दर्शन को भी आत्मा, पुण्यपाप, स्वर्ग अपवर्ग आदि का स्वीकर्त्ता कहा गया है।[127] षड्दर्शननिर्णय में मेरुतुङ्गसूरि ने महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता, पुराण, स्मृति, स्तोत्र, सर्वदर्शनसङ्ग्रह आदि के श्लोक उद्धृत करते हैं।[128] यह गद्यमय संस्कृत भाषा में लिखा गया है।

सर्वमतसङ्ग्रह

इसके रचनाकार का नाम अज्ञात है। इसमें भारतीय-दर्शन के समस्त मतों का सङ्ग्रहण है। त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज ६२ त्रावणकोर गवर्नमेण्ट प्रेस त्रिवेन्द्रम् से सन् १९१८ में प्रकाशित है।[129] इस ग्रन्थ में प्रमाण निरूपण, चार्वाक, क्षपणक, सुगत, कणाद, अक्षपाद, सेश्वरनिरीश्वर साङ्ख्य, प्रभाकर आदि मीमांसक सगुणब्रह्मवाद, निर्गुणब्रह्मवाद, पौराणिक आदि मतों का उल्लेख है। प्रकाशन टी. गणपति शास्त्री ने त्रिवेन्द्रम् संस्कृतग्रन्थमाला से सन् १९१८ में किया था। [130]

सर्वमतसङ्ग्रह के सम्पादक टी. गणपति शास्त्री का व्यक्तित्व, कर्तृत्व और सम्पादकत्व

---

[122] वही, पृ. ३१८

[123] वही, पृ. ३१८

[124] वही, पृ. ३१८

[125] ष. द. नि., पृ. ३१९ पर उद्धृत

[126] वही, पृ. ३१९

[127] यद्यप्येतान्यात्म पुण्यपापापवर्गादिसत्तावादितया सद्दर्शनानीति व्यवहारः। ष. द. नि., पृ. ३१९

[128] वही, पृ. ३२७ पर उद्धृत

[129] सं. म. सं., भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, २००८, पृ.१६

[130] मिश्र कामेश्वरनाथ, ष. ड. स. , भूमिका, पृ. २०

जन्म – टी. गणपति स्वसम्पादित सभी ग्रन्थों की भूमिका आङ्ग्लभाषा में लिखते हुए `T. Ganpati Shastri' नामोल्लेख किया है। इसलिए ये विद्वत्समूह में टी. गणपति शास्त्री नाम से ही प्रसिद्धि प्राप्त हैं परन्तु इनका पूरा नाम तरुवई गणपति शास्त्री है, जो प्रायः अश्रव्यवत् प्रतीत होता है। टी. गणपति शास्त्री का जन्म १८६० ई. में एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इनके काव्यसङ्ग्रह 'अपर्णास्तव' से इनकी जन्मभूमि का सङ्केत प्राप्त होता है –

"गणपतिरिति कश्चित् ब्राह्मणस्ताम्रपर्णी। तटजुषी तरुवानाम्न्य ग्रहारेऽभिजातः।"[131]

इससे यह ज्ञात होता है कि इनका जन्मस्थान 'ताम्रपर्णी नदी' का समीपवर्ती 'तरुवई'नामक गाँव है। वर्त्तमान में यह दक्षिण भारत के तमिलनाडु राज्य के तिरुनैलवेली जनपद में स्थित तरुवई नामक ग्राम निर्धारित किया जाता है।

टी. गणपति शास्त्री ने अपने माता-पिता का सङ्केत भासकृत स्वप्नवासवदत्तम् नामक नाटक की स्वकीय व्याख्या में किया है –

"ताम्रपर्णीतीरवर्ति तरुवाग्रहाभिजनस्य श्री सीताम्बारामसुब्रह्मण्यार्यसूनोर्गणपतिशास्त्रिणः कृतिषु – स्वप्नवासवदत्ताव्याख्यानं सम्पूर्णम्।"[132]

इनके अनुसार इनकी माता का नाम 'सीताम्बा' था। इनके पिता 'रामसुब्रह्मण्य अय्यर' थे, जो विशिष्ट ख्यातिलब्ध विद्वान् 'अप्पय दीक्षित' के पारिवारिक सदस्य थे।

शिक्षा – टी. गणपति शास्त्री ने विविध गुरुजनों से विविध विद्याओं में निपुणता प्राप्त की थी। इनके सर्वप्रथम गुरु का नाम 'नीलकान्त शास्त्री' था, जिनसे इन्होंने संस्कृत की प्रारम्भिकी शिक्षा के साथ स्तुति, मन्त्र आदि का भी सम्यक् ज्ञान प्राप्त किया। त्रिवेन्द्रम् जनपद के 'छालई' ग्राम निवासी संस्कृत व्याकरण के मूर्धन्य विद्वान् 'कड्यम् सुब्बय्या दीक्षितर' से इन्होंने व्याकरण और काव्यशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की थी। सम्पूर्ण शास्त्रों के विद्वान् धर्माधिकारी 'करमनई ब्रह्मण्यम् शास्त्री' से विविध शास्त्रीय शोधात्मक ग्रन्थों का अध्ययन किया था।

व्यक्तित्व – टी. गणपति शास्त्री बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। इनकी मौलिक कृतियों और सम्पादित ग्रन्थों की विशिष्टताओं व विविधताओं के अवलोकन से यह सहज ही स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि

---

[131] शास्त्री, टी.गणपति, 'भाषाज् प्ले' एन.पी.उन्नी लिखित भूमिका, भाग, पृ.२३

[132] वही, पृ. २३

ये साहित्य, व्याकरण, वेदान्त, तन्त्र-मन्त्र, धर्मशास्त्र, शिल्प, मीमांसा आदि विविध विद्याओं के निष्णात् विद्वान् थे। इन्होंने त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज को प्रारम्भ करके न केवल त्रिवेन्द्रम् को विश्व-पटल पर उजागर कर दिया है, अपितु दुर्लभ पाण्डुलिपियों के सम्पादन और प्रकाशन से अनेक ग्रन्थों को समस्त विश्व के समक्ष उपस्थित करते हुए शोध का मार्ग प्रशस्त किया।

कृतित्व

टी. गणपति शास्त्री ने अनेक ग्रन्थों की रचना की थी। उनके द्वारा रचित मूल ग्रन्थों और टीका ग्रन्थों का परिचय इस प्रकार है -

मूलग्रन्थ –

- **माधववासन्तीयम् –** यह एक नाट्यग्रन्थ है, जो टी. गणपति शास्त्री की प्रथम कृति है। मात्र सत्रह वर्ष की अल्पायु में विरचित इस ग्रन्थ का साहित्यिक कौशल अनुपम है, जिससे अत्यधिक प्रसन्न होकर राजकुमार विशाखम् त्रिरुनाल ने इन्हें स्वर्ण अंगूठी से सम्मानित किया था।
- **अपर्णास्तव –** यह भगवती दुर्गा का स्तोत्र है जिस पर टी. गणपति शास्त्री ने स्वयं व्याख्या भी लिखी है।
- **भारतभूवर्णनम् –** यह एक काव्य ग्रन्थ है, जिसमें भारत का संस्कृतिक इतिहास वर्णित है।
- **तुलापुरुषदान –** इस काव्य ग्रन्थ में टी. गणपति शास्त्री ने अपने संरक्षक के तुलाभार समारोह का वर्णन किया है।
- **चक्रवर्तिनीगुणमणिमाला –** यह टी. गणपति शास्त्री की महारानी विक्टोरिया की प्रशंसा परक एक कविता है।
- **सेतुयात्रावर्णनम् –** यह टी. गणपति शास्त्री द्वारा लिखी गई रामेश्वर की तीर्थयात्रा का वर्णन करने वाली गद्य रचना है।
- **श्रीमूलचरितम् –** इस काव्य ग्रन्थ में श्रीमूलम् तिरुनाल महाराजा के राज्यकालीन त्रावणकोर राजवंश का ऐतिहासिक वर्णन है।
- **अर्थचित्रमाला –** यह काव्यशास्त्रीय कृति है, जिसमें विविध अलंकारों के अद्भुत प्रयोग से त्रावणकोर नरेश विशाखम् तिरुनाल का स्तवन किया गया है।
- **अर्थचित्रमणिमाला -** टी. गणपति शास्त्री द्वारा लिखित यह एक काव्यग्रन्थ है।

- **Catalogue of Sanskrit Manuscript Number -1** इसका विषय भाषा, भाषा-**Bhasa's Plays (A Critical Study)** – विज्ञान व साहित्य है। इसका प्रकाशन वर्ष १९१२ है।
- इसमें भास और नाट्य रचनाओं के विषय में टी. गणपति शास्त्री ने शोधात्मक रूप में स्वविचार प्रस्तुत किये हैं। साथ ही विविध विद्वानों के मतवैभिन्य का भी प्रस्तुतीकरण है।

टीका ग्रन्थ –

- **श्रीमूलम् –** यह कौटिल्यविरचित 'अर्थशास्त्र' की व्याख्या है, जिसका नामकरण 'त्रावणकोर' महाराजा 'श्रीमूलम् तिरुनाल' के नाम पर किया है।
- **स्वप्नवासवदत्ता व्याख्या –** यह भास रचित नाटक 'स्वप्नवासवदत्तम्' की एक व्यापक व्याख्या है।
- **विशाखविजयटिप्पणी –** यह केरल वर्मा वलिय कोइल ताम्पुरान द्वारा स्वसंरक्षक 'विशाखम तिरुनाल' की महिमा और प्रशंसापरक महाकाव्य की व्याख्या है।
- **आङ्ग्लसाम्राज्यटिप्पणी –** यह ए. आर. राजाराजवर्मा कृत ऐतिहासिक महाकाव्य की व्याख्या है।
- **शाकुन्तलपारम्य्व्याख्या –** यह केरल वर्मा वलिय कोइल ताम्पुरान के द्वारा रचित एक शोधात्मक ग्रन्थ की व्याख्या है।

सम्पादकत्व

महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री ने प्रसिद्ध 'त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज' का प्रारम्भ किया और विशिष्ट सत्तासी ग्रन्थों को प्रकाश में लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। एन.पी.उन्नी के अनुसार इन सत्तासी ग्रन्थों में से 'टी. गणपति शास्त्री' ने अड़सठ ग्रन्थों को विशिष्ट भूमिका सहित प्रकाशित किया।[133]

'द नेशनल बिब्लियोग्राफी ऑफ इण्डियन लिटरेचर' के अनुसार टी. गणपति शास्त्री सम्पादित ग्रन्थ तिहत्तर हैं, जिनमें से कई ग्रन्थों का सम्पादन टीकाओं और स्वकीय टिप्पणियों सहित है। टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित ग्रन्थों का कालक्रमानुसार परिचय इस प्रकार है –

- श्रीविशाखविजयकाव्यम्

---

133 शर्मा, नीलम, टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित स. म. सं. का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. ५६

- भक्तिमञ्जरी
- अभिनवकौस्तुभमाला और दक्षिणामूर्तिस्तव
- दैव
- नलाभ्युदय
- शिवलीलार्णव
- ब्रह्मतत्त्वप्रकाशिका
- दुर्घटवृत्ति
- व्यक्तिविवेक
- प्रद्युम्नाभ्युदय
- विरूपाक्षपञ्चाशिका
- मातङ्गलीला
- तपतीसंवरणम्
- स्वप्नवासवदत्तम्
- प्रतिज्ञायौगन्धरायण
- पञ्चरात्र
- चारुदत्त
- मध्यमव्यायोग
- दूतघटोत्कच
- अविमारक
- बालचरित
- कर्णभार
- उरुभङ्ग
- दूतवाक्यम्
- अभिषेक
- प्रतिमानाटकम्
- सुभद्राधनञ्जय
- नारायणीयम्
- मानमेयोदय
- नीतिसार
- नानार्थार्णवसङ्क्षेप
- कणादसिद्धान्तचन्द्रिका
- मणिदर्पण (शब्दपरिच्छेद)
- वररुचसङ्ग्रह
- वास्तुविद्या

- जानकी परिणय
- कुमारसम्भवम् प्रकाशिका टीका
- मणिसार (अनुमान खण्ड)
- अशौचाष्टक
- प्रपञ्चहृदय
- आपस्तम्ब धर्मसूत्र
- तन्त्रशुद्धप्रकरण
- वैखानस धर्मप्रश्न
- परिभाषावृत्ति
- अलङ्कार सूत्र
- रसार्णवसुधाकर
- लघुस्तुति
- शाब्दनिर्णय
- स्फोटसिद्धिन्यायविचार
- मनुष्यालयचन्द्रिका
- रघुवीरचरित
- मत्तविलासप्रहसन (सर्वानन्द की टीका 'सर्वस्व')
- नामलिङ्गानुशासन (अमरकोशोद्घाटन एवं वन्द्योघटीय)
- सिद्धान्तसिद्धाञ्जना
- किरातार्जुनीयम् (चित्रभानुकृत शब्दार्थदीपिका – ३ सर्ग)
- सर्वमतसङ्ग्रह
- महार्थमञ्जरी
- मयमत
- मेघसन्देश
- स्यानन्दूयुरवर्णनप्रबन्ध
- तत्त्वप्रकाश
- ईश्वरप्रतिपत्तिप्रकाश
- तन्त्रसमुच्चय
- आश्वालयनगृह्यसूत्र (अनाविल व्याख्या)
- आर्यमञ्जूश्रीमूलकल्प
- ईशानशिवगुरुदेवपद्धति
- अर्थशास्त्र
- याज्ञवल्क्यस्मृति (श्री विश्वरूपाचार्य कृत बालक्रीडा)

- समराङ्गणसूत्रधार
- विष्णुसंहिता
- सङ्गीतसमयसार
- भरतचरित
- शिल्परत्न

सर्वमतसङ्ग्रह का परिचय

सर्वमतसङ्ग्रह एक दर्शनसङ्ग्राहक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की उपलब्ध पाण्डुलिपियों में रचनाकार का नाम, जन्म-प्रदेश, जीवनवृत्यादि विषयक कोई सङ्केत नहीं है। सर्वमतसङ्ग्रह ग्रन्थ को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री को है। उन्होंने इस ग्रन्थ का सम्पादन सन् १९१८ ई. में किया। उन्होंने ग्रन्थ की सङ्क्षिप्त भूमिका में उल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ का सम्पादन दो पाण्डुलिपियों पर आधृत है। ये दोनों पाण्डुलिपियाँ चङ्गारप्पल्लिम मठ के स्वामी 'श्रीयुत परमेश्वरपोत्ति महाशय से प्राप्त हुईं थी।' दोनो ही पाण्डुलिपियाँ ताड़पत्रों पर केरलीय लिपि में थीं।[134] यह सम्पादित संस्करण त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज ६२ में तथा त्रावणकोर गवर्नमेण्ट प्रेस त्रिवेन्द्रम् से सन् १९१८ में प्रकाशित हुआ। इसका पुनर्प्रकाशन सन् २००८ में भारतीय बुक कारपोरेशन (दिल्ली) द्वारा किया गया है।

विषयवस्तु – सर्वमतसङ्ग्रह में समस्त भारतीय दार्शनिक मतों का उल्लेख है। विशेष रूप से तत्तद् दर्शन से सम्बद्ध प्रमाता, प्रमेय और मोक्ष पर युक्तियुक्त विचार किया गया है। यद्यपि यह ग्रन्थ सङ्क्षिप्त है तथापि दार्शनिक तत्त्वों के प्रतिपादन शैली की दृष्टि से अत्यन्त उपादेय है।

सर्वमतसङ्ग्रह में सर्वप्रथम ग्रन्थकार ने प्रमाण-मीमांसा प्रस्तुत की है। प्रमाण और उसके अष्टविध भेदों – प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति, अभाव, संभव तथा ऐतिह्य के लक्षण और भेदों का सम्यक् निरूपण किया गया है, किन्तु प्रमाण सामान्य लक्षण तथा प्रमाण के भेदों लक्षणादि किसी दर्शन विशेष से सम्बद्ध नहीं हैं। ग्रन्थकार ने सर्वत्र स्वकीय लक्षणोदाहरण प्रस्तुत किये हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भ में प्रस्तुत प्रमाण विवेचन ग्रन्थ को अन्य दर्शन-सङ्ग्राहक ग्रन्थों से भिन्नता प्रदान करता है।

---

134 शर्मा, नीलम, टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित स. म. सं. का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. ५८

प्रमाण निरूपण के उपरान्त षड्दर्शनों के मतों का प्रस्तुतीकरण है। षड्दर्शन में तीन अवैदिक और तीन वैदिक दर्शन हैं। तीन अवैदिक दर्शन – चार्वाक, जैन और बौद्ध हैं। ग्रन्थकार ने बौद्ध-दर्शन के सम्प्रदाय चतुष्टय का भी उल्लेख किया है –

- माध्यमिक
- योगाचार
- सौत्रान्तिक
- वैभाषिक

तीन वैदिक दर्शनों में तर्क, साङ्ख्य और मीमांसा है। तर्क के दो भेद हैं –

- न्याय
- वैशेषिक

साङ्ख्य भी द्विविध है –

- सेश्वर साङ्ख्य
- निरीश्वर साङ्ख्य

मीमांसा भी द्विविधा है –

- कर्म मीमांसा
- ब्रह्म मीमांसा

कर्म मीमांसा में कुमारिल भट्ट और प्रभाकर मिश्र के मत उल्लिखित हैं। ब्रह्म मीमांसा का भी द्विविध विभाजन है –

- औपनिषद्
- पौराणिक

इसमें औपनिषद् को भी सगुण और निर्गुण रूप में उपविभाजित किया गया है।

इस प्रकार सर्वमतसङ्ग्रह में क्रमशः चार्वाक, जैन, बौद्ध, वैशेषिक, न्याय, साङ्ख्य-योग, मीमांसा, वेदान्त – सगुण ब्रह्मवादी और निर्गुण ब्रह्मवादी और पौराणिक मत सङ्ग्रहित हैं। इन सभी दार्शनिक सम्प्रदायों के प्रमाता, प्रमेय और मोक्ष विषयक मतों का सङ्क्षिप्त किन्तु गम्भीर विवेचन है। ग्रन्थ की शैली सङ्क्षिप्त होने पर भी अत्यन्त क्लिष्ट नहीं है। ग्रन्थकार ने विषय की स्पष्टता व प्रामाणिकता हेतु विविध ग्रन्थों से प्रमाण भी उद्धृत किए हैं। प्रत्येक दार्शनिक मत का निरूपण अधिक से अधिक स्पष्ट रूप में निर्विकार भाव से किया गया है। प्रत्येक दर्शन के विवेचन के प्रारम्भ में प्रायः लेखक पूर्व विवेचित दर्शन के प्रमुख प्रतिपाद्यों में आपातित दोषों का समुद्घाटन करता है। दार्शनिक मत निरूपण

का प्रारम्भ अत्यन्त स्थूल चार्वाक-दर्शन से करते हुए स्थूल से सूक्ष्म विवेचन की ओर क्रमशः अग्रसर है और अन्त में समस्त मतों में मूर्धन्य निर्गुणब्रह्मवाद का विवेचन किया गया है।

सर्वमतसङ्ग्रहकार का काल

सर्वमतसङ्ग्रह ग्रन्थ के ग्रन्थकार के नाम, जन्मप्रदेश, जन्मवृत्तादि ज्ञात नहीं है। अन्तःसाक्ष्यों व बाह्यसाक्ष्यों के अभाव में इनका निर्धारण करना अत्यन्त दुष्कर है तथापि ग्रन्थ में उपलब्ध अल्प अन्तःसाक्ष्यों के आधार पर ग्रन्थकार के स्थितिकाल की न्यूनतम सीमा निर्धारित की जा सकती है।

सर्वमतसङ्ग्रह में विविध ग्रन्थों को उद्धृत किया गया है, जिसमें सबसे अर्वाचीन ग्रन्थ मानमेयोदय है। सर्वमतसङ्ग्रहकार ने सुगतवत् निरूपण में मानमेयोदय को उद्धृत किया है –

'मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगत्।

योगाचारमते हि सन्ति हि धियस्तासां विवर्तोऽखिलम् ॥'

'अथोऽस्ति क्षणभङ्गुरस्त्वनुमितो बुद्धयेति सौत्रान्तिकः।

प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भाषते ॥'[135]

मानमेयोदय ग्रन्थ के लेखकद्वय नारायण भट्ट और नारायण पण्डित का काल १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध अथवा १७वीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध निर्धारित किया जाता है।[136]

अतः सर्वमतसङ्ग्रहकार का समय इससे पूर्ववर्ती नहीं हो सकता।

- **अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह –** यह ग्रन्थ अप्राप्त है। यह एक लघुकायगद्यमय कृति है। इसमें बौद्ध-दर्शन के सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक इन चार सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का परिचय दिया गया है।[137] अन्त में जैनदर्शन का उल्लेख किया गया है। यहाँ चार्वाकदर्शन का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।[138]

---

135 मानमेयोदय, पृ.५१

136 मुसलगाँवकर, गजानन शास्त्री, मीमांसा दर्शन का विवेचनात्मक इतिहास, पृ.१७१-१७३

137 वाजपेययाजी गङ्गाधर, अ. द. सं, श्रीवाणीविलासमुद्रायन्त्रालय, सन् १९११, पृ. ८,

138 मिश्र कामेश्वरनाथ, ष. ड. स. , भूमिका, पृ. १७

- **आर्यविद्यासुधाकर –** इसमें चार्वाक,[139] बौद्धमत[140] के माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक सम्प्रदाय और जैन[141] इन छः नास्तिक दर्शनों के साथ न्याय-वैशेषिक,[142] साङ्ख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त इन दर्शनों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसमें न्याय-वैशेषिक को एक दर्शन माना गया है। आर्यविद्यासुधाकर के अन्त में पुराणमत, तान्त्रिकमत, विष्णुस्वामी, रामानुज, मध्व, वल्लभ, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर दर्शनों का वर्णन किया गया है।[143]

- **षड्दर्शनपरिक्रम –** षड्दर्शनपरिक्रम के कर्त्ता अज्ञात है। इसकी भाषा संस्कृत है। यह पद्यमय रचना है। इसमें जैन, मीमांसा, बौद्ध, साङ्ख्य, शैव, चार्वाकमत का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यहाँ पर शैव दर्शन के अन्तर्गत न्याय और वैशेषिक को रखा है।[144] जैनदर्शन दो प्रमाण स्वीकार करता है – प्रत्यक्ष और परोक्ष। नित्य और अनित्य जगत् में नव अथवा सप्त तत्त्वों को स्वीकार करता है।[145] मीमांसादर्शन में दो प्रकार के कर्म है। वेदान्ती ब्रह्ममीमांसा को मानते हैं। भाट्ट और प्रभाकर कर्ममीमांसा को स्वीकार करते हैं।[146] बौद्धमत में भगवान् बुद्ध देव हैं, संसार क्षणभङ्गुर है, बुद्धदर्शन में चार आर्यसत्य हैं।[147] साङ्ख्यदर्शन में कुछ लोग शिव को, कुछ जन नारायण को देव स्वीकार करते हैं। तत्त्वमीमांसा में कोई मतभेद प्राप्त नहीं होता है।[148]

---

139 चिमणभट्ट यज्ञेश्वर, आ. वि. सु., सं. कुणाल. एस.डी, पंञ्जाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर, १९२२

140 वही, पृ. १२

141 वही, पृ. १२

142 वही, पृ. १३

143 गोस्वामी, श्रीदामोदरलाल, ष. ड. स. सोमतिलकसूरिकृत, लघुवृत्तिसहित, भूमिका, पृ. ३ चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९०५

144 शैवस्य दर्शने तर्कावुभौ न्याय-वैशेषिकैः। ष. द. प., पृ. ४०

145 वही, श्लोक, ०६

146 वही, श्लोक, १४

147 वही, श्लोक, २१

148 वही, श्लोक, ३२

न्यायदर्शन में षोडश तत्त्व स्वीकार किये गये हैं। वैशेषिक छः तत्त्व स्वीकार करता है।[149] उपसंहार करते हुए कहते हैं कि सभी शास्त्र रहस्यमय हैं, इनमें से एक अक्षर का भी ठीक से ज्ञान प्राप्त कर किया तो वह कभी निष्फल नहीं जाता है।[150]

- **विवेकविलास –** इस विवेकविलास ग्रन्थ के अष्टम उल्लास में 'षड्दर्शनविचार' नामक प्रकरण है, जिसमें जैन, मीमांसा, बौद्ध, साङ्ख्य, न्याय, वैशेषिक और नास्तिक दर्शनों पर विचार किया गया है।
- **लघुषड्दर्शनसमुच्चय –** इस कृति के लेखक अज्ञात है। इसका प्रारम्भ जैन-दर्शन से होता है। इसमें वर्णित दर्शन निम्नलिखित हैं – इसमें जैन, न्याय, बौद्ध, कणाद, मीमांसा, साङ्ख्य, चार्वाक-दर्शन को नास्तिक स्वीकार किया गया है तथा इसकी गणना सातवें दर्शन के रूप में की गयी है। यह अत्यन्त लघु कृति है। इसमें वैशेषिकदर्शन के निम्न तथ्यों पर प्रकाश डाला गया है – आचार्य कणाद के कारण इस दर्शन का नाम काणाद पड़ा है। विशेष पदार्थ को स्वीकार करने से वैशेषिकदर्शन कहलाता है। इसमें ईश्वर को देवता कहा गया है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये छः तत्त्व स्वीकार किये गए हैं। लघुषड्दर्शनसमुच्चय के अनुसार वैशेषिकदर्शन तीन प्रमाण स्वीकार करता है – प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम। श्रवण, मनन, निदिध्यासन ही मोक्ष प्राप्ति का मार्ग है। बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये नौ गुणों का उच्छेद हो जाना ही मोक्ष है।
- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम्[151] –** द्वादशदर्शनसमीक्षणम् के कर्त्ता सीताराम हेब्बार हैं। इस ग्रन्थ की भाषा संस्कृत गद्यमय है। भाषा सरल है। वाक्य छोटे-छोटे हैं।[152] इसमें वर्णित द्वादश दर्शन हैं- (१) न्यायदर्शनम् (२) वैशेषिकदर्शनम् (३) सांङ्ख्यदर्शनम् (४) योगदर्शनम् (५) मीमांसादर्शनम् (६) वेदान्तदर्शनम् (७) चार्वाकदर्शनम् (८) जैनदर्शनम् (९) बौद्धदर्शनम् (१०) सौत्रान्तिकदर्शनम् (११) योगाचारदर्शनम् (१२) माध्यमिकदर्शनम्।[153]

---

[149] ष. द. प., पृ. श्लोक, ४०

[150] वही, श्लोक, ६६

[151] इसका प्रकाशन गायत्री आश्रम, सालिग्राम उडुपि तालूक, दक्षिणकन्नड कर्नाटक स्टेट से १९८० में हुआ है।

[152] एतद्दर्शनं शून्यवादिनां कृते भवति। एतन्मतानुसारं दृष्टिगोचरत्वेन प्रपञ्चे ये ये पदार्थाः ते सर्वे एव असत्तात्मकाः असद्रूपाश्च भविष्यन्ति। शून्यवादस्य प्रवर्तकः नागार्जुनः। द्वा. द. स. पृ. १५५

[153] द्वा. द. स., पृ. १- १६०

आचार्य सीताराम हेब्बार ने प्रत्येक दर्शन के प्रणेता तथा उस ग्रन्थ का विभाजन, विषयवस्तु, मान्यसिद्धान्तों का वर्णन किया है। इसमें पक्ष विपक्ष के रूप में किसी ग्रन्थ का खण्डन नहीं किया गया है। इसमें प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण को पदार्थ कहा है।[154] इसमें छः पदार्थों का वर्णन किया गया है। अभाव का अन्त में वर्णन किया गया है।

आचार्य सीताराम ने सर्वदर्शनसङ्ग्रह के वैशेषिक-दर्शन में वर्णित कारिका को उद्धृत किया है।[155] साङ्ख्य-दर्शन में भी साङ्ख्य-कारिकाओं को उद्धृत किया है।[156]

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** इसमें चार्वाक, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक, जैन, न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा इन बारह मतों का वर्णन किया गया है।[157] इसमें उत्तर-मीमांसा के मध्व, रामानुज, वल्लभ और शङ्कर के मत का विवेचन प्राप्त होता है। इस ग्रन्थ में प्रारम्भ में एक श्लोक है बाद में गद्य में उनका विशद् वर्णन किया गया है।

द्वादशदर्शनसोपानावलिकार श्रीपाद शास्त्री हसूरकर का परिचय

प्राचीन संस्कृत कवियों की जीवन-रेखाओं का चित्रांकन तथा समय-सीमा का ज्ञान प्राप्त करना जितना कष्टसाध्य कार्य है, आधुनिक संस्कृत साहित्यकारों का जीवन-परिचय, समय-निर्धारण तथा व्यक्तित्व एवं कृतित्व का परिज्ञान प्राप्त करना उतना कठिन कार्य नहीं है। विशेषकर उन्नीसवीं तथा बीसवीं शताब्दी के संस्कृत कवियों का जीवन-चित्र अंकित करना तो सामग्री की सुलभता तथा समय के विशेष अन्तराल के अभाव में और भी सरल है। श्री पाद शास्त्री हसूरकर का जीवनवृत्त, समय-निर्धारण, व्यक्तित्व तथा कृतित्व का परिज्ञान प्राप्त करना, इन्हीं कारणों से असन्दिग्ध है।

दक्षिणापथ में महाराष्ट्र नामक एक प्रदेश है। इस प्रदेश में एक कोल्हापुर नामक राज्य है। इसी राज्य के बेलगांव जिले में स्थित हसूरचम्पू नामक ग्राम में महाराष्ट्रिय ब्राह्मण कुल में आलोच्य कवि श्रीपाद शास्त्री हसूरकर का जन्म हुआ था। शासकीय अभिलेख के अनुसार श्री पाद शास्त्री हसूरकर का जन्म १३ जून १८८८ ई. में हुआ था।[158] इनके पिता का नाम वामन एकनाथ

---

154 वही, पृ. १९

155 स. द. सं., पृ, ३६०

156 द्वा. द. स., पृ. ३३ पर उदधृत्

157 द्वा. द. सो., भूमिका, पृ. १८

158 होल्कर राज्य अधिकारी सूची, १ अक्टूबर, १९३५, पृ. ६१

शिन्दे तथा माता का नाम सरस्वती वामन शिन्दे है।[159] इनका विवाह राधाबाई हसूरकर के साथ हुआ था। इनके पूर्वज प्रारम्भ में अपना उपनाम शिन्दे लिखते थे। बाद में 'हसूरचम्पू' नामक ग्राम में रहने के कारण इनका उपनाम हसूरकर प्रसिद्ध हो गया। इनके पिता ब्रह्मविद्यानुरागी थे।[160]

श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने सन् १९०५ में व्याकरण में मध्यमा, सन् १९१२ में बंगीय-संस्कृत-शिक्षा-परिषद् कलकत्ता की न्यायतीर्थ परीक्षा तथा १९१३ में वेदान्ततीर्थ, १९१४ में मीमांसातीर्थ और १९१५ में ढाका विश्वविद्यालय की साङ्ख्यसागर परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। साङ्ख्यसागर उपाधि प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण करने के उपलक्ष्य में श्रीपाद शास्त्री ने स्वर्णपदक भी प्राप्त किया।[161]

श्रीपाद शास्त्री ने सर्वप्रथम सहायक पण्डित के रूप में इन्दौर महाविद्यालय में अध्यापन कार्य किया। इसके पाश्चात आपने विभिन्न महाविद्यालयों, विश्वविद्यालयों तथा संस्कृत शिक्षा अधीक्षक, पार्षद के रूप में कार्य किया। आपके काल में इन्दौर तथा आसपास के क्षेत्रों में संस्कृत का अधिक विकास हुआ।[162]

शैक्षणिक एवं साहित्यिक क्षेत्र में की गई विशिष्ट सेवाओं के कारण २४ नवम्बर १९२३ ई. को होलकर महाराज ने अपने जन्म दिन के अवसर पर श्रीपाद शास्त्री हसूरकर को 'पण्डित रत्न' की पदवी से अलंकृत किया। पण्डितरत्न उपाधि के उपलक्ष्य में होलकर नरेश ने 'रजतपदक' भी प्रदान किया।[163]

कृतित्व

श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने विद्यार्थी जीवन से ही गद्य-पद्य लेखन प्रारम्भ कर दिया था। उनके गुरु जनों ने शास्त्री जी की कवित्व-प्रतिभा को प्रमाणित भी किया है।[164] शास्त्री जी ने अनेक रचनाओं की रचना की है। जो निम्नलिखित है –

---

159 जोशी, केदारनारायण, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, पृ. ३८

160 ताताय वामनाख्याय ब्रह्मविद्यानुरागिणे।
सरस्वत्यै जनन्यं च नमोऽस्तु सततं मम ॥ द्वा. द. सो., पृ. १

161 जोशी, केदारनारायण, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, पृ. ४०

162 Annual Administration Report of Holkar State, 1995, P. 89 - 91

163 जोशी, केदारनारायण, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, पृ. ४७

164 गद्यपद्यात्मक प्रबन्ध लेख-शैली चास्योत्तमा परिदृश्यते। अत एतस्य (श्रीपादस्य) काव्यसाहित्यज्ञानमिति साधु वर्तते इति शक्यते, इति मन्यते, पर्वतीय नित्यानन्द पन्तः, प्रशंसा

साहित्यशास्त्र विषयक

- साहित्यमञ्जरी
- सामान्य प्रकरणम्
- दोष प्रकरणम्
- गुणरीति प्रकरणम्
- अलंकार प्रकरणम्
- वृत्त प्रकरणम्
- सुबोधसंस्कृत पुस्तकमालायाः प्रथमं पुस्तकम्
- सुबोधसंस्कृत पुस्तकमालायाः द्वितीयं पुस्तकम्
- सुबोधसंस्कृत पुस्तकमालायाः तृतीयं पुस्तकम्

साहित्यिक गद्य रचनाएँ

श्रीपाद शास्त्री हसूरकर की साहित्यिक गद्य-रचनाओं की संख्या विपुलतापूर्ण है। इन्होंने प्रवाह-पूर्ण शैली में गद्य-ग्रन्थ लिखे हैं। इनकी साहित्यिक गद्य-रचनाओं में छः रचनाएँ प्रकाशित हैं। जिनमें तीन वीरचरितात्मक तथा तीन साधुचरितात्मक हैं।

वीर-चरितम्

१. श्रीमहाराणाप्रतापसिंहचरितम्

२. छत्रपति श्रीशिवाजीमहाराजचरितम्

३. श्री पृथ्वीराजचह्वाणचरितम्

साधु-चरितम्

१. श्रीमद्वल्लभाचार्यचरितम्

२. श्री रामदासस्वामिचरितम्

३. श्री शीखगुरुचरितम्

अप्रकाशित

पत्र, दिनांक १९/११/१९१३

उपर्युक्त छः प्रकाशित साहित्यिक गद्य-रचनाओं के अतिरिक्त श्रीपाद शास्त्री हसूरकर की अनेक अप्रकाशित साहित्यिक गद्य रचनाएँ भी हैं। जो संख्या में नौ हैं –

१. श्रीवर्धमानस्वामिचरितम्
२. श्रीबुद्धदेवचरितम्
३. राजस्थानसतीनवरत्नहार
४. महाराष्ट्रसतीनवरत्नहार
५. महाराष्ट्रक्षत्रियवीररत्नमञ्जूषा
६. सौराष्ट्रवीररत्नावलि
७. महाराष्ट्र ब्राह्मणवीररत्नमञ्जूषा
८. श्री शङ्कराचार्यचरितम्
९. विजयनगरसाम्राज्यम्

अन्य रचनाएँ : प्रकाशित एवं अप्रकाशित

श्रीपाद शास्त्री हसूरकर प्रणीत अन्य रचनाओं में टीकापरक ग्रन्थ, चम्पू-काव्य तथा नीति-धर्म विषयक रचना को सम्मिलित किया जा सकता है। श्रीपाद शास्त्री हसूरकर विरचित टीकापरक रचनाओं में तीन रचनाएँ उल्लेखनीय हैं –

१. वेदान्तपरिभाषा की प्रदीपिका टीका,
२. न्यायकुसुमाञ्जलि की परिमल टीका
३. काव्य प्रकाश की भारती टीका

ये सभी टीका ग्रन्थ प्रायः अपूर्ण एवं अप्रकाशित हैं। उपर्युक्त टीकापरक रचनाओं के साथ ही शास्त्री जी ने एक चम्पू-काव्य की भी रचना की है। द्वादश स्तबकों में विभक्त शङ्कर - चम्पू एकमात्र चम्पूकाव्य में आचार्य शङ्कर का आद्योपान्त प्रामाणिक जीवन चरित वर्णित है। संस्कृत के अतिरिक्त मराठी में भी श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने ग्रन्थ रचना की है। इनकी एकमात्र मराठी पुस्तक उपलब्ध है। इसमें कुल छब्बीस धड़ा अर्थात् पाठ हैं। नीति धर्म शिक्षणाचे पहिले पुस्तक इस मराठी रचना में नीति-धर्म विषयक शिक्षा दी गई है। यह पुस्तक 'मालवा स्टेशनरी एण्ड प्रिंटिंग वर्क्स लिमिटेड इन्दौर से प्रकाशित है।[165]

शास्त्रीय गद्य रचना

---

165 जोशी, केदारनारायण, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, पृ. ७४

श्रीपाद शास्त्री हसूरकर प्रणीत अनेक शास्त्रीय गद्य रचनाओं में से मोक्ष मन्दिर से एक मात्र गद्य रचना द्वादशदर्शनसोपानावलि प्रकाशित हुयी है। यह इन्दौर नगर स्थित सहकारी मुद्रणालय से सन् १९३८ में मुद्रित तथा प्रकाशित हुई। इसके मुद्रक श्री दि. रा. एकतारे और प्रकाशक श्रीपाद शास्त्री हसूरकर हैं।[166] महाराजा यशवन्तराव होलकर द्वितीय के राज्यकाल में होलकर राज्य शासन की ओर से इस कृति के प्रकाशन हेतु सहयोग दिया गया। लेखक द्वारा यह कृति होलकर राज्य के तत्कालीन प्रधानमन्त्री वजीर-उद्दौला, रायबहादुर, सर सिरेमल बापना को अर्पित की है।[167]

द्वादशदर्शनसोपानावलि में बारह सोपान हैं। सोपान शब्द यहाँ अध्याय का वाचक है। ग्रन्थ के आरम्भ में लिखित उपक्रम के अन्तर्गत पशु-प्रवृत्ति और मानव-प्रवृत्ति की विशेष फलवत्ता तथा उनमें भी गौण और मुख्य का विचार वर्णित है। इसी क्रम में लेखक ने दर्शन शब्द का अर्थ तथा सभी दर्शनों के मूलभूत विचारणीय विषयों अर्थात् पदार्थों का विवेचन किया है। लेखक ने एक समान सात प्रश्नों का पृथक् पृथक् दर्शनों के अनुसार पृथक् पृथक् उत्तर दिया है तथा इनका विशद् विवेचन किया है। ये सात प्रश्न क्रमशः इस प्रकार हैं –

१. किं ज्ञेयम्?
२. कीदृशोज्ञाता
३. अज्ञानस्य स्वरूपं किम्
४. दुःखस्य स्वरूपं किम्
५. ज्ञानस्य स्वरूपं किम्
६. दुःखध्वंसस्य स्वरूपं किम्
७. एतेषु सर्वेषु प्रमाणं किम्

प्रश्नोत्तर की अवधारणा के उपरान्त प्रत्येक दर्शन धारा का संक्षेप में अर्थात् एक-एक श्लोक में पद्य-बद्ध परिचय दिया गया है।

उपसंहार के अन्तर्गत सभी दर्शनों का समन्वय तथा उपयोग प्रतिपादित है। ग्रन्थ के अन्त में दर्शनसोपानक्रमप्रदर्शकपत्र भी संलग्न है। यह पत्र क्रमशः प्रत्येक दर्शन धारा की अवस्था, दर्शन विचार प्रवर्तक अनुभव और सिद्धान्त पक्ष को संक्षेप में सरलतापूर्वक समझने तथा समझाने में अत्यन्त सहायक है। सम्पूर्ण ग्रन्थ की प्रतिपादन शैली इतनी नवीन है कि तत्त्वज्ञानपरक दुरूह विषय भी अत्यन्त सरल तथा सुबोध हो गया है। इस कृति के आधार पर मराठी में पुरूषोत्तम शास्त्री दत्तवाडकर नामक लेखक ने दर्शनमन्दाकिनी नामक ग्रन्थ की रचना की है। इस प्रकार यह कृति पूर्व कृतियों की अपेक्षा उत्कृष्ट है तथा परवर्ती लेखकों के लिए उपजीव्य भी रही है।

---

[166] द्वा. द. सो., पृ. १

[167] जोशी, केदारनारायण, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, पृ. ७४

- **षड्दर्शनपरिक्रम –** षड्दर्शनपरिक्रम के कर्त्ता अज्ञात हैं। इसकी भाषा संस्कृत है। यह पद्यमय रचना है। इसमें जैन, मीमांसा, बौद्ध, साङ्ख्य, शैव, चार्वाक मत का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यहाँ पर शैव दर्शन के अन्तर्गत न्याय और वैशेषिक को रखा है।[168]

- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** प्रत्यभिज्ञाप्रदीप के लेखक रंगेशनाथ मिश्र हैं। इसमें मुख्य रूप से प्रत्यभिज्ञा-दर्शन के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है, किन्तु परिशिष्ट के रूप में विभिन्न दर्शनों का प्रतिपादन इसमें किया गया है। यह एक प्रकरण ग्रन्थ है।[169] इसमें न्यायदर्शन, वैशेषिकदर्शन, साङ्ख्यदर्शन, योगदर्शन, मीमांसादर्शन, वेदान्तदर्शन, शांकरसिद्धान्त, भास्करसिद्धान्त, रामानुजसिद्धान्त, मध्वसिद्धान्त, वल्लभसिद्धान्त, विज्ञानभिक्षुसिद्धान्त, श्रीकण्ठसिद्धान्त, श्रीपतिसिद्धान्त, निम्बार्कसिद्धान्त, बलदेवसिद्धान्त, चार्वाकदर्शन, जैनदर्शन, बौद्धदर्शन, नकुलीशपाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, रसेश्वरदर्शन, पाणिनिदर्शन, वादविचार, ख्यातिविचार, ईश्वर, जीव, मोक्ष, प्रमाण का उल्लेख प्राप्त होता है। इसका प्रारम्भ न्यायदर्शन से होता है तथा अन्त में भारतीय-दर्शन के प्रमुख सिद्धान्तों यथा – वाद, ख्याति, ईश्वर, जीव, मोक्ष, प्रमाण के विषय में बताया गया है। प्रत्यभिज्ञाप्रदीप में वैशेषिक-दर्शन के निम्न सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है यथा – जिस मनुष्य की द्वित्व प्रक्रिया, पाकज प्रक्रिया, विभागज-विभाग प्रक्रिया में जिसके मन में शंका नहीं होती है वह वैशेषिक कहलाता हैं।[170] इस दर्शन के प्रणेता कपोतवृत्ति का अनुसरण करते हुए तथा गलियों में गिरे हुए तण्डुलों के कणों को खाने से कणाद कहलाते हैं। यहाँ कणाद दर्शन को औलूक्यदर्शन कहा गया है। प्रत्यभिज्ञाप्रदीप में यह कहा गया है कि ईश्वर ने उलूक का शरीर धारण करके जिन्हें पदार्थों की शिक्षा दी उन्हीं मुनियों को औलूक्य कहा गया है। इस दर्शन के नाम करण पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है कि विशेष पदार्थ को स्वीकार करने से इस दर्शन का नाम वैशेषिक पड़ा है।[171]

- **सर्वदर्शनसमन्वय -** इसमें व्याकरण, प्रत्यभिज्ञादर्शन, पूर्णप्रज्ञदर्शन, शैवदर्शन आदि पर विचार किया गया है। इसकी भाषा संस्कृत है। यह गद्यमय ग्रन्थ है। इसका प्रकाशन श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय-संस्कृत-विद्यापीठ से सन् १९८१ में हुआ था।

---

168 शैवस्य दर्शने तर्कावुभौ न्याय-वैशेषिकैः। ष.द.प., पृ.४०

169 प्र. भि. प्र., पृ. ३८

170 वही, पृ. ३८

171 प्र. भि. प्र., पृ. ३९

- **षड्दर्शनदर्पण** - काशी के अज्ञात पण्डित द्वारा लिखित ग्रन्थ है। भाषा हिन्दी, लिपि देवनागरी है। इसमें वर्णित छः दर्शन निम्नलिखित हैं – न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त।[172] प्रथम यह दो भागों में विभक्त पश्चाद् अध्यायों में विभक्त है। इसमें कहीं पर भी प्रमाण के रूप में संस्कृत सूक्तियों को उद्धृत नहीं किया गया है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों की टीकाओं में प्रतिपादित मुख्य सिद्धान्त

- **लघुवृत्ति –** इसमें बौद्ध[173], न्याय[174], साङ्ख्य[175], जैन[176], वैशेषिक[177], मीमांसा[178] तथा चार्वाकदर्शन का वर्णन है। इसमें आचार्य हरिभद्रसूरि को १४०० ग्रन्थों का कर्त्ता कहा गया है।[179] बौद्धदर्शन की चतुर्थ कारिका की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि चार आर्यसत्यों का वर्णन भगवान् बुद्ध ने किया है। आदि शब्द चार अर्थों में प्रयुक्त होता है।[180] इसमें विभिन्न ग्रन्थों की कारिकाओं को भी उद्धृत किया गया है।[181] साङ्ख्यदर्शन में प्रकृति का वर्णन करते हुए कहते हैं कि सत्त्व, रज, तम तीनों गुणों की साम्यावस्था प्रकृति हैं। साङ्ख्यदर्शन में प्रकृति, प्रधान, अव्यक्त ये पर्यायवाची हैं।[182]

---

172 अज्ञात, षड्दर्शनदर्पण, पृ. ०७, Christian tract and book society, Calcutta, 1860

173 तत्र बौद्धमिति बुद्धो देवतास्येति बौद्धं सौगतदर्शनम्, संयमकीर्तिविजयजी, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, पृ. २२४

174 वही, पृ. २२४

175 वही, पृ. २२४

176 वही, पृ. २२४

177 वही, पृ. २२४

178 वही, पृ. २२४

179 वही, पृ. २२२

180 सामीप्येऽथ व्यवस्थायां प्रकारेऽवयवे तथा।
चतुर्ष्वर्थेषु मेधावी आदिशब्दं तु लक्षयेत् ॥ लघुवृत्ति, पृ. २२५

181 यत् सत्तत् क्षणिकं...............। लघुवृत्ति में उद्धृत पृ. २२५

182 वही, लघुवृत्ति, पृ. २४७

लघुवृत्ति में वैशेषिक के छः पदार्थ ही स्वीकृत हैं[183] जबकि तर्करहस्यदीपिका में अभाव का भी कथन किया गया है। इसमें मीमांसादर्शन का विभाजन पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा के रूप में किया गया है। [184]

- **अवचूर्णि –** यह भी षड्दर्शनसमुच्चय की टीका है। जैनसाहित्य ग्रन्थ में इसके कर्त्ता के रूप में ब्रह्मशान्तिदास का नामोल्लेख है।[185] यह संक्षिप्त टीका है। इसके मध्य के अक्षर नष्ट हो गये हैं। अवचूर्णि में मुख्यरूप से देवता और तत्त्वमीमांसा का वर्णन किया गया है।[186] इसमें वर्णित षड्दर्शनों का क्रम इस प्रकार हैं – बौद्ध, न्याय, साङ्ख्य, जैन, वैशेषिक, मीमांसा, चार्वाक।

निष्कर्ष – भारतीय दर्शनों में सङ्ग्रह-ग्रन्थों का अद्वितीय स्थान है। इसमें समाज में प्रचलित सभी दार्शनिक शाखाओं का वर्णन करने वाले ग्रन्थ प्राप्त होते हैं। सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सर्व प्राचीन उपलब्ध ग्रन्थ जैनाचार्य हरिभद्र सूरि का षड्दर्शनसमुच्चय है। जिसमें बौद्ध, जैन, साङ्ख्य, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा तथा चार्वाक-दर्शन का परिचय प्राप्त होता है। यहाँ पर बौद्ध, जैन को भी आस्तिक दर्शनों की श्रेणी में रखा है। द्वितीय उपलब्ध ग्रन्थ सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह के कर्त्ता आदि शङ्कराचार्य को माना गया है। इसमें लोकायत, आर्हत, बौद्ध, वैशेषिक, नैयायिक, प्रभाकर, भट्टाचार्य, साङ्ख्य, पतञ्जलि, वेदव्यास, वेदान्त पक्षों का वर्णन किया गया है। इसी प्रकार सर्वदर्शनसङ्ग्रह, सर्वदर्शनकौमुदी, प्रस्थानभेद, सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, षड्दर्शनसमुच्चय राजशेखरकृत, षड्दर्शननिर्णय, तर्करहस्यदीपिका आदि में सभी शाखाओं का वर्णन प्राप्त होता है।

---

[183] निश्चयेन तत्त्वषटकं ज्ञेयमिति, लघुवृत्ति, पृ. २७०
केचित्तु अभावं सप्तमं पदार्थमाहुः। त. र. दी., पृ. ४०७

[184] जैमिनिशिष्याश्चैके उत्तरमीमांसावाद्रः, एके पूर्वमीमांसावादिनः। तत्रोत्तरमीमांसावादिने
वेदान्तिनः। लघुवृत्ति, पृ. २७३

[185] संयमकीर्तिविजयजी, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, पृ. १२

[186] देवता दर्शनाधिष्ठायकः। तत्त्वानि रहस्यानि मोक्षसाधकानि। अवचूर्णि, पृ. २८५

द्वितीय-अध्याय

सङ्ग्रह-ग्रन्थ एवं भारतीय दार्शनिक शाखाएँ

चार्वाक-दर्शन

बौद्ध-दर्शन

जैन-दर्शन

साङ्ख्य-दर्शन

योग-दर्शन

न्याय-दर्शन

वैशेषिक-दर्शन

मीमांसा-दर्शन

वेदान्त-दर्शन

रसेश्वर-दर्शन

प्रत्यभिज्ञा-दर्शन

पाणिनि-दर्शन

अन्य भारतीय-दर्शन

द्वितीय-अध्याय

सङ्ग्रह-ग्रन्थ एवं भारतीय दार्शनिक शाखाएं

भारतीय दार्शनिक शाखाएं – भारतीय-दर्शन का विभाजन दो प्रकार से होता है – (१) आस्तिक (२) नास्तिक। आस्तिक-नास्तिक को अर्थ के आधार पर दो प्रकार से विभाजित किया जाता है। प्रथम अर्थ के अनुसार आस्तिक दर्शन वह है, जो वेद को मानते हैं। इसके अन्तर्गत मीमांसा, वेदान्त, साङ्ख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक आते हैं। इन्हें षड्दर्शन कहा जाता है। इन छः दर्शनों के अतिरिक्त और भी आस्तिक दर्शन हैं यथा – शैव-दर्शन, पाणिनीय-दर्शन, रसेश्वर-दर्शन आदि। नास्तिक-दर्शन – जो दर्शन वेद को स्वीकार नहीं करते हैं, उनको नास्तिक-दर्शन कहा जाता है[187] यथा – चार्वाक, बौद्ध तथा जैन।

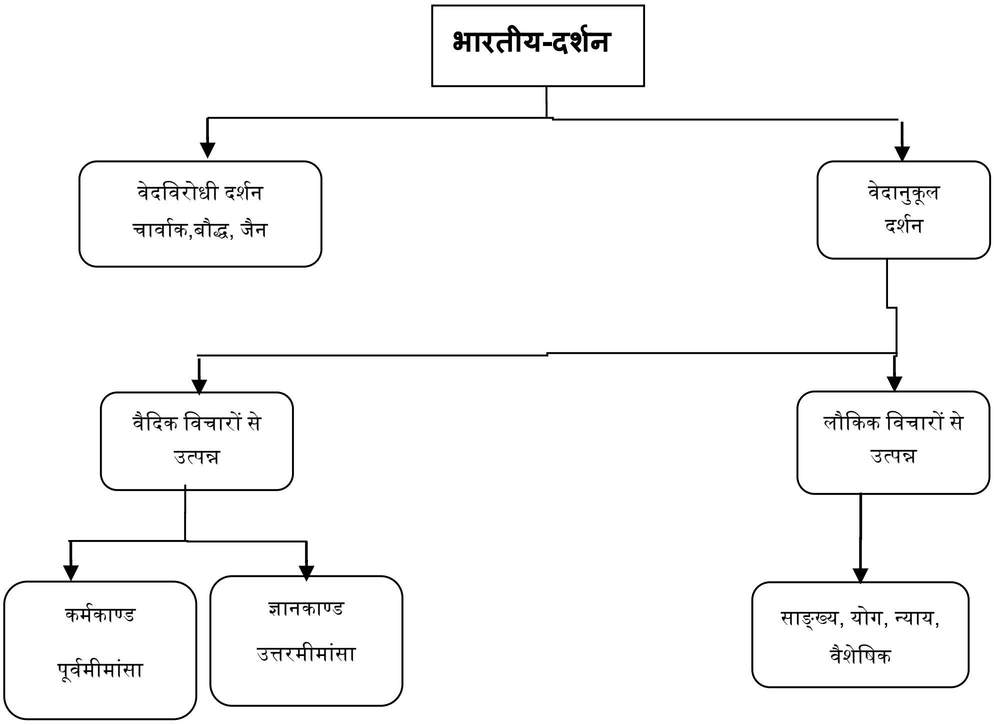

द्वितीय अर्थ के अनुसार, आस्तिक वह जो परलोक में विश्वास रखता है, इस अर्थ के अनुसार बौद्ध, जैन, साङ्ख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त को आस्तिक दर्शन कहते हैं। नास्तिक उसको कहते हैं जो परलोक में विश्वास नहीं रखता है वह नास्तिक है, यथा – चार्वाक-दर्शन।

---

187 नास्तिको वेद निन्दकः, मनुस्मृति,२/११

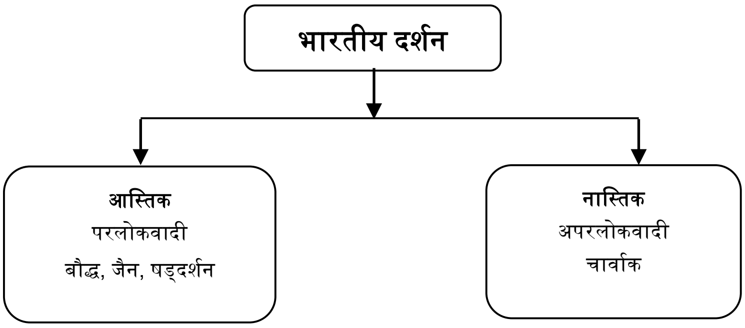

उपलब्ध सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वर्णित चार्वाक-दर्शन का स्वरूप निम्नलिखित है –

षड्दर्शनसमुच्चय – इस ग्रन्थ के रचयिता हरिभद्रसूरि कहते हैं कि इस लोक से परलोक में जाने वाला कोई स्वतन्त्र जीव नही है। पृथ्वी आदि पञ्चमहाभूतों के विशिष्ट मिश्रण से उत्पन्न होने वाला जीव इन भूतों के साथ इसी लोक में नष्ट हो जाता है, परलोक तक जाना असम्भव है। सर्वज्ञ आदि विशेषणों वाला कोई देव नहीं है। कोई निवृत्ति अर्थात् मोक्ष भी नही है, धर्म-अधर्म, पुण्य-पाप, आदि कुछ भी नहीं हैं। जब पुण्य-पाप ही नहीं है तो स्वर्ग-नरक का प्रश्न ही नहीं उठता है –

लोकायता वदन्त्येवं नास्ति जीवो न निर्वृतिः।

धर्माधर्मौ न विद्येते न फलं पुण्यपापयोः ॥ [188]

लोकायत मत में यह संसार जिसे हम पाँच ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव करते हैं, इससे परे कुछ नहीं है। रसना, घ्राण, चक्षु, श्रोत्र और त्वक् ये पाँच इन्द्रियाँ हैं। रसना से रसों का, नासिका से गन्ध का, चक्षु से रूप का, श्रोत्र से शब्द का, त्वक् से स्पर्श का अनुभव होता है। सम्पूर्ण संसार का अनुभव इन्हीं इन्द्रियों से होता है इसके अतिरिक्त कोई और तत्त्व नहीं है। न ईश्वर है, न आत्मा है, न पाप-पुण्य है, न स्वर्ग-नरक है, न धर्म-अधर्म है। सभी प्राणियों को सांसारिक सुख भोगने का समान अधिकार है।

जो विद्वान् मोक्ष, ईश्वर, धर्म, अधर्म, पुण्य, पाप, स्वर्ग आदि का उपदेश देते हैं, वे मनुष्यों को मूर्ख बनाते हैं। लोकायत मत कहता है कि खूब खाओ और पिओ। शरीर पृथ्वी, जल, तेज, वायु का संयोग मात्र है –

“पिब खाद च चारूलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते।

---

[188] ष. ड. स, कारिका, ८०

न हि भीरू गतं निवर्तते, समुदयमात्रमिदं कलेवरम् ॥" [189]

चार्वाक-दर्शन में पृथ्वी, जल, तेज और वायु ये चार महाभूत माने गये हैं, ये ही संसार के कारण हैं, इन्हीं से सारा संसार बना है। इन्हीं चारों महाभूतों के मिलने से चेतना उत्पन्न होती है। जब चारों महाभूत पृथक्-पृथक् हो जाते हैं तभी चैतन्य आत्मा भी समाप्त हो जाता है।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु इन भूतों के विशिष्ट संयोग से प्राणियों के शरीर का निर्माण होता है। जिस प्रकार मदिरा की सामग्री से मदशक्ति होती है, उसी तरह भूतों के विशिष्ट संयोग से चेतना उत्पन्न होती है।[190] जब भूतों से ही चैतन्य उत्पन्न होता है तब प्रत्यक्ष सिद्ध लौकिक सुखों को छोड़कर अदृष्ट परलोक के सुख के लिए जप, तप आदि कष्टकर क्रियाओं को करना अज्ञान है। चार्वाक लोग कहते हैं कि भविष्यत् की आशा से वर्तमान को छोड़ना मूर्खता है।

कर्त्तव्य में प्रवृत्ति तथा अकर्त्तव्य से निवृत्ति होने पर जो मनुष्यों को आत्म सन्तोष होता है उसे चार्वाक लोग निरर्थक बताते हैं। उनके मत में तो काम से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। अन्त में आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि प्रबुद्ध विचारकों को चाहिए कि सभी दर्शनों के ज्ञातव्य विषयों की समालोचना करके जो युक्तिसङ्गत हो उसका अनुसरण करना चाहिए। पृथ्वी, जल, तेज और वायु चारों महाभूतों की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसमें अनुमान, उपमान, शाब्द को प्रमाण नहीं माना गया है।[191]

शास्त्रवार्तासमुच्चय – शास्त्रवार्तासमुच्चय में विषय का विभाजन सम्प्रदायानुसार किया गया है। इसमें एकादश स्तबकों में विभिन्न दार्शनिक सम्प्रदायों की आलोचनात्मक समीक्षा प्रस्तुत की गई गई है। भूतवादियों की मान्यता के अनुसार यह जगत् पृथ्वी, जल, तेज, वायु महाभूतों से उत्पन्न हुआ है। इस जगत् में आत्मा की सत्ता और अदृष्ट की सत्ता नहीं है।[192] आत्मा सम्बन्धी मान्यता लोक व्यवहार से सिद्ध नहीं है, क्योंकि पूर्वजन्म की स्मृति एक लोक स्वीकृत मान्यता है।[193]

---

189 ष. ड. स, कारिका, ८२

190 पृथिव्यादिभूतसंहत्या तथा देहपरीणतेः।
मदशक्तिः सुरांगेभ्यो यद्वत्तद्वच्चिदात्मनि ॥ ष. ड. स., कारिका, ७४

191 किं च पृथ्वी जलं तेजो वायुर्भूतचतुष्टयम्।
आधारो भूमिरेतेषां मानं त्वक्षजमेवं हि ॥ ष. ड. स., कारिका, ८३

192 शा. वा. स., पृ. ९

193 वही, पृ. १३

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह – सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह के उपोद्घात में चतुर्दश विद्याओं का वर्णन है। इसमें दर्शन को भी परिगणित किया गया है। चतुर्दश विद्याओं में मीमांसा को गरीयसी कहा गया है।[194] इसमें पृथिवी, जल, तेज, वायु चार महाभूत स्वीकार किये गए हैं। सभी वस्तुएं प्रत्यक्षगम्य हैं कुछ भी अदृष्ट नहीं है। इस संसार में सुख, दुःख से धर्म, अधर्म की कल्पना नहीं करनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति स्वभाव से ही सुखी और दुःखी होता है। स्थूल, तरूण, वृद्ध, युवा इत्यादि विशेषणों से युक्त विशिष्ट देह ही आत्मा है।[195] जड़ और भूतों के संयोग से चैतन्यता आ जाती है यथा पान सुपारी के संयोग से लालिमा उत्पन्न हो जाती है। इस लोक से अतिरिक्त कोई अन्य लोक नहीं है। प्राण-वायु का निकलना ही मृत्यु है, उसको मोक्ष कहते हैं। तप, व्रत, उपवास आदि के द्वारा मूर्ख ही प्रसन्न होता है। पण्डित परिश्रम नहीं करता है क्योंकि उनको विना परिश्रम के ही सुवर्ण, भूमि आदि को लोग दान कर देते हैं।[196] इन मार्गों की लोग हमेशा प्रशंसा करते हैं। तीनों वेद, अग्निहोत्र, भस्म लगाना इत्यादि कार्य बुद्धि तथा शक्ति से हीन लोग करते हैं, ऐसा बृहस्पति कहते हैं।

सर्वदर्शनसङ्ग्रह – माधवाचार्य के अनुसार चार्वाक-दर्शन के प्रणेता बृहस्पति हैं। इसमें कहते हैं कि जब तक जीवन है, सुखपूर्वक जीना चाहिए इस संसार में मृत्यु सबकी अवश्य होगी। शरीर के एक बार जल जाने पर पुनः प्राप्त नहीं होता है।[197] चार्वाक मतानुयायी कहते हैं कि यदि ज्योतिष्टोम-यज्ञ में मारा गया पशु स्वर्ग जाएगा, तो उस जगह पर यजमान अपने पिता को क्यों नहीं मार डालता जिससे उनको स्वर्ग की प्राप्ति हो सके। पुनः प्रश्न उठाते हैं कि यदि मरे हुए प्राणियों को श्राद्ध से यदि तृप्ति मिले तो बुझे हुए दीपक की शिखा को तेल अवश्य बढ़ा देगा।[198] बाहर जाने वाले लोगों के लिए पाथेय अर्थात् मार्ग का भोजन देना व्यर्थ है, घर में किये श्राद्ध से ही रास्ते में तृप्ति मिल जाएगी। सर्वदर्शनसङ्ग्रह में चार्वाक-दर्शन की तत्त्वमीमांसा, आचारमीमांसा, प्रमाणमीमांसा आदि पर प्रकाश डाला गया है।

---

194 स. सि. सं., उपोद्घात, कारिका-१६

195 स. सि. सं., कारिका-१६

196 वही, पृ. ६

197 स. द. सं., पृ. ०३

198 स. द. सं., पृ. २०

सर्वदर्शनकौमुदी – चार्वाक (चारू वाक्) अर्थात् सुनने में मनोहारी होने से इसे चार्वाक-दर्शन कहते हैं। सुर गुरु बृहस्पति के शिष्यों में चार्वाक विशेष थे। उन्होंने चार्वाक-दर्शन का प्रवर्तन किया है।[199] इसमें देह के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ को स्वीकार नहीं किया गया है। देह ही आत्मा है। देह के नाश से आत्मा का नाश हो जाता है। इस संसार में लौकिक सुख ही परम पुरुषार्थ है। यह परलोक को स्वीकार नहीं करते हैं इसलिए इसे 'लोकायतिक दर्शन' कहते हैं।[200] इस दर्शन के प्रवर्तक बृहस्पति होने से इसका नाम 'वार्हस्पत्य दर्शन' है।[201] वेद धर्म न मानने से इसे 'पाषाण्ड दर्शन' भी कहते हैं।[202] सर्वदर्शनकौमुदी में वर्णित चार्वाक दर्शनानुसार मृत्यु ही अपवर्ग है। अर्थ और काम ही पुरुषार्थ हैं। पृथिवी, जल, तेज, वायु इन भौतिक पदार्थों के संयोग से दृश्यमान इस सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि हुई है। तण्डुलादि पदार्थ के मिश्रण से उसके गल जाने पर मादकता विशिष्ट सुरा की उत्पत्ति के समान क्षिति आदि भूत चतुष्व्य के संयोग से वहाँ चैतन्य की उत्पत्ति हो जाती है। इन भूत चतुष्टय के अभाव से ही देह का विनाश हो जाता है, विनष्ट हो जाने पर उसकी पुनरुत्पत्ति नहीं होती है।[203] हमारे देह धारण करने पर चैतन्य का लाभ होने पर 'मै मोटा हूँ', 'मै पतला हूँ' ऐसा मानने पर आत्मा नाम का कोई पदार्थ नहीं है।[204] चार्वाक-दर्शन में प्रत्यक्ष प्रमाण को स्वीकार किया गया है। अनुमान प्रमाण को भ्रम मूलक स्वीकार किया गया है।[205] सर्वदर्शनकौमुदी के अन्त में माधवाचार्य द्वारा लिखित सर्वदर्शनसङ्ग्रह के सार संक्षेप को यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

- **सर्वमतसङ्ग्रह -** सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार चार्वाक मत में चैतन्य गुण का आश्रय शरीर ही प्रमाता है।[206] चैतन्य शरीर का आगन्तुक गुण है। शरीरोत्पत्ति के कारणभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु इन भूत चतुष्टय में से चैतन्य किसी एक का भी धर्म नहीं है। इन चार तत्त्वों के संयोजन विशेष से इनके संघातरूप शरीर में चैतन्य गुण की उत्पत्ति उसी प्रकार हो जाती है, जिस प्रकार किण्वादि द्रव्यों में मादक शक्ति न होने पर भी उनके विकारभूत मदिरा में मादक

---

[199] स. द. सं., पृ. २२०
[200] वही, पृ. २२२
[201] वही, पृ. २२२
[202] वही, पृ. २२२
[203] स. द. सं., पृ. २२२
[204] वही, पृ. २२२
[205] वही, पृ. २२४
[206] स. म. सं., पृ. १५

शक्ति स्वयं ही उत्पन्न हो जाती है।[207] अथवा पान, सुपारी, चूने आदि के पृथक्–पृथक् रहने पर लालिमा अदृश्य रहती है और उनके संयोग होते ही दृष्टिगोचर होने लगती है।[208] इसी प्रकार पृथिव्यादि तत्त्वचतुष्टय के सम्मिलन से ही शरीर में चैतन्यगुण की उत्पत्ति और अवस्थिति है।

चार्वाक प्रत्यक्ष प्रमाणवादी हैं इसलिए वे प्रत्यक्ष दृश्यमान को ही प्रमाता स्वीकार कर सकते हैं। उनके मत में 'मै मनुष्य हूँ' 'मै स्थूल हूँ' 'मै कृश हूँ' इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणित युक्तियों से शरीर ही प्रमाता सिद्ध होता है।[209] सर्वमतसङ्ग्रहकार ने चार्वाक मत का खण्डन किया है। उनके अनुसार शरीर को प्रमाता नहीं माना जा सकता है। इस हेतु उन्होंने अनेक युक्तियाँ दी हैं। जैसे कि 'यह मेरा शरीर है' ऐसा अनुभव सभी को होता है, जो शरीर से भिन्न किसी दृष्टा के अस्तित्व को सिद्ध करता है। यदि चैतन्य गुणाश्रय शरीर ही प्रमाता है, तो जिस जीवित शरीर में चैतन्य, प्राण, चेष्टा और स्मृति आदि की उपलब्धि होती है, उसी शरीर के मरणावस्था में इनका अभाव क्यों हो जाता है? शरीर घटवत् दृश्य या भौतिक है, अतः उससे भिन्न ही कोई प्रमाता हो सकता है।

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि -** यह दृश्यमान सम्पूर्ण जगत् चार तत्त्वों से बना है। इन चारों अर्थात् पृथिवी , जल, तेज, वायु प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। जो वस्तु प्रत्यक्ष दिखाई दे रही है वह इन चार तत्त्वों से बनी है। इन तत्त्वों के गन्ध, रूप, रस, स्पर्श धर्म हैं,[210] यथा – पुष्प में गन्ध उपलब्ध होती है तथा रस, रूप, स्पर्श भी उपलब्ध होते हैं। केवल अधिकता के कारण उसका वह नाम पड़ जाता है। पुष्प में प्रधानता और बहुलता की वजह से गन्ध उपलब्ध होती है और पार्थिव कहा जाता है। इसी प्रकार जल, तेज, वायु में भी होता है। शब्द आकाश के अभाव में वायु में अवयव सहित आश्रय लेता है। उसी से महद् और अल्प शब्दों की उत्पत्ति होती है।[211] यदि निरवयव आकाश में शब्द रहता है, तब महद् और अल्प का मूल क्या कहना चाहिए। और वह आकाश का अवयव नही है जिससे अधिक से अधिक अल्प से अल्प कहना चाहिए। और न कि उसको उत्तेजक वायु के निमित्त कहना चाहिए और उत्तेजक का आश्रय होने पर वायु के अधिकरण की कल्पना से ही

---

207 वही, पृ. ०४

208 वही, पृ. २१७

209 वही, पृ. १५

210 द्वा. द. सो., पृ. १

211 वही, पृ. १

सामञ्जस्य अलग हुए अप्रत्यक्ष आकाश की कल्पना प्रामाणिक नहीं है।[212] और न अवकाश रूप के आकाश के अभाव में कार्य की उत्पत्ति नही होती है। वस्तु के अभाव को अवकाश कहते हैं और वह द्रव्य और पदार्थ नहीं होता है।[213] इसलिए वस्तु के अभाव के कारण अवकाश का आकश के साथ क्या सम्बन्ध है। इसी प्रकार काल और दिशा को भी समझना चाहिए। मन को ज्ञान का साधन कहते हैं उसको मस्तिष्क स्वीकार करते हैं वह चातुर्भौतिक है, उसकी पृथक् से गणना नहीं की जा सकती है।[214] जो स्वतन्त्र इन्द्रिय या द्रव्य या तत्त्व स्वीकार करते हैं उनको उसका अधिकरण कहना चाहिए। यदि मस्तिष्क है तब प्रत्यक्ष के द्वारा उपलब्ध ज्ञान के साधन मस्तिष्क को छोड़कर अप्रत्यक्ष मन की कल्पना में प्रमाण का अभाव है। अतएव दोष से आक्रान्त होने पर, चोट के लगने पर मस्तिष्क में ज्ञान का उदय नहीं होता है। स्वस्थ होने पर ज्ञान होता है। इस प्रकार अन्वय व्यतिरेक से मस्तिष्क ही ज्ञान का साधन है यह सिद्ध होता है।[215]

चार भूतों से निर्मित यह देह ही ज्ञान का आश्रय है। इन्द्रिय के साथ अर्थ का सन्निकर्ष होने पर ज्ञान उत्पन्न होता है। कुत्ता भी अपने स्वामी के अनुकूल वचन को सुनकर पास में आए हुए बहुत ध्यान से उसके हाथ में स्थित भक्ष्य को देखकर पुच्छ को हिलाता है। समर्थ इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष होने पर मस्तिष्क में वेदना उत्पन्न होती है, इस प्रकार ज्ञान मस्तिष्क का धर्म है देह का नही। देह में स्थित मस्तिष्क तथा चक्षुरादि से ज्ञान उत्पन्न होता है यह अन्वय, व्यतिरेक से सभी ने अनुभव किया है कि देह ही ज्ञान का अधिकरण है।[216] पूर्वपक्षी शंका करते हुए कहता है कि देह चार भूतों से उत्पन्न होता है। चार भूतों के प्रारम्भ में चेतना का अभाव होता है, तब देह में चेतना कहां से आ गयी है। भूतों में भी चेतना नही है। उत्तर में कहते हैं कि जो गुण जहाँ उत्पन्न होता है उसका कारण भी वही रहता है।[217] यद्यपि देह के साधक भूत चार भूतों में चेतना नही है लेकिन उसके परिणाम में चेतना आ जाती है। परिणाम में कुछ विशिष्टता है यथा तण्डुलों से मद्य बन जाती है, घास से दूध उत्पन्न होता है, मिट्टी से गन्ना उत्पन्न हो जाता है।[218]

---

212 वही, पृ. २

213 अवकाशो नाम वस्तुनामभावः स न द्रव्यं। वही, पृ. २

214 द्वा. द. सो., पृ. २

215 वही, पृ. २

216 वही, पृ. ३

217 वही, पृ. ३

218 वही, पृ. ३

चार्वाक-दर्शन के मत में 'जो वस्तु नही है उसमें उसकी कल्पना करना अज्ञान है।[219] जीव पुत्र में तथा धन में जो ममत्व को मानता है वही अज्ञान है।[220] यह अज्ञान सभी दुःखों का कारण है। अपने सुख को प्राप्त करने के लिए पुत्र, भार्या आदि में ममत्व के कारण उनका सुख ही अपना सुख मानते हुए जीव जब विपरीत कर्म को करते हुए देखता है, तब द्वेष करता है। द्वेष से दुःख होता है। दुःख से उन्माद होता है। उन्माद से व्यक्ति उन्मादी होता है। अतः सभी दुःखों के मूल में अज्ञान है। अज्ञान के विनाश के लिए ज्ञान की आवश्यकता है। ज्ञान का लक्षण है – 'तस्मिस्तद्बुद्धिः'।[221] पुत्र, भार्या आदि पर ममत्व का भाव होने पर, उनके ममत्व का अज्ञान हि यथार्थ ज्ञान है।[222] इससे दुःख का नाश होता है। जब तक देह है तब तक व्यक्ति को यह भान होता है कि सभी काम मैं करता हूँ। देह के अभाव में कार्य का अभाव है। मानव जन्म से लेकर सभी पदार्थों में ममत्व की भावना करता है । ममत्व की भावना से दुःख होता है यह जानते हुए भी नही मानता है। पुनः पुनः उसी का अनुसन्धान करता है। ममत्व का दृढी करण उसे पाप में ले जाता है।[223] कोई कुशाग्र बुद्धि एक बार में अन्वय, व्यतिरेक विधि से दुःख का कारण जान कर दुःखों से अपने आपको छुड़ा लेता है। सुखी रहता है।[224]

दुःख का नाश तो विषय के ज्ञान से होता है। अज्ञानी पुनः उन विषयों से दुःखों को उत्पन्न करता है। ममत्व के कारण से पिता अपने पुत्र के दुष्कर्म को देखकर दुःखी होता है परन्तु पुनः ममत्व के ज्ञान से आकृष्ट चित्त वाला उसको स्नेह भी करता है। तत्त्वज्ञान से ममत्व बुद्धि नष्ट वाला मनुष्य कभी दुःखी नहीं होता है।[225]

बालक दूर से माता के हाथ में मोदक देखता है तब उसका अस्तित्व जानकर उसकी प्राप्ति के लिए प्रयास करता है। मोदक प्राप्त कर सुखी होता है। वही बालक दूर से मोदक की गन्ध को सूंघकर मोदक लो यह शब्द सुनकर भी प्रवर्तित नहीं होता है। संदेह के साथ प्रवर्तित होता है और कभी मोदक प्राप्त कर लेता है। यह प्रक्रिया अनुमान से नहीं होती है। अनुमान प्रमाण व्याप्ति ज्ञान पर आश्रित रहता है। व्याप्ति ज्ञान अशक्य है नहीं हो सकता है।[226] 'यत्र धूमः तत्र वह्निः' यह दो

---

219 'अतस्मिस्तदबुद्धिः'। - द्वा. द. सो., पृ. ५

220 वही, पृ. ५

221 वही, पृ. ८

222 ममत्वाभाववत्वज्ञानं। वही, पृ. ८

223 वही, पृ. ९

224 वही, पृ. ९

225 द्वा. द. सो., पृ. १०

226 वही, पृ. १०

चार स्थलों पर देखकर कैसे व्याप्ति स्वीकार की जा सकती है।[227] यदि धूम वह्नि को व्याप्य-व्यापक स्वीकार कर लिया जाय तो वह्नि का प्रत्यक्ष होगा अनुमान नहीं होगा।[228] चार्वाक-दर्शन में केवल प्रत्यक्ष प्रमाण स्वीकार किया गया है।

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** जड़वाद मत के प्रवर्तक चार्वाक हैं।[229] इसी जड़वाद की लोकायतिक संज्ञा है। जड़वाद और लोकायत ये दोनों पर्यायवाची हैं।[230] चार्वाक-दर्शन में जड़वाद पर विश्वास किया जाता है क्योंकि यह दिखाई नहीं देता है। अतः इस मत में आत्मा, ईश्वर, पुनर्जन्म, परलोक, भविष्य, स्वर्ग, नरक आदि दृष्टिपथ पर नहीं आते हैं अतः इन पर विश्वास नहीं किया जाता है। यदि इनमें विश्वास किया जाये तो यह कपोल कल्पना के अतिरिक्त कुछ नहीं है।[231] पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु ये चार भौतिक पदार्थ प्रत्यक्ष अनुभव किये जाते हैं अतः जड़वाद के मूल में यह भूत चतुष्टय हैं।[232]

सम्वेदना रहित ज्ञान हीन जो वस्तु है वह जड़ है।[233] जड़ पदार्थ का चेतन प्रतियोगी है।[234] सभी वस्तुएं जब चेतन अवस्था और जीवित अवस्था में आती है उससे पूर्व अचेतन अवस्था में रहती है। सभी पदार्थ पहले जड़ रूप में रहते है बाद में चेतना आती है यह परिणाम विचार है।[235] जो चेतन वस्तु है उनमें ज्ञान, बुद्धि, अनुभूति रहती है। अतः मनुष्य ज्येष्ठ, शाश्वत, सर्वव्यापी है यह चार्वाक का मत है। यथार्थ ज्ञान को प्रमा कहते हैं। प्रमा के करण को प्रमाण कहते हैं।[236] भारतीय-दर्शन में निम्नलिखित प्रमाण प्राप्त होते हैं –

प्रत्यक्षमेकं चार्वाकाः कणादसुगती पुनः।
अनुमानं च तच्चापि सांख्याः शब्द च ते अपि।

---

[227] वही, पृ. ११

[228] वही, पृ. ११

[229] द्वा. द. सं., पृ. १०६

[230] वही, पृ. १०६

[231] वही, पृ. १०७

[232] वही, पृ. १०७

[233] द्वा. द. सं., पृ. १०७

[234] वही, पृ. १०७

[235] वही, पृ. १०७

[236] वही, पृ. १०७

न्यायैकदेशिनोऽप्येवं उपमानं च केचन।

अर्थापत्त्या सहैतानि चत्वार्याह् प्रभाकरः ॥

अभावषष्ठान्येतानि भाट्टा वेदान्तिनस्तथा।

सम्भवैतिह्ययुक्तानि तानि पौराणिका जगुः ॥[237]

चार्वाक मतानुसार प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्द्रिय द्वारा विश्वास योग्य ज्ञान प्राप्त किया जाता है। इन्द्रिय ज्ञान ही मुख्य रूप से यथार्थ ज्ञान होता है।[238] इस मत में अनुमान आगम आदि प्रमाण का अभाव होने से स्वीकार नहीं किया गया है। इनके मत में अनुमान से संशय रहित निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त नहीं होता है।[239]

चार्वाक-दर्शन में शब्द को प्रमाण स्वीकार नहीं किया गया है। शब्द प्रमाण में विश्वास योग्य व्यक्ति का ज्ञान शब्द से होता है तथा श्रवणेन्द्रिय से प्रत्यक्ष (श्रवण) किया जाता है। इस प्रकार शाब्द ज्ञान द्विविध प्रत्यक्ष के द्वारा होता है। यदि शब्द से वस्तु का बोध होता है, वहाँ प्रत्यक्ष भिन्न है अर्थात् शब्द से अप्रत्यक्ष वस्तु का बोध कभी नहीं होता है।

यदि शब्दात् वस्तुबोधो जायते यत्र प्रत्यक्षभिन्नत्वेनास्ति अर्थात् शब्दात् अप्रत्यक्षवस्तुनां बोधः न कदापि भवति।[240] यदि होता है तो दोष से युक्त होता है।[241] इस प्रकार शब्द प्रमाण से मिथ्या ज्ञान की प्राप्ति होती है अतः प्रमाण स्वीकार नहीं किया जा सकता है। कुछ लोग कहते हैं कि वेद विश्वास योग्य है। वेद पुरोहितों के द्वारा निर्मित होकर अज्ञानी एवं अन्धविश्वासी जनों के बीच में अपनी जीविका निर्वाह के लिए ऐसे ही कुछ कह दिया गया है अतः विश्वास योग्य नही हैं। वेदोक्त कर्मकाण्ड का लाभ केवल पुरोहितों को है अन्य किसी को नहीं है, अतः वेद पर कौन विश्वास करेगा ?।[242] शब्द से प्राप्त ज्ञान अनुमान पर आश्रित होता है। अनुमान में जो सन्दिग्धता है, वह शब्द में भी है। ज्ञान प्राप्ति के लिए शब्द यथार्थ ज्ञान पर आश्रित है। अनुमान और शब्द विश्वास योग्य न होने से केवल प्रत्यक्ष प्रमाण चार्वाक मत में स्वीकार योग्य है।[243]

---

237 वही, पृ. १०७

238 इन्द्रियज्ञानमेव मुख्यं यथार्थज्ञानं भवति।- वही, पृ. १०८

239 वही, पृ. १०८

240 द्वा. द. सं., पृ. १०९

241 वही, पृ, १०९

242 वही, पृ, १०९

243 वही, पृ, १०९

अन्य दार्शनिकों के मत में सृष्टि निर्माण के लिए पञ्चभूतों की अपेक्षा होती है। पञ्चभूतों के प्रपञ्च से ही सृष्टि निर्माण होता है। चार्वाक-दर्शन में भूत चतुष्टय के माध्यम से प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है। उसमें आकाश की अपेक्षा नहीं होती है क्योंकि आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता है, अतः आकाश का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया जाता है।[244] भूत चतुष्टय से केवल निर्जीव पदार्थों की उत्पत्ति नहीं होती किन्तु उद्भिदादि सजीव द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। प्राणियों का जन्म भूत चतुष्टय के संयोग से होता है। मृत्यु के उपरान्त ये प्राणी पुनः भूत चतुष्टय में लय को प्राप्त होते हैं।[245]

चार्वाक-दर्शन में प्रत्यक्ष दो प्रकार का है – बाह्य और मानस प्रत्यक्ष। मानस प्रत्यक्ष से आन्तरिक भावों के ज्ञान की प्राप्ति होती है। बाह्य प्रत्यक्ष से प्रपञ्च का साक्षात्कार होता है। आन्तरिक भावों के ज्ञान से चैतन्य का भी साक्षात्कार हो जाता है। चेतन का ज्ञान जड़ द्रव्य से नहीं होता है, और शरीर के अन्दर विद्यमान अभौतिक सत्ता है उसकी आत्मा संज्ञा है,[246] परन्तु जिसका गुण चैतन्यता है वह यह नहीं है। चैतन्य का ज्ञान प्रत्यक्ष द्वारा होता है यह भी नहीं कहा जा सकता है। चैतन्य अभौतिक होते हुए आत्मा का गुण नहीं है। आत्मा का कभी प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता है। जड़ तत्त्वों से निर्मित जो शरीर होता है वह प्रत्यक्ष योग्य होता है। चैतन्यता तो शरीर के अन्तर्गत होती है, अतः चेतनता शरीर का गुण स्वीकार किया गया है। चेतनात्मक शरीर ही आत्मा है यह कथन युक्तियुक्त है,[247] इसलिए चैतन्य विशिष्ट देह ही आत्मा है। शरीर आत्मा का तादात्म्य दैहिक अनुभव से होता है। जैसे – 'मै स्थूल हूँ' 'मै कृश हूँ' आदि। यदि शरीर चैतन्य में भेद को स्वीकार करते हैं तब 'मै स्थूल हूँ' 'मै कृश हूँ' आदि के व्यवहार में व्याघात हो जायेगा। आत्मा शरीर के द्वारा ही प्रत्यक्ष किया जाता है। अतः शरीर ही आत्मा हो सकता है।[248] शरीर से भिन्न आत्मा का अस्तित्व ही नहीं है। इस हेतु से मृत्यु के बाद वह अमर है, नित्य है, यह प्रश्न ही नहीं उठता है। मृत्यु के बाद शरीर नष्ट हो जाता है। शरीर के नाश हो जाने से उसका जीवन भी नाशवान् सिद्ध हो जाता है। इसलिए हमारे मत में पुनर्जीवन, भविष्यजीवन, पुनर्जन्म, स्वर्ग, नरक, कर्मयोगादि नहीं स्वीकार किये जाते हैं।[249]

आत्मा के समान ईश्वर के अस्तित्व के विषय में भी चार्वाक दार्शनिकों का विश्वास नहीं है, क्योंकि ईश्वर का भी प्रत्यक्ष नहीं किया जाता है। ईश्वर के अस्तित्व में कोई प्रमाण नहीं है। अन्य दर्शनों में

---

244 आकाशस्य अस्तित्वं न मनुते चार्वाकः। - द्वा. द. सं., पृ, १०९

245 मरणानन्तरं एते प्राणिनः पुनश्च तत्वेषु भूतचतुष्टयेषु लयं प्राप्नुवन्ति। - द्वा. द. सं.,पृ. ११०

246 वही, पृ. ११०

247 चेतनात्मकशरीरस्यैव आत्मा इति कथनं युक्तियुक्तं भवति।- वही, पृ. ११०

248 वही, पृ. ११०

249 वही, पृ. ११०

जगत्कर्ता के रूप में ईश्वर को स्वीकार किया गया है। चार्वाक-दर्शन में जड़ तत्त्वों के सम्मिश्रण से संसार रूपी प्रपञ्च की उत्पत्ति होती है। अतः जगत्कर्ता के रूप में उसकी अपेक्षा नहीं होती है।[250]

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में यह कहा गया है कि भूत चतुष्टय का अपना अपना स्वभाव है। ये तत्त्व अपने अपने स्वभाव के अनुसार ही संयुक्त होते हैं।[251] तत्त्वों के स्वतः सम्मिश्रण से ही संसार की उत्पत्ति होती है, इसलिए सृष्टि के प्रपञ्च के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं है। प्रपञ्च की उत्पत्ति जड़ तत्त्वों के आकस्मिक संयोग से होती है। अतः चार्वाक मत में ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है।[252]

मूल-तत्त्वों के विषय में चार्वाक का मत प्रमाण पर आश्रित है, क्योंकि इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही स्वीकार किया गया है। जो वस्तु प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध है उसी का अस्तित्व स्वीकार किया गया है। आत्मा, स्वर्ग, जीव आदि प्रत्यक्ष प्रमाण से असिद्ध हैं, अतः उनको स्वीकार नहीं किया गया है।[253]

परलोक, स्वर्ग, सुखादि केवल विश्वास पर आश्रित हैं। परलोक है इसका कोई प्रत्यक्ष प्रमाण उपलब्ध नहीं होता है। बुद्धिमान् व्यक्ति इन सबका विचार करके पुरोहित के वाक्यों पर विश्वास नहीं करता है। चार्वाक-दर्शन में मृत्यु को ही मोक्ष कहा गया है- 'मरणमेव अपवर्गः'।[254] आत्मा की सत्ता ही नहीं है, इसलिए शरीर के कर्म बन्धनों से आत्मा की मुक्ति नही होती है। जीवन काल में ही दुःखों का अन्त हो जाता है। शरीर धारण करने के साथ ही सुख-दुःख का अविच्छेद सम्बन्ध है। यदि दुःख की न्यूनता होती है तो सुख की अधिकता होती है किन्तु दुःख का पूर्ण विनाश शरीर त्याग अर्थात् मरने पर ही होता है। अपने जीवन में दुःखों को कम करके कितना भी सुख प्राप्त किया जा सकता है। इनके मत में कहा गया है कि - **'ऋणं कृत्वा घृतं पिब'**।[255]

चार्वाक-दर्शन में दो पुरुषार्थ स्वीकार किये गये हैं – अर्थ और काम। धर्म और मोक्ष को अस्वीकार किया गया है। मोक्ष का अर्थ है - पूर्ण दुःख-विनाश। यह दुःख-विनाश मृत्यु से पूर्व सिद्ध नहीं होता है। कोई भी बुद्धिमान् अपनी मृत्यु की कामना नहीं करता है। धर्म के लिए शास्त्र प्रमाण हैं, किन्तु ये विश्वास करने योग्य नही हैं। अतः धर्म और मोक्ष पुरुषार्थ नही हैं। मनुष्य काम-भोग से सुख-प्राप्ति के

---

250 द्वा. द. सं., पृ. १११

251 वही, पृ. १११

252 अस्मिन् मते ईश्वरस्य अस्तित्वं नाङ्गीक्रियते इत्यस्माद्धातोः चार्वाकाः भवन्ति अनीश्वरवादिनः।

- वही, पृ. १११

253 वही, पृ. ११२

254 वही, पृ. ११२

255 द्वा. द. सं., पृ. ११३

लिए धनार्जन करता है। अतः अर्थ और काम के बीच में काम को अन्तिम पुरुषार्थ माना जाता है।[256] अर्थ काम प्राप्ति के लिए साधन मात्र है।

- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** चार्वाक-दर्शन का वर्णन करते हुए प्रस्तुत ग्रन्थ में लेखक वेद निन्दक को नास्तिक कहते हैं, नास्तिक ही चार्वाक हैं। ये सुखासक्त, जड़ तथा देहात्मवादी हैं। चार्वाक-दर्शन के आचार्य बृहस्पति हैं, यह प्रत्यक्ष प्रमाण में विश्वास करते हैं।[257] चार्वाक नामक दैत्य के द्वारा यह मत प्रचारित किया गया है अतः उसके अभाव में यह चारू अर्थात् चार्वाक-दर्शन कहा जाता है।[258] चार्वाक-दर्शन में जीवन का अन्तिम लक्ष्य सुख है, ईश्वर को इसमें स्वीकार नहीं किया गया है। पृथिवी, जल, तेज, वायु ये चार तत्त्व हैं जगत् में दिखायी देने वाला चैतन्य भूतों का संयोग मात्र है। स्वभाविक रूप से जगत् की उत्पत्ति और विनाश होते हैं। मरने को ही मोक्ष कहा जाता है। पाप को यहाँ स्वीकार नहीं किया गया है। चार्वाक-दर्शन में यह स्वीकार किया जाता है कि वेदों की रचना धूर्तों और वञ्चकों ने की है।[259] जीविका की व्यवस्था करना ही कर्मकाण्ड है। पशु की यज्ञ में हत्या करने से यदि वह शीघ्र स्वर्ग को जाता है तो क्यों नहीं अपने पिता की हत्या कर शीघ्र स्वर्ग हेतु भेजते हैं। जब तक जियो सुख से जियो, ऋण करके घी खाना चाहिए, क्योंकि शरीर के नाश होने पर यह पुनः नहीं मिलता है।[260]
- **अन्य सङ्ग्रह-ग्रन्थों में चार्वाक-दर्शन –** इसमें उन सङ्ग्रह-ग्रन्थों को रखा गया है जिनमें चार्वाक-दर्शन पर विस्तार से चर्चा उपलब्ध नहीं होती हैं। ये सङ्ग्रह ग्रन्थ निम्न हैं –
- **प्रस्थानभेद -** प्रस्थानभेद में नास्तिक दर्शनों के छः प्रस्थानों की चर्चा की है। चार्वाक-दर्शन को देहात्मवाद मानने वाला स्वीकार किया गया है। **पुरुषार्थानुपयोगित्वादुपेक्षणीयम्।**[261] पुरुषार्थ में अनुपयोगी होने से यहाँ उसको उपेक्षणीय मानते हुए विस्तार से चर्चा उपलब्ध नहीं होती है।
- **षड्दर्शनसमुच्चय (राजशेखर) –** पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चार भूतों से समस्त संसार का निर्माण होता है। इन चार भूतों से देह का निर्माण होता है। मदिरा से जैसे मदशक्ति उत्पन्न होती है, उसी प्रकार भूतों से चेतना की उत्पत्ति होती है।

---

256 धनकामयोर्मध्ये काम एव अन्तिम पुरुषार्थः। - वही, पृ.११२

257 प्र. भि. प्र. ,पृ. ४९

258 वही, पृ.५०

259 वही, पृ. ५०

260 प्र. भि. प्र. , पृ. ५०

261 प्रस्थानभेद, पृ. १७५

पृथिव्यादिभूतसहृत्यां, तथा देहपरीणतेः।

मदशक्तिः सुराङ्गेभ्यो, यद्वत् तद्वच्चिदात्मनि ॥[262]

दृष्ट वस्तु का परित्याग, अदृष्ट की ओर प्रवर्तना चार्वाक-दर्शन में इस प्रकार मानने वाले मनुष्य को मूढ कहते हैं। चक्षुरिन्द्रिय से जिसका ज्ञान होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण चार्वाक-दर्शन में स्वीकार किया गया है।[263]

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक – प्रस्तुत ग्रन्थ में** चार्वाक मत के प्रवर्तक बृहस्पति के अनुसार इसमें प्रमाण, प्रमेय का संक्षेप में निरूपण किया गया है। इसमें चार तत्त्व स्वीकार किये गए हैं। '**पृथिव्यापस्तेजो वायुरिति तत्त्वानि।**[264] इन चारों तत्त्वों के मिलने से शरीर का निर्माण होता है। '**तत्समुदाये शरीरेन्द्रियविषयसंज्ञा।**' [265]

जल के बुलबुले के समान जीव है। चेतना से विशिष्ट शरीर है। प्रीति (सुख), काम ये दो पुरुषार्थ हैं।[266] प्रत्यक्ष एकमात्र प्रमाण है। प्रत्यक्ष का लक्षण यथार्थ ज्ञान है। असन्निहितार्थ को अनुमान कहते हैं।[267]

॥ बौद्ध-मत ॥

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** हरिभद्रसूरि षड्दर्शनसमुच्चय का प्रारम्भ बौद्ध-दर्शन से करते हैं। बौद्ध-दर्शन में दुःख, दुःख-समुदय, दुःख-निरोध, दुःख निवृत्ति-मार्ग ये चार आर्य सत्य हैं। इनके प्रतिष्ठापक आचार्य सुगत हैं।

'तत्र बौद्धमते तावद्देवता सुगतः किल।

चतुर्णामार्यसत्यानां दुःखादीनां प्ररूपकः ॥'[268]

---

[262] ष. द. समु., पृ. ३१६

[263] वही, पृ. ३१६

[264] स. सि. प्र., पृ. ३७२

[265] स. सि. प्र., पृ. ३७२

[266] वही, पृ. ३७३

[267] वही, पृ. ३७३

[268] ष.द.स., पृ. ४०

विज्ञान, वेदना, संज्ञा, संस्कार, रूप ये पाँच स्कन्ध कहे जाते हैं। संसार के सभी संस्कार क्षणिक हैं। पाँच इन्द्रियाँ, शब्दादि पाँच विषय, चित्त और सुख दुःखादि धर्मों का आधार शरीर ये द्वादश आयतन हैं। प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने गए हैं।

'प्रमाणे द्वे च विज्ञेये तथा सौगतदर्शने। प्रत्यक्षमनुमानं च सम्यग्ज्ञानं द्विधा यतः ॥'[269]

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, माध्यमिक पक्ष –** प्रस्तुत सङ्ग्रह-ग्रन्थ के अन्तर्गत बौद्ध-दर्शन में बुद्ध द्वारा जैन व लोकायत-मत की आलोचना की गयी है। तत्पश्चात् बौद्ध समर्थकों द्वारा स्वीकृत मतों में प्रथम को प्रत्यक्षवादी, द्वितीय को बाह्यार्थानुमेयवादी, तृतीय को विज्ञानवादी तथा चतुर्थ को माध्यमिक शून्यवादी कहते हैं | **'चतुर्णां मतभेदेन बौद्धशास्त्रं चतुर्विधम्। अधिकारानुरूपेण तत्र तत्र प्रवर्तकम् ॥'**[270]

इनमें प्रथमतः माध्यमिक मत का परिचय देते हुए इनके शून्यवाद मत की चर्चा करते हैं।[271] तत्पश्चात् माध्यमिकों द्वारा चतुष्पाद कोटि अस्तित्व अर्थात् सद्, असद्, सदसद्, न सद् न असद् को नकारते हुए उस परम सत्ता को विलक्षण बताया गया है।

'चतुष्कोटिविनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः।

यदसत्कारणैस्तन्न जायते शशशृङ्गवत्' ।।[272]

जाति व जातिमान् को पृथक् न मान उन्होंने परमाणु को वैशेषिक मान्य व उसके षडंश को अणु माना

'जातिर्जातिमतो भिन्ना न वेत्यत्र विचार्यते।

भिन्ना चेत्सा च गृह्येत् व्यक्तिभ्योऽङ्गुष्ठवत्पृथक् ।।'[273]

साथ ही अन्ततः यह प्रश्न रखा कि क्या ब्राह्मणत्वादि जाति वेदपाठ के द्वारा अथवा वंशानुगत संस्कारों द्वारा उत्पन्न होता है। यदि ऐसा होता तो देशान्तरगत सम्यक् वेद पढ़े शूद्र में भी ब्राह्मणत्व उत्पन्न होता और यदि चालीस संस्कारों ब्राह्मणत्व उत्पन्न होता तो एक संस्कार से अभिहित भी

---

269 वही, पृ. ५५

270 स.सि.सं., पृ.९, १-२

271 वही, पृ.९,३-६

272 वही, पृ.९,७

273 वही, पृ.९,१०

ब्राह्मण कहा जाता है।[274] अतः यह कहना अनुचित है कि जाति व्यक्त्यात्मक यह जगत् है। अतः विज्ञान भी ज्ञेयाभाव होने से नही है। यही माध्यमिकों का शून्यवाद है।[275]

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह (सौत्रान्तिक-पक्ष) -** इस मत के प्रारम्भ में विज्ञानवाद को अनुचित मानते हुए कहते हैं कि बिना किसी वास्तविक पदार्थ के उसका प्रतिबिम्ब भी नहीं बन सकता।[276] अतः बाह्य पदार्थों का भी वास्तविक रूप में अस्तित्व है और बिना प्रतिरूप के चित्त में इनका ज्ञान नहीं हो सकता।[277] पञ्च ज्ञानेन्द्रियों के बिना विभिन्न पदार्थों का बाह्य तौर पर प्रतिरूप ज्ञान नहीं हो सकता परन्तु आन्तरिक ज्ञान तो षष्ठ इन्द्रिय मन के आधार पर ही होता है।[278] बाह्य विषय मन में प्रतिरूप उत्पन्न करते हैं। अतः बाह्य विषयों का ज्ञान उससे उत्पन्न बुद्ध्याकारों से अनुमान द्वारा प्राप्त होता है।[279] अतः यह वस्तु व ज्ञान को भिन्न मानते हुए क्षणिकवाद का खण्डन करते हैं।[280]

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह- (योगाचार-पक्ष)** इस मत का प्रारम्भ निरालम्बनवादी योगाचारी के द्वारा माध्यमिकों के शून्यवादिता का निराकरण करते हुए होता है और कहते हैं कि अपने मत के अतिरिक्त मतों का निरासन करने में कोई युक्तियाँ क्यों नही दी?[281] अपना मत बताते हुए वह ज्ञान की वस्तु व परिणाम सब चित्त में मानते हैं और बाहरी वस्तुओं की सत्ता में भी अन्ततः एकमात्र विज्ञानवाद को ही मानते हैं।[282] जैसे एक सुन्दर नवयुवती के ही शव को चित्त के विज्ञान के कारण ही एक धार्मिक व्यक्ति शव-मात्र कहता है, उसी को एक कामुक व्यक्ति एक प्रिय प्रेमिका कहता है तथा एक कुत्ता उसे एक खाने की वस्तु मात्र मानता है अर्थात् जब वह महिला एक ही है तो उसके बारे में विचार भी एक होने चाहिये परन्तु यह अपने-अपने चित्त-विज्ञान के कारण ही ऐसा हुआ।[283] अतः विज्ञान ही एकमात्र सत्य है व मुक्ति का मार्ग है।[284]

---

274 वही, पृ.९

275 वही, पृ.९

276 स.सि.सं., पृ.१३

277 वही, पृ.१३

278 वही, पृ.१३

279 वही, पृ.१३

280 वही, पृ.१३

281 वही, पृ.१२

282 वही, पृ.१२

283 वही, पृ.१२

284 वही, पृ.१२

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह- वैभाषिक-पक्ष -** वैभाषिक व सौत्रान्तिक दोनों के मत बाह्यार्थ को स्वीकार करते हैं, परन्तु जहाँ सौत्रान्तिक बाह्यार्थानुमानवाद मानते हैं, वहाँ वैभाषिक प्रत्यक्षवाद स्वीकार करते हैं।[285] वैभाषिक बाह्यविषयों को घनवत् पुञ्जीभूत परमाणुओं का सङ्घात मानते हैं।[286] उनके अनुसार मात्र ज्ञान से ही पदार्थों का अनुमान लगाना विरुद्ध भाषा है।[287] ये सभी जड़-चित्त पदार्थों की सत्ता भूत, वर्तमान तथा भविष्य में मानते हैं तथा बुद्धवचन प्रमाण मानते हैं। अध्यात्म निर्णय में चारों बौद्ध मतों में एकता तथा व्यावहारिक रूप में उनमें परस्पर विवाद मानते हैं।[288] इसके आगे वैभाषिक बौद्ध-धर्म में प्रसिद्ध पञ्च-स्कन्ध, द्वादशायतन, अष्टादश धातुओं वेदनादि संस्कारों आदि विभिन्न विषयों पर अन्यत्रवत् चर्चा करते हैं।[289] अन्ततः कर्म, देवता, ध्यान व मानसिक एकाग्रता अर्थात् योग तथा क्षणिकवाद के आधार पर अपना मत देते हैं।[290]
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह -** सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार ने सर्वप्रथम चार्वाकमत में व्याप्ति का खण्डन किया है तथा उसकी सिद्धि में चार भेद माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक इनका वर्णन किया है।

माध्यमिक – यह मत आचार्य नागार्जुन का है। उन्होंने 'माध्यमिककारिका' में संसार असत् या शून्य कहा है। शून्य का अभिप्राय ऐसा सत् है, जो चतुष्कोटि से विलक्षण, अनिर्वचनीय है –

न सन्नासन्न सदसन्न चाप्यनुभयात्मकम्।

चतुष्कोटि विनिर्मुक्तं तत्त्वं माध्यमिका विदुः ॥[291]

योगाचार – दिङ्नाग, धर्मकीर्ति आदि आचार्य इसको मानते हैं। योगाचार के अनुसार बाह्य अर्थ शून्य है, किन्तु चित्त जो सभी वस्तुओं का ज्ञाता है, कभी असत् नहीं हो सकता है। यदि असत् होगा तो हमारे ज्ञान भी असत् हो जायेगें।[292]

---

[285] स. सि. सं.,पृ.१४

[286] वही, पृ.१४

[287] वही, पृ.१४

[288] वही, पृ.१४

[289] वही, पृ.१४-१५

[290] वही, पृ.१८

[291] माध्यमिक कारिका १/१७

[292] स. द. सं., पृ. ३२

सौत्रान्तिक – इनके अनुसार मानसिक और बाह्य दोनों पदार्थ सत् हैं यद्यपि बाह्य-पदार्थों का ज्ञान अनुमान से होता है। उनके प्रत्यक्ष के लिए, विषय, चित्त, इन्द्रियाँ तथा सहायक तत्त्वों की अपेक्षा होती है।[293]

वैभाषिक – सर्वदर्शनसङ्ग्रह में बाहरी वस्तुओं को अनुमेय न मानकर पूर्णरूप से प्रत्यक्षगम्य स्वीकार किया गया है। क्षणिकवाद का लक्षण देते हुए कहते हैंकि 'यत्सत्तत्क्षणिकम् यथा जलधरपटलम्'।[294] अन्त में चार आर्य सत्य, द्वादश आयतनों पर विचार किया गया है।

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** इसमें द्वादश आयतनों पर विचार किया गया है। प्रत्यक्ष और अनुमान दो प्रमाण माने गये है। प्रत्यक्ष का लक्षण 'कल्पनापोढमभ्रान्तम्' है।[295] अनुमान 'त्रिरूपाल्लिङ्गाल्लिङ्गिनि ज्ञानमनुमानम्' का लक्षण है।[296]
- **षड्दर्शनपरिक्रम –** मेरूतुङ्गाचार्य ने आर्यसत्य, चार भेद, द्वादश आयतन, प्रत्यक्ष, अनुमान प्रमाण पर संक्षेप में चर्चा प्रस्तुत की है।
- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप -** प्रारम्भ में जन्म, माता-पिता आदि के बारे में बताया गया है। बौद्ध सम्प्रदाय चार प्रकार के होते है – सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक, वैभाषिक।[297] वैभाषिक ज्ञान और ज्ञेय दोनों को प्रत्यक्ष मानते हैं, किन्तु सौत्रान्तिक ज्ञेय अर्थ को अनुमेय मानते हैं।[298] योगाचार केवल ज्ञान को ही मानते हैं। घट आदि पदार्थ ज्ञानरूप है। माध्यमिक कहते हैं कि ज्ञान और ज्ञेय दोनों शून्य हैं तथा उनकी सत्ता भ्रमरूप है।[299]
- **सर्वमतसङ्ग्रह –** सर्वमतसङ्ग्रह में बौद्धदर्शन के चार सम्प्रदाय हैं – माध्यमिक, योगाचार सौत्रान्तिक और वैभाषिक। सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार इनमें माध्यमिक सर्वोत्तम हैं तदनन्तर योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक।[300] इन सभी के मतों में प्रमाता भिन्न-भिन्न

---

293 वही, पृ. ३२

294 वही, पृ. ३३

295 स. सि. प्र., पृ. ३७०

296 वही, पृ. ३७०

297 प्र. भि. प्र. ,पृ, ५२

298 वही, पृ, ५२

299 वही, पृ, ५२

300 स. म. सं. ,पृ. १८

हैं, किन्तु प्रमाता के विषय में जानने से पूर्व इन चारों का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है। सर्वमतसङ्ग्रहकार ने मानमेयोदयकार[301] को उद्धृत करते हुए इनके दार्शनिक विभेद को स्पष्ट किया है -

“मुख्यो माध्यमिको विवर्तमखिलं शून्यस्य मेने जगद्,

योगाचारमते हि सन्ति हि धियस्तासां विवर्तोऽखिलम्।

अर्थोऽस्ति क्षणभङ्गुरस्त्वनुमितो बुद्धयेति सौत्रान्तिकः,

प्रत्यक्षं क्षणभङ्गुरं च सकलं वैभाषिको भासते ॥”

बौद्धदर्शन का माध्यमिक सम्प्रदाय शून्यवादी है। यह बुद्ध के समान दो अतियों के मध्य का मार्ग अर्थात् मध्यममार्ग को स्वीकार करने के कारण माध्यमिक सम्प्रदाय कहा जाता है। इनके मत में शून्य ही परम तत्त्व है। ये बाह्यजगत् और आन्तरिक जगत् इनमें से किसी की भी सत्ता को स्वीकार नहीं करते हैं। योगाचार के अनुसार बाह्यजगत् की सत्ता नहीं है, केवल आन्तरिक चित्त या विज्ञान ही सत् है। यह समस्त वस्तु को विवर्त या विज्ञान रूप मानता है। अतः इसे विज्ञानवाद भी कहते हैं। सौत्रान्तिक के मत में बाह्य जगत् और आन्तरिक चित् दोनों की ही सत्ता है। किन्तु ये बाह्य जगत् को प्रत्यक्ष से ज्ञेय न मानकर, अनुमेय मानते हैं। ये क्षणभङ्गवाद को स्वीकार करते हैं। वैभाषिक को सर्वास्तिवाद भी कहते हैं। यह बाह्य जगत् की सत्ता को स्वीकार करता है, किन्तु उसे प्रत्यक्ष और क्षणभङ्गुर मानता है।

सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार माध्यमिक सम्प्रदाय सर्वश्रेष्ठ है। ये शून्यवादी हैं। सर्वमतसङ्ग्रहकार ने शेष तीनों योगाचार, सौत्रान्तिक और वैभाषिक को भी शून्यवादी सिद्ध किया है क्योंकि योगाचार बाह्यार्थ अथवा बाह्य जगत् का शून्यत्व मानता है। सौत्रान्तिक प्रत्यक्षज्ञेय बाह्य जगत् का शून्यत्व स्वीकार करते हैं, क्योंकि इनके मत में बाह्य जगत् अनुमेय है। वैभाषिक को बाह्य जगत् और आन्तरिक जगत् दोनों को ही अस्थिर मानते हुए जगत् का शून्यत्व मान्य है।[302]

माध्यमिक सम्प्रदाय में शून्य ही एकमात्र परम तत्व है। इसलिए इनके अनुसार शून्यस्वभाव प्रमाता है।[303] इसकी सिद्धि स्मृति ज्ञान से करते हैं। किसी सोकर उठे हुए पुरुष को ‘इस काल तक में शून्य था’ ऐसी स्मृति होती है। इससे शून्य स्वभाव प्रमाता सिद्ध होता है। सर्वमतसङ्ग्रहकार स्पष्ट करते हैं कि

---

301 मानमेयोदय – ५१

302 स. म. सं. ,पृ. २१

303 वही, पृ. १८

आत्मा में 'मैं हूँ' यह सत्त्व-प्रतीति संवृत्ति के कारण है। संवृत्ति अविद्या या अज्ञान है। तत्त्व के वास्तविक स्वरूप को आवृत्त करने के कारण यह संवृत्ति कहलाती है।[304]

समन्ताद्वरणं संवृत्तिः। अज्ञानं हि समन्तात् सर्वपदार्थतत्त्वावच्छादनात् संवृतिरित्युच्यते। संवृत्ति सत् पदार्थ के असत् रूप में प्रतीति का कारण है।[305]

योगाचार सम्प्रदाय के अनुसार माध्यमिकों के प्रमाता के असत् अर्थात् शून्य होने से प्रमेय शून्य की भी सिद्धि नहीं हो सकती। कोई प्रमाता होना आवश्यक है। अतः योगाचारी आलय-विज्ञान को प्रमाता के रूप में स्वीकार करते हैं।[306] आलय-विज्ञान स्वप्रकाश है, अन्यथा इसकी सिद्धि हेतु किसी अन्य की अपेक्षा होगी। यह स्वप्रकाशत्व ज्ञान से अभिन्न है, अतः आलय-विज्ञान ज्ञानाकार है। यह स्वप्रकाश होने से चेतन कहा गया है। ज्ञान तथा सुखादि इसी के आकार विशेष हैं।

तस्य स्वतः प्रकाशरूपत्वाच्चेतनत्वम्। ज्ञानसुखादिकं तु तस्यैवाकाराविशेषः।[307]

सौत्रान्तिक और वैभाषिक विश्व की बाह्य और आभ्यन्तर दोनों सत्ताएँ मानते हैं। सौत्रान्तिक बाह्य जगत् को अनुमेय जबकि वैभाषिक प्रत्यक्षग्राह्य स्वीकार करते हैं। दोनों के मत में सम्पूर्ण जगत् क्षणिक है। यदि इसे क्षणिक न माना जाये तो, बीज की अंकुर, द्रुम, पल्लव, पुष्प, फलादि विविध अवस्थाओं में संगति न हो सकेगी। अतः सम्पूर्ण जागतिक पदार्थ प्रतिक्षण परिवर्तनशील हैं, इसलिए इनके मत में प्रमाता भी अस्थिर है।[308] नीलम शर्मा इसको स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि ज्ञाता स्थिर होगा, तो ज्ञान भी स्थिर होगा। उस स्थिति में सर्वदा किसी एक वस्तु का ही ज्ञान होगा, अन्यों का नहीं। जैसे कि यदि नीलपदार्थ की प्रतीति होती है, तो सदैव वे ही प्रतीत होंगे। पीत पदार्थ कभी भी गृहीत न होगें। किन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है। सभी को भिन्न-भिन्न प्रकार का ज्ञान होता है। इससे प्रमाता की अस्थिरता ही सिद्ध होती है।[309]

सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार प्रमाता को अस्थिर मानना युक्तियुक्त नहीं है, क्योंकि इससे स्मृति की व्याख्या संभव न हो सकेगी।[310] यदि ज्ञाता प्रतिक्षण परिवर्तनशील है, तो किसी भी पदार्थ का सर्वदा

---

304 माध्यमिक कारिका, प्रसन्नपदाव्याख्या, पृ. २१५

305 स. म. सं.,पृ. १९

306 वही, पृ. १९

307 न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, पृ. २२७

308 स. म. सं. ,पृ. २०

309 टी. ग. द्वा. सं. स. का स. अ., पृ. ५७

310 स. म. सं. ,पृ. २२

नवीन ज्ञान होगा, स्मरण कदापि नहीं हो सकता क्योंकि वह प्रमाता जिसने पूर्व में ज्ञान प्राप्त किया था, अग्रिम क्षणों में परिवर्तित हो चुका है।

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि, वैभाषिक (क्षणिकात्मवाद)** वैभाषिक मत क्षणिकात्मवाद को मानता हुआ ज्ञेय रूप में भूत,भौतिक चित्त तथा चैत्य की चर्चा करता है।[311] यह ज्ञाता को क्षणिक विज्ञान रूप मानता है।[312] अज्ञान के स्वरूप पर बात करे तो हम पाते हैं कि यह आत्मा तथा उसके सब ज्ञान को स्थिर मानने लगता है।[313] दुःख के स्वरूप को वैभाषिक स्थिर व भ्रान्तिजन्य विकार मानते हैं।[314] ज्ञान के स्वरूप को 'सर्वं क्षणिकं' इस भावना का आना मानते हैं।[315] मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए यह दुःखों क चरम नाश ही मोक्ष मानते हैं।[316] प्रमाणों के अन्तर्गत यह प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण मानते हैं।[317]

वैभाषिकों का दर्शन व विचार – प्रस्तुत ग्रन्थानुसार प्रवर्तक अनुभव है – **'स्वप्नेऽपि त्रिपुटीयमनुभवसिद्धा।'** वैभाषिक विचार धारा का सिद्धान्त इस प्रकार है **– स्वप्नेऽस्यास्त्रिपुट्या अनुभवेन देहस्य ज्ञातृत्वं न, किन्तु अहमाख्यायाश्चित्तवृत्तेरेव। सा च प्रतिक्षणपरिणामिनीति क्षणिकरूपा। तथा च ज्ञेयमपि क्षणिकमेव। तत्र स्थिरत्वविज्ञानाद्दुःखम्। क्षणिकत्वविज्ञानात्तस्य नाश इति।**

वैभाषिक दर्शन का श्लोकात्मक परिचय इस प्रकार है –

"भूतं मानबलेन सिध्यति यथा चित्तं तथैवान्तरं

आत्माऽहमितिभाजनं क्षणिकविज्ञानस्वरूपो मतः।

मुक्तिर्वित् पररूपहानविमला तत्कारणं भावना

सर्वं च क्षणिकं प्रमाणमनुमानमप्यस्तीह वैभाषिके ॥"

---

[311] द्वा. द. सो. ,पृ.१४-१८

[312] वही, पृ.१८-२०

[313] वही, पृ.२१-२२

[314] वही, पृ.२२-२३

[315] द्वा. द. सो. ,पृ.२३-२४

[316] वही, पृ.२४-२५

[317] वही, पृ.२७-२९

द्वादशदर्शनसोपानावलि - सौत्रान्तिक – (दुःखविज्ञानात्मवाद) इस दर्शन को बताने से पूर्व इसकी अवतरणिका देकर दुःखविज्ञानात्मवाद का नाम दिया जाता है। तत्पश्चात् ज्ञेय रूप में भूत, भौतिक, चित्त तथा चैत्य की चर्चा करते हुए इनकी स्वतन्त्र सत्ता मानता है।[318] इसमें ज्ञाता का स्वरूप क्षणिक दुःख विज्ञान रूप माना गया है।[319] अज्ञान के स्वरूप ज्ञेयों में सुखानुभूति ही माना गया है।[320] दुःख के स्वरूप को भावनाजन्य चित्त का विकार माना गया है।[321] ज्ञान के स्वरूप के अन्तर्गत इसी भावना को दुःख का मूल मान लेना अथवा इसका भान होना है।[322] मोक्ष के स्वरूप का वर्णन करते हुए इसे दुःखों का चरम ध्वंस हो जाना ही माना गया है।[323] प्रमाणों के अन्तर्गत यह प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण मानते हैं।[324]

द्वादशदर्शनसोपानावलि -योगाचार (स्वलक्षणविज्ञानात्मवाद) – चतुर्थ सोपान में स्वलक्षण विज्ञानात्मवादी योगाचार दर्शन का विवेचन है। इस मत में ज्ञेय को चित्त व चैतन्यस्वरूप माना गया है। बाह्य व भौतिक नहीं।[325] ज्ञाता को क्षणिक व स्वलक्षण विज्ञान रूप माना गया है।[326] अज्ञान का स्वरूप विषयों की दुःखदत्वता को माना गया है।[327] दुःख के स्वरूप को दुःखदत्व भावनाजन्य चित्त का विकार बताया गया है।[328] ज्ञान का स्वरूप स्वलक्षण या विज्ञानमात्र की भावना है।[329] मोक्ष का स्वरूप दुःख का चरम ध्वंस है।[330] प्रमाणों के अन्तर्गत यह भी प्रत्यक्ष तथा अनुमान प्रमाण मानते हैं।[331]

---

[318] वही, पृ.३१-३४
[319] वही, पृ.३४-३५
[320] वही, पृ.३५-३६
[321] वही, पृ.३६-३७
[322] द्वा. द. सो.,पृ.३७-३८
[323] वही, पृ.३८-३९
[324] वही, पृ. ३९
[325] वही, पृ.४१-४५
[326] वही, पृ.४५-४८
[327] वही, पृ.४८-४९
[328] वही, पृ.४९-५०
[329] वही, पृ.५१-५३
[330] वही, पृ.५३-५४
[331] वही, पृ.५४-५५

द्वादशदर्शनसोपानावलि- माध्यमिक दर्शन – इस दर्शन का ज्ञेय सर्वं शून्यं मानना है।[332] इसका ज्ञाता भी शून्य ही है।[333] अज्ञान का स्वरूप ज्ञेय, ज्ञाता तथा ज्ञान का पृथक् रूप में भान है।[334] दुःख का स्वरूप यह है कि पदार्थों को अस्तित्व भावना जन्य चित्त का विकार मानना है।[335] ज्ञान का स्वरूप सब शून्य है यह भावना है।[336] मोक्ष का स्वरूप दुःख का चरम ध्वंस है।[337] इस दर्शन में वस्तुतः प्रमाणों का अभाव ही है। परन्तु पदार्थ में प्रत्यक्ष व अनुमान ही प्रमाण हैं। इस दर्शन की अवस्था सुषुप्ति है। माध्यमिक दर्शन के सिद्धान्त इस प्रकार हैं –

यदि जाग्रतस्वप्नावस्थात्रिपुट्व्योः सत्त्वं तदा सुषुप्तावुभयत्रिपुट्या ज्ञानं कुतो न। न किञ्चिदवेदिषम् इत्यनुभवः। यतो हि सुषुप्तावुभयत्रिपुटी न भासतेऽतः सा नास्ति। किं तर्हि शून्यम्। तथा चानुभवः न किञ्चिदवेदिष् इति ज्ञानसामान्याभावात्मकः इदमेव तत्त्वम्। अस्य ज्ञानाद्दुःखनाशः।[338]

॥ आर्हत-दर्शन ॥

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** षड्दर्शनसमुच्चय में जैन-दर्शन का विस्तार से वर्णन किया गया है। राग द्वेष से रहित, महामोह का नाश करने वाले, देवेन्द्र और दानवों से संपूजित, पदार्थों के यथार्थ वक्ता, समस्त कर्मों का नाश कर मोक्ष पाने वाले जिनेन्द्र को देवता माना गया है।[339] जैन-दर्शन में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, बन्ध, निर्जरा, मोक्ष ये नव तत्त्व हैं। इनका विस्तार से कथन किया गया है। वस्तु के अनन्त धर्म माने गये हैं।[340]
- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** इसके प्रारम्भ में चार्वाक-दर्शन के विषय में बताया गया है कि कर्म से अर्जित फलों के विषय में आर्हत अर्थात् भगवान् महावीर सब कुछ जानते हैं। इन कर्मों के संस्कार से छुटकारा पाना मोक्ष है। धर्म-अधर्म के अनुरागी मनुष्यों का सम्पूर्ण शरीर परमाणुओं से सम्बद्ध है और उसकी पुद्गल संज्ञा है –

---

[332] वही, पृ.५७-६१
[333] वही, पृ.६१-६३
[334] वही, पृ.६३-६४
[335] वही, पृ.६४-६५
[336] द्वा. द. सो. ,पृ.६५-६६
[337] वही, पृ.६६-६७
[338] वही, पृ.६७
[339] ष. द. स., पृ. १६२
[340] वही, पृ. ३५०

"पुद्गलापरसंज्ञैस्तु धर्माधर्मानुरागिभिः।

परमाणुभिराबध्दाः सर्वदेहाः सहेन्द्रियैः ॥"[341]

अपने देह के अनुसार ही आत्मा होती है। मोह से देह में अभिमान होता है। कीट, पतंगा, हाथी आदि के देह के समान उनकी आत्मा होती है। वस्त्र के आवरण से शरीर ढका रहता है उसी प्रकार देह के आवरण से आत्मा ढकी रहती है। यदि शरीर अपने अनुसार आत्मा को ग्रहण नहीं करेगा तो अनवस्था दोष उत्पन्न हो जायेगा।[342]

सभी प्राणियों के प्रति मन, वचन व कर्म से अहिंसक होना चाहिए। इस नियम को दिगम्बर, योगी व ब्रह्मचारी को विशेष रूप से अपनाना चाहिए। मयूर पिच्छ तथा कमण्डल को हाथ में धारण करना चाहिए। यह मौन धारण करते हैं। मुनि लोग अन्तः करण से निर्मल, पाप कर्मों को छोडने वाले हमेशा मोक्ष के लिए साधना करते हैं।

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** पूर्वपक्ष में बौद्धों को रखा गया है तथा उनका खण्डन किया गया है। सर्वज्ञ को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि –

सर्वज्ञो जितरागादिदोषस्त्रैलोक्यपूजितः।

यथास्थितार्थवादी च देवोऽर्हन्परमेश्वरः ॥[343]

सम्यक् दर्शन, ज्ञान, चरित्र को मोक्ष का मार्ग माना है। जीव और अजीव दो तत्त्व हैं। बोधात्मक जीव है। अबोधात्मक अजीव है। पाँच अस्तिकाय पदार्थ हैं – जीव, आकाश, धर्म, अधर्म और पुद्गल। जीव, अजीव, आस्त्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष ये सात तत्त्व माने गये हैं।[344] अन्त में सप्तभङ्गीनय का प्रतिपादन किया गया है।

---

341 स. सि.सं., पृ. ८

342 वही, पृ. ८

343 स. द. सं., पृ. १०३

344 वही, पृ. १३५

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** जैन-दर्शन के मूल प्रवर्तक प्रथम तीर्थङ्कर ऋषभ देव थे। उनके पश्चात् तेईस तीर्थङ्कर और हुए हैं। भगवान् महावीर जैन धर्म के अन्तिम तीर्थङ्कर थे।[345] जैन धर्म में चित्-अचित् दो पदार्थ स्वीकार किये गये हैं। ये लोग परम तत्त्व को चित्-अचित् दोनों स्वीकार करते हैं। चित्- अचित् का विवेचन विवेक कहलाता है।[346]

जैन-दर्शन में यह स्वीकार किया जाता है कि राग-द्वेष से रहित कोई एक सृष्टिकर्त्ता है, जो ईश्वर नाम से कहा जाता है। इनके मत में योगस्वरूप, परम ज्योति रूप जीव ही सृष्टिकर्त्ता है। यह जीव अनादि है -

"जीवमन्तरेणानादिसिद्धम्।"[347]

सर्वदर्शनकौमुदी में जैन-बौद्ध को एक ही स्वीकार किया गया है।

"तच्छब्दद्वयस्यैकपर्यायशब्दवाचकत्वात्।"[348]

जैन-दर्शन में छः देवता स्वीकार किये गये हैं – १. सर्वज्ञ २. वीतराग ३. अर्हन् ४. केवली ५. तीर्थङ्कर ६. जिन। देवता पदार्थों के यथार्थवक्ता, रागद्वेष से शून्य, त्रिलोक पूजनीय, सर्वज्ञ, अर्हत्, देव ही परमेश्वर है। इन्द्र सूरि कृत ग्रन्थ आप्तनिश्चयालंकार में कहा गया है कि तीर्थङ्करों को ही मुक्ति प्राप्त होती है। मुक्त पुरुष ही ईश्वर हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई ईश्वर स्वीकार नहीं किया गया है। नित्य, अनित्य सर्वज्ञादि से युक्त परमेश्वर का अस्तित्व प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द प्रमाण से असिद्ध है। जीव ही काल विशेष में तीर्थङ्कर की स्थिति को प्राप्त करके 'ईश्वर' हो जाते हैं।[349]

यह संसार दुःखमय है। दुःख की निवृत्ति के लिए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान, सम्यक्चरित्र ये ही रत्नत्रय हैं, ये ही मोक्षमार्ग हैं। सम्यक्दर्शन अर्थात् पदार्थों का यथार्थरूप में कथन करना है। जैन-दर्शन में तत्त्वों के विषय में अनेकान्तवाद को स्वीकार किया गया है। अनेकान्तवाद का अर्थ है सामान्यरूप से एक तथा विशेष रूप से अनेक।[350]

---

345 स. द. कौ., पृ. २४१

346 वही, पृ. २४१

347 वही, पृ. २४१

348 वही, पृ. २४२

349 वही, पृ. २४३

350 स. द. कौ., पृ. २४४

विशेष रुप से मूलरूप में द्रव्य दो प्रकार का है – १. जीव २. अजीव। जीव चेतन अजीव जड़ है। अजीव के पाँच भेद हैं – धर्म, अधर्म, आकाश, काल, पुद्गल। ये अनादि, नित्य, अनन्त हैं। इस समुदाय को लोक में जगत् कहते हैं, इनका कर्त्ता कोई नहीं है। इन छः द्रव्यों का विनाश नही होता है अपितु अवस्था बदलती है। जैन-दर्शन में जो वस्तु की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश इन गुणों से युक्त होती है, उसको सत् कहते हैं। सत् स्वरूप मूलवस्तु की द्रव्य संज्ञा है।[351] जैन मत में जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, सम्वर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्त्व स्वीकार किये गए हैं।

ज्ञान शब्द से अभिप्राय यह है कि यह आत्मा का विशेष गुण व स्वभाव है। जैसे अग्नि का गुण उष्णता है उसी प्रकार आत्मा का विशेष गुण ज्ञान है। ज्ञान मिथ्या ज्ञान, सम्यक् ज्ञान रूप से दो प्रकार का होता है। मिथ्या ज्ञान से युक्त ज्ञान का अभाव ही सम्यक् ज्ञान है। मोह से युक्त मिथ्या ज्ञान है। संशयादि बुद्धि से उत्पन्न ज्ञान मिथ्या ज्ञान है।

अनेकान्तवाद की परिभाषा देते हुए कहते हैं कि वस्तु के सम्पूर्ण अंश को अथवा गुण रूप अवस्था विशेष को अथवा वस्तु के आकार को न जानते हुए, एक अंश को जानता हुआ, उसी वस्तु के सम्पूर्ण अंश को गुण रूप अवस्था विशेष को स्वीकार करना ही एकान्तवाद है।[352] इस विषय को समझाते हुए हाथी का दृष्टान्त दिया गया है। स्याद्वाद एक विचार की विधा अथवा प्रणाली है। विचारों के परिमार्जन, अनन्त धर्मात्मक, असंख्य वस्तुओं अथवा तत्त्वों के सर्वाङ्गरुप से बोधक शास्त्र को स्याद्वाद कहते हैं। यह सात प्रकार का है, इसलिए इसको सप्तभंगी-नय भी कहते हैं।[353]

- **सर्वमतसङ्ग्रह -** सर्वमतसङ्ग्रह के अनुसार सुगत मत में प्रमाता आत्मा है।[354] आत्मा प्रकाश अर्थात् ज्ञान रूप है। जो आत्मा है वही ज्ञान है। आत्मा ज्ञान से भिन्न नहीं है। ज्ञान ही आत्मा है। तत्त्वार्थसूत्र में भी आत्मा के इसी बोधरूप को उपयोग कहते हुए आत्मा लक्षित है।[355] यह आत्मा द्रव्य विशेष है।[356] द्रव्य गुण और पर्याय से युक्त होता है।[357] गुण द्रव्य का स्वरूप धर्म है, अतः नित्य है। पर्याय द्रव्य के आगन्तुक धर्म हैं, इसलिए अनित्य और परिवर्तनशील हैं। चैतन्य आत्मा

---

[351] वही, पृ. २४५

[352] वही, पृ. २४६

[353] स. द. कौ., पृ. २४७

[354] स. म. सं. , पृ. १६

[355] उपयोगो लक्षणम्। तत्त्वार्थसूत्र, २/१८

[356] स. म. सं. ,पृ. १६

[357] गुणपर्यायवद् द्रव्यम्। तत्त्वार्थसूत्र, ५/३७

का गुण है और संकल्प, इच्छा आदि पर्याय। इन गुण और पर्यायों से युक्त आत्मा को द्रव्य कहा गया है।

आत्मा का परिमाण देहाकार अथवा अणु है।[358] आत्मा में देह के आकार के अनुसार संकुचन और प्रसारण होता है।[359] यह चींटी के शरीर में प्रविष्ट होकर चींटी के आकार को धारण कर लेती है और वही आत्मा हाथी के शरीर में हाथी के आकार को ग्रहण कर लेती है। यहाँ ध्यातव्य है कि सर्वमतसङ्ग्रहकार ने जैन मत को प्रस्तुत करते हुए आत्मा को देह परिणामी अथवा अणुपरिणामी उल्लेख किया है, किन्तु प्रायशः जैन दार्शनिकों ने आत्मा का देह परिमाण ही माना है। अतः ग्रन्थकार ने आत्मा के अणुपरिमाण से संभवतः किसी जैन एकदेशी की ओर संकेत किया है।

सर्वमतसङ्ग्रहकार जैनसम्मत आत्मा के अणुपरिमाण और देहपरिमाण दोनों को ही युक्तियुक्त नहीं मानते हैं, क्योंकि यदि आत्मा अणुपरिणामी है, तो सकल अवयवों में युगपद वेदना का अनुसंधान असंभव होगा, और यदि आत्मा देहपरिणामी मानी जाये, तो बाह्य वस्तु का ज्ञान संभव न हो सकेगा। इसके साथ ही देहपरिणामी आत्मा में घटवत् अनित्यत्व की प्रसक्ति होगी[360] अतः आत्मा का अणुपरिमाण और देहपरिमाण दोनों ही युक्तिसंगत नहीं हैं।

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** जो कार्यरूप में उन-उन इन्द्रियों के विषय चार महाभूत प्रत्यक्ष दिखायी देते हैं उनको पुद्गल कहते हैं। उनसे भोग के अदृष्ट से विभिन्न कार्य उत्पन्न होते हैं। बाह्य पृथिव्यादि भूत अन्दर मन आदि सभी पुद्गलों से उत्पन्न होते हैं। इस संसार में जीव विभिन्न प्रकार के कर्मों को करने से उत्पन्न हुए संस्कार का संचय करता है। उनका एक समय में भोग करना असंम्भव है तथा वे अनुकूल समय की प्रतीक्षा करते हुए शान्त होकर जीव की आत्मा में रहते हैं। उनको ही हम संचित कर्म कहते हैं। जिन कर्मों के फल का हम भोग करते हैं उसे प्रारब्ध कर्म कहते हैं। जो कर्म किया जा रहा है, उसका फल बाद में प्राप्त होता है, उसे क्रियमाण कहते हैं। ये तीनों प्रकार के कर्म विभिन्न जीवों के कारण होते हैं।[361] ये कर्म ही व्यक्ति के सुख, दुःख का कारण बनते हैं।

क्षणिकवाद से अनेकान्तवाद श्रेष्ठ है। अग्नि के द्वारा जल जब जलाया जाता है, तब जल द्रवीभूत होकर वाष्प बन जाता है। जल जब द्रवीभूत से वाष्प बनता है उसका कारण जल है। कार्य

---

358 स. म. सं. ,पृ. १६

359 प्रदेशसंहारविसर्गाभ्यां प्रदीपवत्। तत्त्वार्थसूत्र ५/१६

360 स. म. सं.,पृ. १८

361 वही, पृ. ७०

रूप में अनित्य है, जल रूप में नित्य है। इस प्रकार भेदाभेद से भी अनेकान्तवाद श्रेयस्कर है।[362] जीव अदृष्ट से उत्पन्न सुख-दुःख का भोक्ता, चेतन व ज्ञान का आश्रयीभूत, सत्-असत् कर्मों का कर्त्ता है। पुनः-पुनः जन्म-मृत्यु आदि अवस्था विशेषों से युक्त, अहं प्रत्यय गोचर, ज्ञाता पद से स्वीकार किया जाता है।[363] जैन-दर्शन के मान्य सिद्धान्त निम्नानुसार हैं –

'जाग्रतस्वप्नसुषुप्तिरूपावस्थात्रयस्य ज्ञाता सुखदुःखभाक् नानाविधशरीरपरिमाणो परिणामी आत्माऽहंपदवाच्यो ज्ञाता। अस्य यथार्थज्ञानाद्दुःखनाशः।'

जैन धर्म में पाप से निर्वृत्ति के लिए अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इनका पालन करने से दुःख का नाश हो जाता है। ये पञ्चमहाव्रत जैन धर्म के मूल हैं। ये जीवों के सम्पूर्ण पापों को नाश कर शुभ कर्म उत्पन्न करते हैं।[364] जैन-दर्शन में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द तीन प्रमाण स्वीकार किये गए हैं।[365]

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** जैन मत में २४ तीर्थङ्कर हैं। तीर्थङ्करों का द्वितीय नाम जिन है। जिन शब्द का अर्थ है - विजेता। तीर्थङ्कर राग-द्वेष को जीतकर निर्वाणात्मक मोक्ष को प्राप्त करते हैं इसलिए इन्हें जिन कहा जाता है।[366] जैन मत में प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द प्रमाण को स्वीकार किया गया है। इन प्रमाणों से यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति होती है। अनुमान प्रमाण जब तक वैज्ञानिक नियमों के अनुसार होता है, तब तक यथार्थ ज्ञान उत्पन्न होता है। विश्वास योग्य पुरुषों के वाक्य शब्द प्रमाण हैं। विश्वास योग्य वाक्य तीर्थङ्करों के उपदेशों से प्राप्त होते हैं। जैन-दर्शन में भूत चतुष्टय से भौतिक द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। भूत चतुष्टय से अतिरिक्त आकाश, काल, धर्म, अधर्म का ज्ञान अनुमान से होता है।[367] जैनों के अनुसार भैतिक द्रव्यों की स्थिति के लिए आकाश को स्वीकार किया गया है। द्रव्यों में अवस्था परिवर्तन काल द्वारा होता है। गति स्थिति के लिए धर्म-अधर्म कारण होते हैं।[368]

---

[362] वही, पृ. ७२

[363] वही, पृ. ७३

[364] स. म. सं., पृ. ७३

[365] वही, पृ. ६९

[366] द्वा. द. स., पृ. ११५

[367] वही, पृ. ११४

[368] वही, पृ. ११५

जैन मत में भौतिक द्रव्यों की पुद्गल संज्ञा है। पाँच पदार्थों के अतिरिक्त एक चेतनात्मक वस्तु को जीव स्वीकार किया गया है। जैन-दर्शन में पशु, पक्षी, मनुष्यादि में सभी स्थावर, जङ्गम में जीव रहता है। सभी में चेतना समान नहीं होती है। वनस्पति में जीव एकेन्द्रिय है। इसमें मात्र स्पर्शेन्द्रिय होती है। निम्न श्रेणी के जीवों में दो इन्द्रिय होती है। इसी प्रकार तीन, चार, पाँच इन्द्रिय वाले जीव भी होते हैं। प्रत्येक जीव में स्वाभाविक रूप से दर्शन, ज्ञान, वीर्य, सुख, आदि अनन्त होते हैं। अनन्तगुण वाले वर्तमान जीव के स्वरूप को पुद्गल के द्वारा आच्छादित होते हैं। पुद्गल के द्वारा ही जीव बन्धन में पड़ता है। कर्म के नाश से बन्धनों का नाश हो जाता है। बन्धनों के नाश को ही मुक्ति कहते हैं।[369]

- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप -** जैन-दर्शन को बौद्ध-दर्शन से प्राचीन कहा गया है। इस शास्त्र में अर्हत से भिन्न ब्रह्म रूप ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है। इस शास्त्र में अहिंसा को परम धर्म माना गया है। मुक्ति को श्रद्धा, ज्ञान तथा चरित्र से प्राप्य माना गया है।[370] योगियों के द्वारा चरित्र की शीघ्र प्राप्ति के लिये अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह आवश्यक माने गए हैं। इस शास्त्र में सप्तभङ्गीनय तथा स्याद्वाद को माना गया है।
- **लघुवृत्ति –** जैन-दर्शन में देवता के रूप में जिन को स्वीकार किया गया है। जिसके राग द्वेष तथा कर्म क्षय हो गये हैं उसको जिन कहते हैं। विवृत्तिकार के मत में नौ तत्त्व स्वीकार किये गए हैं। अन्त में प्रमाण तथा स्याद्वाद की चर्चा प्राप्त होती है।[371]
- **षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि –** यह षड्दर्शनसमुच्चय की टीका है। इसमें षड्दर्शनसमुच्चय के सिद्धान्तों का ही वर्णन किया गया है।
- **लघुषड्दर्शनसमुच्चय –** लघुषड्दर्शनसमुच्चय के अनुसार नौ तत्त्व जैन-दर्शन में स्वीकार किये गए हैं। अर्हत को देवता माना गया है। दो प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्ष माने गए हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र ये मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय, नित्य ज्ञान की प्राप्ति मोक्ष है।[372]

---

369 द्वा. द. स., पृ. ११५

370 प्र. भि. प्र. ,पृ. ११९

371 लघुवृत्ति, पृ, २८०

372 लघुषड्दर्शनसमुच्चय, पृ. ३०१

- **राजशेखरसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय -** इसमें लिङ्ग, वेष, आचार के विषय में बतलाया गया है। जैन धर्म के दिगम्बर, श्वेताम्बर दोनों का वर्णन है। इसमें यह माना गया है कि स्त्रियों की मुक्ति नहीं होती है अर्थात् उनको मोक्ष का अधिकारी नहीं माना गया है।[373]
- **षड्दर्शननिर्णय –** षड्दर्शननिर्णय में यह प्रश्न उठाया गया है कि 'सम्यक्दर्शनज्ञानचरित्राणि मोक्षमार्गः' यह सत्य है अथवा असत्य ? ये सब मिलकर मोक्ष मार्ग की सिद्धि करते हैं अथवा एक दो से मिलकर मोक्ष मिल सकता है - **प्राहुर्नो विर्वृर्तिं स्त्रियाः।** [374] इसमें पुराण, स्मृति, महाभारत आदि को प्रमाण के रूप में उद्धृत किया गया है।
- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन दर्शन के अन्तर्गत प्रमाण, प्रमेय का स्वरूप बतलाया गया है। प्रमेय जीव, अजीव, आश्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा तथा मोक्ष हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम ये तीन प्रमाण हैं - **अथ प्रमाणं प्रत्यक्षमनुमानमागमश्चेति।**[375]
- **षड्दर्शनपरिक्रम –** प्रस्तुत ग्रन्थ में जैन दर्शन के अन्तर्गत सम्यक् रूप से यथार्थ तत्त्वों के उपदेशक जिन देव गुरु बताये गये हैं। सात अथवा नौ तत्त्व हैं। प्रत्यक्ष और परोक्ष दो प्रमाण स्वीकार किये गये हैं।[376]

॥ न्यायदर्शन ॥

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** प्रस्तुत ग्रन्थ में न्याय-दर्शन के अन्तर्गत जगत् की सृष्टि तथा संहार करने वाला, व्यापक, नित्य, एक, सर्वज्ञ तथा नित्य ज्ञानशाली शिव को देवता स्वीकार किया गया है।[377] इसमें प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ माने गये हैं।[378] इनके भेदोपभेदों का संक्षेप में वर्णन किया गया है।
- **शास्त्रवार्तासमुच्चय –** प्रस्तुत ग्रन्थ में न्याय-दर्शन के अन्तर्गत हरिभद्रसूरि के अनुसार ईश्वरवाद का समर्थन सबसे अधिक और तार्किकता के साथ करने वाला सम्प्रदाय न्याय है। हरिभद्र प्रमाण के विषय में कोई चर्चा नही करते हैं। उन्होंने एक प्रश्न उठाया है कि व्यक्ति

---

373 ष.द.समु., पृ. ३०५

374 षडर्शननिर्णय, पृ. ३२५

375 स. सि. प्र., पृ. ३२८

376 ष. द. प., पृ. ३९१

377 वही, पृ. ७८

378 वही, पृ. ८२

कर्म करने में स्वतन्त्र है या परतन्त्र। यदि स्वतन्त्र है तो ईश्वर को इन कर्मों का प्रेरक क्यों माना जाए और यदि स्वतन्त्र नहीं है तो इन अच्छे बुरें कर्मों का फल पाने वाला क्यों माना जाए ?[379]

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** पाखण्डी दुर्जनों से तर्क के वेद अर्थात् न्याय की रक्षा की गई है। अक्षपाद के मत में प्रमाणादि षोडश पदार्थों के ज्ञान से जीवों की मुक्ति होती है। प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ हैं। महेश्वर के ज्ञान, इच्छा, क्रिया ये तीन गुण बताये हैं। न्याय-वैशेषिक को समान शास्त्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है –

यथा वैशेषिकेणेशः पारिशेष्येण साधितः।

तत्तर्कोऽत्रानुसन्धेयः समानं शास्त्रमावयोः ॥[380]

इस ग्रन्थ में वैशेषिकों की मुक्ति की आलोचना की गई है, कहा गया है कि वृन्दावन में श्रृगाल का जीवन श्रेष्ठ है, वैशेषिकों की मुक्ति नहीं –

वरं वृन्दावने रम्ये श्रृगालत्वं वृणोम्यहम्।

वैशेषिकोत्तमोक्षान्तु सुखक्लेश विवर्जितात् ॥[381]

अन्त में न्याय प्रकरण के अन्तर्गत ही योग के अष्टाङ्ग मार्ग का वर्णन है। यह चिन्तनीय है।

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** प्रस्तुत ग्रन्थ में न्याय-दर्शन के अन्तर्गत न्याय-दर्शन के प्रणेता अक्षपाद बताए गये हैं, इसलिए सर्वदर्शनसङ्ग्रह में इसे अक्षपाद

दर्शन कहा गया है। अक्षपाद ने प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ बताये हैं। सर्वप्रथम यहाँ प्रमाण का लक्षण कहा गया है – **'साधनाश्रयाव्यतिरिक्तत्वे सति प्रमाव्यासं प्रमाणम्'।**[382] प्रस्तुत ग्रन्थ में न्याय-दर्शन के अन्तर्गत चार प्रमाण माने गये हैं- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द। द्वादश प्रमेय हैं – आत्मा, शरीर, इन्द्रिय, अर्थ, बुद्धि, मन, प्रवृत्ति, दोष, प्रेत्यभाव,

---

379 शा. वा. स., पृ. १९

380 स. सि. प्र., पृ. २४

381 वही, पृ. २८

382 स. द. सं., पृ. ३८९

फल, दुःख, अपवर्ग। माधवाचार्य ने अपवर्ग की परिभाषा न्याय सूत्रानुसार दी है। उन्होंने कहा है कि दुःख, जन्म, प्रवृत्ति, दोष और मिथ्याज्ञान, इन सब में उत्तरोत्तर कारण का क्रमशः विनाश होने पर उस कारण के पूर्व अव्यवहित रूप से विद्यमान कार्य का विनाश होता है और अन्त में अपवर्ग की प्राप्ति होती है।[383] मोक्ष के विषय में माध्यमिक, विज्ञानवादी, जैन, चार्वाक, साङ्ख्य, मीमांसा आदि मतों की समीक्षा की गयी है। अन्त में ईश्वर की सिद्धि की गयी है।

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** सर्वदर्शनकौमुदीकार ने वेद, उपनिषद्, पुराण आदि में वर्णित गौतम मुनि का इतिहास प्रस्तुत किया है। इसके कर्त्ता वेद व्यास के गुरु गौतम मुनि स्वीकार किए गए हैं। गौतम मुनि का द्वितीय नाम अक्षपाद भी है। एक किंवदन्ती है कि एक बार वेद व्यास ने न्यायदर्शन की निन्दा कर दी। गौतम मुनि ने प्रतिज्ञा की कि अब मै इसका मुख नहीं देखूँगा। व्यास के बहुत प्रयत्न के बाद भी इन्होंने मुख नहीं देखा तब से इनकी संज्ञा 'अक्षपाद' हो गई है।[384]

  न्यायदर्शन 'आरम्भवाद' के सिद्धान्त को मानता है। पृथिवी, जल, वायु, तेज के परमाणु में क्रिया उत्पन्न करने वाला ईश्वर कर्त्ता है। उसके बाद द्वयणुक, त्र्यणुकादि का निर्माण होता है फिर इन्हीं से महदादि की उत्पत्ति होती है। यही तथ्य यहाँ कहा गया है कि –

  पृथिव्यप्वह्निवायूनां क्रियासंयोगजिताणवः।

  द्व्यणुकादिक्रमेणैवमारभन्ते इदं मह दित्युक्तेः ॥[385]

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** सीताराम हेब्बार ने अपने ग्रन्थ का प्रारम्भ ही न्याय से किया है। इसमें षोडश पदार्थों का वर्णन विस्तार से दिया गया है। न्याय मतानुसार षोडश पदार्थों के ज्ञान से मुक्ति होती है। दुःखों की अत्यन्त निवृत्ति को मोक्ष कहते हैं।[386]

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** यहाँ न्यायदर्शन को नित्यात्मवादी दर्शन कहा गया है।

  इस दर्शन का ज्ञेय षोडश पदार्थ हैं। **"न्यायदर्शने ज्ञेयत्वेन व्यपदिष्टाः षोडशपदार्था इमे प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डाहेत्वाभासच्छलजा**

---

383 वही, पृ. ४१९

384 स. द. कौ.,पृ. ८९

385 स. द. कौ., पृ. १०६

386 द्वा. द. सो., पृ. १८

तिनिग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निश्रेयसाधिगमः।"[387] षोडश पदार्थों के ज्ञान से समस्त दुःखों का नाश हो जाता है, तथा मुक्ति प्राप्त होती है।

ज्ञान सुख आदि गुणवान् नित्य, ज्ञाता है। अनित्य देह आदि में आत्मत्व बुद्धि का होना अज्ञान का स्वरूप है। इस प्रकार की बुद्धि के कारण उत्पन्न आत्मगुणविशेष, दुःख का स्वरूप है। आत्मा में नित्यत्व भावना ज्ञान का स्वरूप है। आत्मा में ही दुःख का चरम नाश, मोक्ष का स्वरूप है। इनकी सिद्धि के लिए न्याय-दर्शन चार प्रमाणों को मानता है।[388] न्याय में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द प्रमाण माने गए हैं। इसमें न्याय सूत्रों को उद्धृत कर उनके सूत्रों की व्याख्या प्रस्तुत की गई है। ईश्वर ने सृष्टि की रचना क्यों की है तथा क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि ईश्वर हमेशा जगत् की रचना करता ही है तथा उसका कोई प्रयोजन नहीं है। उदाहरण देते हुए कहते हैं कि यथा बादल विना प्रयोजन के वर्षा करता है, सज्जन सामान्य विशेष दोनों मनुष्यों को उपदेश देते हैं, उसी प्रकार ईश्वर जगत् की सृष्टि करता है।[389] न्यायदर्शन का सिद्धान्त है कि – **"यदा जन्ममरणभेदेनाहं भिन्नः, यदा चावस्थाभेदेन सुखदुःखभोगी अहं भिन्नस्तदा कुतो मे स्मरणं। नान्यदृष्टमन्यः स्मरति। तस्मादहं इच्छाद्वेषसुखदुःखादिगुणवानखण्डः सन्नेवात्मा। एतत्स्वरूप ज्ञानात् दुःखनाशः।"**[390]

- **लघुवृत्ति –** इसके कर्ता सोमतिलक ने न्याय सम्मत षोडश पदार्थों का भेदोपभेद सहित वर्णन किया है। वस्तुतः ये षड्दर्शनसमुच्चय की टीका है।
- **अवचूर्णि–** इसके कर्त्ता ब्रह्मशान्तिदास है। यह टीका षड्दर्शनसमुच्चय के प्रत्येक श्लोक के प्रत्येक पद की व्याख्या करती है। षड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित सिद्धान्त ही यहाँ वर्णित हैं।
- **लघुषड्दर्शनसमुच्चय –** न्याय का आदिकर्त्ता पाशुपत जटाधरविशेष शिव को माना गया है। दुःखों का उच्छेद ही मोक्ष है – **'दुःखस्यात्यन्तोच्छेदश्च मोक्षः'**[391]
- **षड्दर्शनसमुच्चय –** राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय में न्याय-दर्शन को शैव मत कहा गया है क्योंकि कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में महेश्वर को न्यायमत का देवता स्वीकार किया गया है **- तेषां च**

---

387 वही, पृ. ८७

388 वही, पृ. ९२

389 द्वा. द. सो.,पृ. ९५

390 वही, दर्शनसोपानक्रमप्रदर्शकपत्रम्, पृ. २०४

391 लघुषड्दर्शनसमुच्चय, पृ. ३०१

शङ्करो देवः।[392] न्याय मतानुयायी जटा रखते हैं, भस्म का लेपन करते हैं, वन में वास करते हैं। कन्दमूलों से अतिथि सत्कार करने में निपुण होते हैं। ये 'ओम् नमः शिवाय' का जाप करते हैं। शिव के अठारह अवतार माने गये हैं उनकी ये लोग पूजा करते हैं। इसमें चार प्रमाण, सोलह पदार्थ स्वीकार किये गये हैं। **"प्रमाणानि च चत्वारि, तत्त्वानि षोडशामुत्र"।**[393]

- **षड्दर्शननिर्णय –** इसमें भगवान् शिव को ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूप में प्रदर्शित किया गया है। ब्रह्मबिन्दु उपनिषद् का १२ वाँ मन्त्र उद्धृत किया है–

एक एव हि भूतात्मा देहे देहे व्यवस्थितः।

एकधा बहुधा चैव दृश्यते जलचन्द्रवत् ॥[394]

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** इस ग्रन्थ में न्याय के षोडश पदार्थों का ही विवेचन प्राप्त होता है।
- **षड्दर्शनपरिक्रम –** शिव के दर्शन में दो तर्क हैं – १. न्याय २. वैशेषिक। न्याय में षोडश पदार्थ हैं और वैशेषिक में छः पदार्थ हैं। दोनों में सृष्टि का संहार करने वाले शिव ही देव हैं।[395]
- **सर्वमतसङ्ग्रह -** न्यायवैशेषिक-दर्शन में प्रमाता आत्मा है।[396] आत्मा में चौदह गुण हैं – बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग। इनमें से प्रारम्भिक नौ आत्मा के विशेष गुण हैं, जो आत्मा में ही पाये जाते हैं। शेष पाँच सामान्य गुण हैं, क्योंकि वे आत्मा के अतिरिक्त अन्य द्रव्यों भी होते हैं। आत्मा देहेन्द्रियादि से भिन्न, अहम् प्रत्यय से ग्राह्य, जड़ स्वभाव, नित्य, विभु और अनेक हैं।[397] आत्मा के शरीर, इन्द्रिय आदि से भिन्नता हेतु मानस-प्रत्यक्ष प्रमाण है।[398] आत्मा स्वरूपतः जड़ या अचेतन है।[399] मनस् और शरीर के संयोग होने पर ही उसमें चैतन्य का गुण आता है। आत्मा वह द्रव्य है, जो स्वरूपतः चेतन न होने पर भी चैतन्य को धारण करने की योग्यता रखता है। यह

---

[392] ष.द.समु., पृ. ३१०

[393] वही, पृ. ३१०

[394] ष. द. नि., पृ. ३२३

[395] ष. द. प., पृ. ३९४

[396] वही, पृ. २२

[397] वही, पृ. २२-२३

[398] स च मानसप्रत्यक्षः। तर्कभाषा, पृ. १७९

[399] स. म. सं. ,पृ. २३

सुषुप्ति और मोक्ष की अवस्थाओं में चैतन्य गुण से शून्य रहता है। यही उसकी शुद्ध और स्वाभाविक अवस्था है। जाग्रत अवस्था में मनस्, इन्द्रियों और उसके विषयों के कारण चैतन्य आ जाता है। अतः चैतन्य या ज्ञान आत्मा का स्वरूप नही अपितु आगन्तुक गुण है।[400] आत्मा का न तो अणुपरिमाण है और न ही मध्यम परिमाण, अपितु वह विभु है।[401] यह विभु होने से आकाश के समान नित्य है।[402]

आत्मा परमेश्वर के परतन्त्र है। परमेश्वर स्वतन्त्र है। नित्य इच्छा, ज्ञान, क्रियाशक्ति से युक्त है। जगत् रूपी कार्य के कर्त्तारूप में उसका अनुमान किया जाता है। वह जगत् का निमित्त कारण है।[403]

सर्वमतसङ्ग्रहकार ने आत्मा के जड़स्वरूप का खण्डन किया है। न्यायवैशेषिक में आत्मा जड़ स्वभाव है। किन्तु यदि वह जड़ है तो ज्ञाता नहीं हो सकता क्योंकि कोई चेतन ही ज्ञाता हो सकता है। आत्मा में बुद्धि, सुख, दुःख, आदि गुण माने गए हैं। गुणों का आश्रय होने पर उसमें विकारित्व की आपत्ति होती है।[404]

॥ साङ्ख्य-दर्शन ॥

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** साङ्ख्य दो प्रकार के हैं - निरीश्वर साङ्ख्य और दूसरा सेश्वर साङ्ख्य। ये दोनों ही पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार करते हैं।[405] गुणों की साम्यावस्था ही प्रकृति है। इसे प्रधान तथा अव्यक्त कहते हैं। प्रकृति नित्य है। प्रधान से भिन्न पुरुष है। यह अकर्ता, निर्गुण, भोक्ता, चेतन है। प्रकृति के वियोग का नाम मोक्ष है। मोक्ष प्रकृति तथा पुरूष के तत्त्वज्ञान से होता है। साङ्ख्य में प्रत्यक्ष, अनुमान, व आगम ये तीन प्रमाण स्वीकार किये गये हैं।[406]
- **शास्त्रवार्तासमुच्चय –** प्राचीन भारत के दार्शनिक सम्प्रदायों में साङ्ख्य शास्त्र अत्यन्त प्राचीन माना गया है। शास्त्रवार्तासमुच्चय में साङ्ख्य मत की दो मूल मान्यताओं पर प्रश्न उठाया गया है – प्रथम यह कि आत्मा जिसका पारिभाषिक नाम पुरुष है। यह सर्वथा परिवर्तन रहित है। इस विषय में हरिभद्रसूरि यह आपत्ति उठाते हैं कि यदि आत्मा एक, अपरिवर्तनशील पदार्थ है तो यह कहना

---

400 स. म. सं. ,पृ. २३

401 वही, पृ. २३

402 वही, पृ. २४

403 वही, पृ. २४

404 टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित सर्वमतसंग्रह का समीक्षात्मक अध्ययन, पृ. ६०

405 ष. द. स., पृ. १४२

406 वही, पृ. १५२

असंगत है कि कोई आत्मा अपने कर्म के कारण बँध जाती है, अपने कर्मानुसार मुक्त हो जाती है।[407]

दूसरी मान्यता यह है कि प्रकृति एक, भौतिक, नित्य, परिवर्तनशील है। इसके विरोध में कहते हैं कि यदि प्रकृति नित्य पदार्थ है तो उसे रुपान्तरण शील नहीं माना जा सकता है।[408] द्वितीय प्रश्न के उत्तर के रूप में यह कहा जा सकता है कि साङ्ख्य-दर्शन की प्रकृति नित्य होते हुए भी परिवर्तनशील स्वीकार की जाती है जैसे जैन–दर्शन के अनुसार विश्व की सभी जड़-चेतन वस्तुयें नित्य होते हुए भी परिवर्तनशील हैं।

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** साङ्ख्य-दर्शन को सेश्वर साङ्ख्य और निरीश्वर साङ्ख्य रूप से विभाजित किया गया है। निरीश्वर साङ्ख्य के प्रवर्तक कपिल और सेश्वर के पतञ्जलि हैं। कपिल मुनि ज्ञान से मुक्ति स्वीकार करते हैं।[409] श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराण, महाभारत, शैवागमों में साङ्ख्य सिद्धान्तों का वर्णन प्राप्त होता है। व्यक्त अव्यक्त के ज्ञान से ही मुक्ति संभव है। त्रिविध आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक दुःखों का वर्णन प्राप्त होता है। पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार किया गया है। सत्त्व, रजस्, तमस् तीन गुण माने गये हैं। सत्त्व से सुख, शान्ति की प्राप्ति होती है। रजोगुण से अभिमान, दम्भ, मिथ्यावाद की ओर प्रवृत्ति होती है। तमोगुण से निद्रा, आलस्य, मोह आदि की ओर प्रवृत्ति होती है।[410] इसमें प्रमाणों की चर्चा प्राप्त नहीं होती है।

  - **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** पाणिनि-दर्शन के विवर्तवाद का खण्डन करके साङ्ख्य दार्शनिकों ने परिणामवाद को माना है। माधवाचार्य ने साङ्ख्य के पदार्थों का विभाजन चार प्रकार से किया है १. प्रकृति २. प्रकृति और विकृति ३. विकृति ४. प्रकृति विकृति दोनों से रहित।[411] प्रकृति को प्रधान भी कहते हैं। प्रकृष्ट रूप से जो कार्य करे वह प्रकृति है। महत्, अहंकार और पाँच तन्मात्राएं, ये प्रकृति विकृति दोनों हैं। इसमें साङ्ख्यकारिका को भी उद्धृत किया गया है। षोडश विकार हैं। पुरुष प्रकृति-विकृति से रहित है।[412] अन्त में सत्कार्यवाद, प्रकृति, प्रकृति पुरूष सम्बन्ध पर विचार किया गया है।

---

407 शा. वा. स., पृ. १९

408 वही, पृ. १९

409 ज्ञानेन मुक्तिं कपिलः। - स. सि. सं., पृ. ३६

410 वही, पृ. ३७

411 स. द. सं., पृ. ५२७

412 वही, पृ. ५३५

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** सर्वदर्शनकौमुदी में साङ्ख्य शास्त्र के आचार्य कपिल मुनि का परिचय दिया गया है। इनके पिता का नाम 'कर्द्दम' माता का नाम 'देवहूति' था।[413] यह भगवान् के पाचवें अवतार थे। इनके विषय में कहा जाता है कि स्वयं ब्रह्मा ने आकर इनके पिता से कहा था कि यह पुत्र ईश्वर का अवतार है तथा सृष्टि में साङ्ख्य मत का प्रचार करने के लिए भेजा है। साङ्ख्य शास्त्र का प्रमुख उद्देश्य दुःखों से निवृत्ति है। इसमें मूलप्रकृति, महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा, पञ्च महाभूत, एकादश इन्द्रिय, पुरूष ये पच्चीस तत्त्व स्वीकार किये गए हैं। तीन प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक दुःख स्वीकार किये जाते हैं। आध्यात्मिक दुःख दो प्रकार का है – शरीर और मानस। इनमें वात, पित्त, श्लेष्मादि दुःख शारीरिक आध्यात्मिक दुःख है, इनकी दुःख की उत्पत्ति का आधार शरीर है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, भय, शोकादि मानसिक आध्यात्मिक दुःख है। इनकी उत्पत्ति का आधार मन है।[414] अतिवृष्टि, अनावृष्टि, भूकम्प, वात आदि आधिदैविक दुःख है। इनकी उत्पत्ति का आधार देवयोनि है। मनुष्य, पशु, पक्षी, सरीसृप, कीट, पतंग आदि से होने वाला दुःख आधिभौतिक दुःख है। दुःख की उत्पत्ति का आधार यहाँ भौतिक पदार्थ है।[415]

  साङ्ख्य शास्त्र में प्रकृति आदि २५ तत्त्वों के ज्ञान से मुक्ति होती है। ज्ञान ही मुक्ति का मूल है। प्रकृति, पुरुष का भेद ज्ञान ही तत्त्वज्ञान है। पुरुष के अतिरिक्त सम्पूर्ण पदार्थ प्रकृति कहलाते हैं। सत्त्व, रजस्, तमस् गुण की साम्यावस्था ही प्रकृति है। यह नित्य, अव्यय, अनादि है।[416]

  शरीर, इन्द्रिय, मन से पृथक् सुख, दुःख से रहित, इन्द्रिय अगोचर पुरुष है। यह नित्य, अनादि, अव्यय है। यह गुण त्रय शून्य, निर्लिप्त, कूटस्थ चैतन्य स्वरूप पुरुष है। प्रकृति, पुरुष का संयोग ही सृष्टि का मूल कारण होने से प्रकृति ही सृष्टि का मूल कारण है। आविर्भाव और तिरोभाव से ही वस्तुओं की सत्ता प्रमाणित होती है, जैसे घट-पट आदि का मूल कारण प्रकृति है।[417]

  साङ्ख्य-दर्शन में तीन प्रमाण स्वीकार किये गए हैं – १. प्रत्यक्ष २. अनुमान ३. शब्द। इन्द्रिय का अर्थ के साथ सन्निकर्ष होने से जो अध्यवसायात्मक ज्ञान होता है वही प्रत्यक्ष है। व्याप्यव्यापक भाव से उत्पन्न होने पर पक्ष-सपक्ष में विद्यमान होने से बुद्धि की वृत्ति को अनुमान

---

413 वही, पृ. ३८

414 स. द. कौ., पृ. १११

415 स. द. कौ., पृ. ११२

416 वही, पृ. ११४

417 वही, पृ. ११६

कहते हैं। आप्त व्यक्ति के वाक् से उत्पन्न वाक्यार्थ का ज्ञान ही शब्द प्रमाण है। यहाँ आप्त व्यक्ति की परिभाषा निम्नलिखित है –

स्वकर्मण्यभियुक्तो यः सङ्गद्वेषविवर्जितः।

पूजितस्तद्विधैर्नित्यमाप्तो ज्ञेयः स तादृशः ॥[418]

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** नवम सोपान में अखण्डप्रकाशात्मवादी साङ्ख्य-दर्शन का वर्णन है। साङ्ख्य-दर्शन के अनुसार सविकारा प्रकृति ज्ञेय है, अखण्ड व चिद्रूप ज्ञाता है, ज्ञानावरक भावविशेष अज्ञान का स्वरूप है और प्रतिकूल भावना विषय, दुःख का स्वरूप है। प्रकृति तथा पुरुष के मध्य भेद प्रदर्शित करने वाला स्वरूप प्रकाश ज्ञान का स्वरूप है। पुरुष के स्वरूप का ज्ञान होने पर दुःख का नाश, दुःखध्वंस अथवा मोक्ष का स्वरूप है।[419]

  कपिल मुनि के मत में प्रधान प्रकृति से समस्त जगत् उत्पन्न होता है। पुरुष सत् चित्, अकर्त्ता है, उसी को ईश्वर कहा गया है। प्रकृति और पुरुष के विवेक-ज्ञान से मुक्ति होती है। यहाँ तीन प्रमाण स्वीकार किये गये हैं। साङ्ख्य शास्त्र में सविकार प्रकृति ज्ञेय है, अखण्ड चिद् रूप ज्ञाता है।[420]

यहाँ वर्णित साङ्ख्य सिद्धान्त अधोलिखित है – **यच्च ज्ञानमात्मनि धर्मत्वेन भासते तद्वृत्तिपदेन कथ्यते। तच्च विषयेन्द्रियसंयोगजन्यं। तत्र ज्ञानपदस्य गौणः प्रयोगः। मुख्यस्तु ज्ञातुः स्वरूपे। तच्च नित्यं सर्वस्य पदार्थजातस्य भासकमपि विशेषतस्तु सुषुप्त्यवभासकं। तत्साक्षात्कारात् दुःखनाशः।**

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** प्रस्तुत ग्रन्थ में बताया गया है कि साङ्ख्यशास्त्र के प्रवर्तक कपिल हैं। साङ्ख्यशास्त्र में २५ तत्त्व स्वीकार किये गये हैं। प्रकृति को मूलप्रकृति अथवा प्रधान कहते हैं। प्रकृति को ही सम्पूर्ण प्रपञ्चों का मूलकारण स्वीकार किया गया है। द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में प्रकृति की दो परिभाषाएं दी गई हैं – **'प्रकर्षेण करोति-कार्यमुत्पादयति इति प्रकृति' 'या स्वभिन्नतत्त्वान्तराणामुत्पत्तिं करोति सा प्रकृतिरिति'।**[421] प्रकृति में प्र शब्द प्रकर्ष का द्योतक है। प्रकर्ष वाचक होने से प्रकृति सृष्टि का उपादान कारण है।

  पच्चीसवें तत्त्व के रूप में पुरूष को स्वीकार किया गया है। पुरुष जीवात्मा कहलाता है। यह प्रत्येक शरीर में भिन्न-भिन्न है। यदि जीव को भिन्न नहीं स्वीकार किया जाता है तो यदि एक बद्ध, मुक्त, सुखी-दुःखी है तो सभी बद्ध, मुक्त, सुख-दुःख का अनुभव करेगें, जबकि संसार में इस प्रकार का

---

418 वही, पृ. ११९

419 द्वा. द. सो., पृ. १२७

420 वही, पृ. १२९

421 वही, पृ. ३२

दिखाई नहीं देता है। अतः साङ्ख्यसूत्र में पुरूष बहुत्व को स्वीकार किया गया है – **'जन्मादिव्यवस्थातः पुरुष बहुत्वम्'**।[422]

यहाँ जीवात्मा अनादि, सूक्ष्म, चेतन, सर्वगत, निर्गुण, कूटस्थ नित्य, द्रष्टा, भोक्ता, क्षेत्रवित् इत्यादि प्रकार से कहा जाता है। साङ्ख्य-दर्शन में बुद्धि को महत् कहा गया है। यह धर्म, वैराग्य, ऐश्वर्य आदि उत्कृष्ट गुणों का आश्रयभूत तत्त्व स्वीकार किया गया है। इसमें तीनों गुण सत्त्व, रजस्, तमस् रहते हैं, किन्तु सत्त्व गुण प्रधान होने पर रजस्तमोगुण छिप जाते हैं।[423] महतत्त्व के परिणाम बुद्धि, मन, अहंकार आदि हैं। इन तीनों को अन्तःकरण कहते हैं। अन्तःकरण जब निश्चयात्मक वृत्ति वाला होता है तो बुद्धि कहलाता है। अभिमानात्मक वृत्ति वाला अन्तःकरण अहंकार कहा जाता है। संकल्प-विकल्प, संशयात्मक प्रवृत्ति वाला मन होता है।[424]

साङ्ख्यमत में सत्-असत् का विवेचन चार प्रकार से किया गया है जो निम्न है – **असतः असज्जायते, असतः सज्जायते, सतः असज्जायते, सतः सज्जायते।** इनमें असत् से असत् की उत्पत्ति असङ्गत है। असत् पदार्थ का कार्य-कारण होने पर उत्पन्न हुए पदार्थ का व्यवहार शशकविषाण के समान योग्य नहीं है।

'असतः सज्जायते' यह मत बौद्धों का है। ये बौद्ध लोग सभी भाव पदार्थों को क्षणिक स्वीकार करते हैं। क्षणिकवाद को मानने से कार्यकारण भाव ठीक नहीं बैठता है। पूर्व क्षण में जिसका विनाश हुआ था, उत्तर क्षण में वही कारण रुप में आ कर नये पदार्थ को उत्पन्न करता है अतः **'असतः सज्जायते'**, कहा जाता है। **'सतः असज्जायते'** यह अद्वैत वेदान्त मानता है। **'सतः सज्जायते'** यह साङ्ख्य स्वीकार करता है। न्याय-दर्शन भी इसी मत को स्वीकार करता है, लेकिन नष्ट हो जाने पर पदार्थ की उत्पत्ति नहीं होती है, नया पदार्थ नूतन रूप में उत्पन्न होता है।[425]

- **प्रस्थानभेद –** प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्थान-भेद के साङ्ख्य प्रकरण पर बहुत कम प्रकाश डाला है। यहाँ साङ्ख्यसूत्र छः अध्यायों में विभाजित बताकर उसका वर्ण्य विषय प्रतिपादित किया गया है। इसमें त्रिविध दुःखों की निवृत्ति बतलायी गयी है। प्रकृति-पुरुष का विवेक ज्ञान ही साङ्ख्य-दर्शन का प्रयोजन माना गया है।[426]

---

422 साङ्ख्यसूत्र, २/२४१

423 द्वा. द. सो., पृ. ३६

424 वही, पृ. ३६

425 वही, पृ. ४०

426 प्रस्थानभेद, पृ. ०९

- **सर्वमतसङ्ग्रह –** सर्वमतसङ्ग्रह के अन्तर्गत प्रतिपादित साङ्ख्यदर्शन में २५ तत्त्व हैं – पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ मन, पाँच तन्मात्राएँ पाँच महाभूत। योगदर्शन में इन पच्चीस तत्त्वों के सहित परमपुरुष ईश्वर को स्वीकार किया गया है। इन तत्त्वों में पुरुष प्रमाता है। पुरुष ज्ञान स्वरूप, नित्य, निर्विषयी है।[427]

  ज्ञान पुरुष का गुण या धर्म नहीं है, अपितु स्वरूप है।[428] यदि पुरुष को जड़ माना जाय तो उसका प्रकाश करने के लिए किसी अन्य चेतन द्रव्य को मानना पड़ेगा। किन्तु कल्पना लाघव के लिए पुरुष को स्वयं ज्ञान रूप मानना ही युक्ति संगत है - **'ज्ञानस्वरूपः पुरुषः प्रमाता।'** [429]

सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार साङ्ख्य-दर्शन में ईश्वर को स्वीकार नहीं किया गया है, किन्तु योगदर्शन में ईश्वर की सत्ता है। अतः योगदर्शन में पुरुष के दो भेद हैं –

१. परम पुरुष ईश्वर
२. पुरुष या जीव

ईश्वर क्लेश, कर्म, विपाक, आशय, से सर्वथा अपरामृष्ट पुरुष विशेष है। इसमें निरतिशय सर्वज्ञता विद्यमान है। यह केवल एक है। ईश्वर के विपरीत जीव अविद्यादि से संसृष्ट है। यह सुर, नर और नारकीय भेद से त्रिविध हैं। यह संख्या में अनेक हैं।[430]

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** इसमें पुरुष को चैतन्य स्वीकार किया गया है, तथा पुरुष बहुत्व माना गया है। तीन प्रमाण प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम माने गए है। प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण है – **'श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा-घ्राणानां मनसाधिष्ठितानां शब्दादिविषयग्रहणे वर्तमाना वृत्तिः विषयाकारपरिणामः प्रत्यक्षं प्रमाणमिति"।**[431] अनुमान – **'सम्बन्धादेकस्मात् प्रत्यक्षाच्छेषसिद्धिरनुमानम्'।**[432] शब्द – **'आप्तोपदेशः शब्दः'।**[433]

---

427 स. म. सं. ,पृ. २९

428 वही, पृ. २९

429 साङ्ख्यप्रवचनभाष्य, पृ. २०५

430 स. म. सं.,पृ. २९

431 स. सि. प्र.,पृ. ३६०

432 वही,पृ. ३६१

433 वही,पृ. ३६२

- **षड्दर्शनसमुच्चय -** राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय में साङ्ख्य मत अनुयायियों को दण्ड धारण करने वाला कहा गया है। ये हमेशा खल्वाट रहते है तथा द्वादश अक्षर वाले मन्त्र का जाप करते है। प्रणाम करते समय अन्त में 'नमः' पद का प्रयोग करते है। सांख्यानुयायी वेद को स्वीकार करने वाले, यज्ञप्रेमी, हिंसादि से रहित, अध्यात्मवादी कहे जाते है। राजशेखर के अनुसार भक्ति से मुक्ति होती है, अतः मोक्ष के लिए किसी क्रिया की आवश्यकता नहीं है। **यदि साङ्ख्यमते भक्तिस्तदा मुक्तिर्विना क्रियाम्।**[434] इसमें यह भी कहा गया है कि –

"हस पिब लल खाद मोद नित्यं, भुङ्क्ष्व च भोगान् यथाऽभिलाषम्।

यदि विदितं ते कपिलमतं तत्, प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥"[435]

- **षड्दर्शननिर्णय –** मेरुतुंगाचार्य ने प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रकृति के विषय में यह प्रश्न उठाया है कि प्रकृति अचेतन है तो चेतन बुद्धि कैसे उत्पन्न होती है ? यदि पुरुष के संयोग से प्रकृति में चेतना आती है तो चेतना पुरुष का धर्म है अथवा प्रकृति का ? यदि पुरुष का धर्म है तो प्रकृति की उत्पत्ति क्यों होती है ? यदि प्रकृति का धर्म है तो जड़ प्रकृति से ज्ञान रूप बुद्धि की उत्पत्ति कैसे होती है ? यहाँ विरोध है क्योंकि क्या सूर्य से उत्पन्न प्रकाश, तमस् का धर्म कहा जा सकता है?[436]
  इस प्रकार के साङ्ख्य सम्बन्धित प्रश्नों का यहाँ बहुत ही तार्किक रूप से वर्णन हुआ है।
  पुरुष यदि अकर्त्ता है तो धर्म अधर्म को कौन करता है ? प्रकृति अचेतन होने से नही करती है पुरुष अकर्त्ताहै। अतः संसार अनादि है, कर्मबद्ध जीव अनादि है।[437] विना क्रिया के तत्त्वज्ञान मात्र से किसी को मोक्ष नही प्राप्त होता है, कहा गया है कि –

क्रिया फलप्रदा पुंसां न ज्ञानं केवलं क्वचित्।

न हि स्त्रीभक्ष्यभोगज्ञो ज्ञानादेव सुखी भवेत् ॥[438]

---

434 ष. द. समु.,पृ. ३०७

435 वही,पृ. ३०७

436 ष. द. नि., पृ. ३२२

437 ष. द. नि., पृ. ३२२

438 वही, पृ. ३२२

➢ **लघुवृत्ति –** साङ्ख्यमत निरीश्वरवादी है, ईश्वर को स्वीकार नहीं करता है। यह केवल अध्यात्म पर विश्वास करता है। कुछ लोग ईश्वर को महेश्वर के रूप में साङ्ख्य शास्त्र का अधिष्ठाता मानते हैं। **स्वशासनाधिष्ठातारमाहुः।**[439] इसमें पुरुष को मुक्त माना गया है –

"अमूर्तश्चेतनो भोगी नित्यः सर्वगतोऽक्रियः।

अकर्त्तानिर्गुणः सूक्ष्मः आत्मा कापिलदर्शने ॥"[440]

➢ **अवचूर्णि -** लघुवृत्ति में वर्णित सिद्धान्त ही यहाँ अतिसंक्षेप में प्रस्तुत किये गये है, अतः पुनरावृत्ति के भय से प्रस्तुत नहीं किया गया है।

➢ **लघुषड्दर्शनसमुच्चय –** यहाँ साङ्ख्य-दर्शन को मरीचि दर्शन कहा गया है। प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम तीन प्रमाण माने गये है। २५ तत्त्वों का ज्ञान मोक्ष मार्ग है।[441]

॥ योग-दर्शन ॥

➢ **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में योगदर्शन को पतञ्जलि पक्ष के रूप में उपस्थापित किया गया है। सेश्वर साङ्ख्य के प्रवर्तक पतञ्जलि को स्वीकार किया गया है। इसमें भी साङ्ख्य सम्मत पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार किया गया है। इसके अनुसार योग को जानने से दोषों का नाश हो जाता है। पच्चीस तत्त्वों में पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, तन्मात्रा, सोलह विकार है। योग में ज्ञान से मुक्ति मानी गयी है। इसको शङ्कराचार्य आलस्य का लक्षण मानते हैं।[442]

ज्ञानी की भी बुद्धि दोषों से भ्रमित हो जाती है। गुरु के उपदेश से अविद्या का नाश होता है। देहरूपी दर्पण में से दोषों को योग द्वारा दूर किया जा सकता है। गुरु के उपदेश से विरक्त मनुष्य के दोषों का नाश योग से हो सकता है। मनुष्य के द्वारा अविद्या के कारण किये गये कर्मों के फल से जाति, आयु, भोग प्राप्त होते हैं।[443]

---

439 ल.वृ., पृ. २४६

440 वही, पृ. २४९

441 ल.ष.द.स., पृ. ३०२

442 स. सि. सं., पृ. ४०

443 वही, पृ. ४०

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह के पतञ्जलि पक्ष में पञ्च क्लेश, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश का वर्णन किया गया है। क्लेश, कर्म, विपाक से शून्य पुरुष को ईश्वर स्वीकार किया गया है। वह ईश्वर काल से परे है। वह गुरुओं का भी गुरु है। उसका वाचक प्रणव है उसी का जाप करना चाहिए। आलस्य, व्याधि, प्रमाद, संशय, अनवस्थिति, चित्त में अश्रद्धा, भ्रान्त दर्शन, दुःख, दुर्बलता, विषयासक्त आदि को योग में दोष माना गया है।[444] सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में प्रमाण की चर्चा नहीं की गई है।

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह -** योग-दर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि है। सर्वदर्शनसङ्ग्रह के प्रारम्भ में योगसूत्र की विषय वस्तु का प्रतिपादन किया गया है। चित्त वृत्ति के निरोध को योग कहा है। याज्ञवल्क्य को उद्धृत कर उनकी योग की परिभाषा दी है – **'संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः'।**[445] सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात समाधि का निरूपण किया गया है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश रूपी क्लेशों का वर्णन भी किया गया है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारण, समाधि का निरूपण भी प्राप्त होता है।
- **सर्वदर्शनकौमुदी -** संसार के दुःखों की निवृत्ति के लिए महर्षि पतञ्जलि ने योगदर्शन में उपाय बताए हैं। योग से ही सभी पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। पदार्थ के ज्ञान से ही मुक्ति प्राप्त होती है। साङ्ख्य के २५ तत्त्व एवं योगदर्शन में ईश्वर को सम्मिलित कर २६ तत्त्व माने गये हैं।[446] क्लेशकर्म विपाकादि से रहित ईश्वर स्वीकार किया गया है **-'क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः'।**[447] **साङ्ख्य मतेन सह पतञ्जलिमतस्येषन्मात्रपार्थक्यम्। पतञ्जलिनये च साङ्ख्यवादिपदार्थैः सहेश्वरस्य मेलनेन षड्विंशतिपदार्थानां तत्त्वज्ञानान्मुक्तिं लभत इत्येतावान्मात्रभेदः।**[448]

योग को परिभाषित करते हुए कहते हैंकि अन्तः करण में सभी विषयों का निरोध होना योग है। अथवा चित्तवृत्ति का निरोध योग है – **'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'।**[449] योग में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि ये आठ अङ्ग माने गये है। सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि यम है। शौच सन्तोषा आदि नियम है। पद्म, स्वस्तिक आदि रूप में उपवेशन आसन कहलाता

---

[444] वही, पृ. ४१

[445] स. द. सं., पृ. ५७६

[446] स. द. कौ. ,पृ. १२९

[447] योगसूत्र, सूत्र १/२४

[448] स.द.कौ.,पृ.१२९

[449] योगसूत्र, सूत्र १/२

है। श्वास, प्रश्वास का नियमन प्राणायाम है। रूप रसादि विषयों के प्रति इन्द्रियों को रोकना प्रत्याहार है। बाह्य इन्द्रियों को रोकना, अन्तरिन्द्रिय को एक स्थान में लगाना ध्यान है।[450] विषयों का परित्याग होने पर चित्त का स्थिरिकरण धारणा है। केवल ध्येय वस्तु में ध्यान लगाना समाधि है।

योगदर्शन में वर्णित चित्त की पाँच अवस्थाएं है – क्षिप्र, मूढ, विक्षिप्त, एकाग्र, निरुद्ध,। चित्त की वृत्ति भी प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति के भेद से पाँच है। अभ्यास, वैराग्य, से चित्त वृत्तियों का निरोध हो जाता है।[451] सर्वदर्शनकौमुदी के अन्त में अनेक योगी व्यक्तियों की कथा दी गई है। योगशास्त्र में प्रमाण पर चर्चा नहीं की गई है।

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** साङ्ख्य-दर्शन में जिस प्रकार की प्रकृति स्वीकार की गई है उसी प्रकार योग में भी मानी गई है। योग ने प्रकृति को स्वतन्त्र माना है। यहाँ योग में कहा गया है कि जड़ वस्तु अपना स्वभाव कभी नहीं छोड़ती है। यथा अग्नि अपनी उष्णता का कभी परित्याग नहीं करती है उसी प्रकार प्रकृति भी अपने स्वभाव का कभी परित्याग नहीं करती है। योग मत में पुरुष नित्य, स्वयंप्रकाश स्वरूप, व्यापक, दीनों पर अनुग्रह करने वाला कहा गया है।[452]

  इस दर्शन धारा के अनुसार ईशाधिष्ठिता सविकारा प्रकृति ज्ञेय है। नित्यचिद्रूप और ईश्वर ज्ञाता है। ज्ञान प्रतिबन्धक मोहशक्ति, अज्ञान का स्वरूप है। प्रकृति-पुरुष का भेद ग्रह और ईश्वर साक्षात्कार ज्ञान का स्वरूप है। ईश्वर के ध्यान से सकल दुःखों की निवृत्ति मोक्ष का स्वरूप है। योग-दर्शन इन सबकी सिद्धि के लिए तीन प्रमाण मानता है।[453] योग-दर्शन का श्लोकात्मक परिचय इस प्रकार है –

ईशाधिष्ठितकार्यकारिप्रकृतेः कार्यं समस्तं जगत्

जीवः पूर्ववदेव किन्तु जगतीनाथः परं संमतः।

तच्छरणीकरणेन मुक्तिरमला पूर्वोक्तमानत्रयं

ध्यानावस्थितनिर्मलात्ममनसां मान्यं मतं योगिनाम् ॥[454]

योग-दर्शन में तीन प्रमाण माने गए हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द। इन्द्रिय का अर्थ के साथ संयोग होने पर प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है, किन्तु योगियों को विना इन्द्रियार्थसन्निकर्ष के भी भूत, भविष्य का

---

450 स. द. कौ., पृ. १३१

451 स. द. कौ., पृ. १३४

452 वही., पृ. १५४

453 वही., पृ. १५४

454 वही., पृ. १५३

साक्षात्कार होता है। योगी निरन्तर ध्यान धारणादि से इन्द्रियों की शक्ति को बढ़ा कर, ईश्वर की शक्ति विशेष प्राप्त कर साक्षात्कार करते हैं। योगी दो प्रकार के होते हैं –

योगिनो द्विविधा प्रोक्ताः युक्तयुंजानभेदतः।

युक्तस्य सर्वदा भानं चिन्तासहकृतोऽपरः ॥[455]

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् – प्रस्तुत** ग्रन्थ के अन्तर्गत योगदर्शन में जीव और ईश्वर ये दो तत्त्व स्वीकार किये जाते हैं, अतः इसको **'सेश्वरसाङ्ख्य'** कहा जाता है। इसका नाम **'साङ्ख्यप्रवचनम्'** भी है। पतञ्जलि प्रणीत होने से 'पातञ्जल दर्शन कहा जाता है। इसमें अन्य दर्शनों के प्रमाण भी दिए गए है यथा समाधि की परिभाषा याज्ञवल्क्य ने प्रतिपादित की है –

'समाधिः समतावस्था जीवात्मपरमात्मनोः।

ब्रह्मण्येव स्थितिर्या सा समाधिरभिधीयते ॥'[456]

विद्यारण्य स्वामी निर्मित पञ्चदशी को उद्धृत किया गया है –

ध्यातृध्याने परित्यज्य क्रमाद ध्येयैकगोचरम्।

निर्वातदीपवच्चितं समाधिरभिधीयते ॥[457]

इसमें परिणाम विचार, अविद्या विचार, सम्प्रज्ञात, असम्प्रज्ञात समाधि, निरोध, अभ्यास, वैराग्य, पुरुष कैवल्य आदि पर विचार किया गया है।

- **प्रस्थानभेद –** मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्थानभेद में योग-दर्शन पर इस प्रकार प्रकाश डाला है कि योगसूत्र में चार पाद है। प्रथम पाद में चित्तवृत्ति, निरोध, समाधि, अभ्यास, वैराग्य का वर्णन है। द्वितीय पाद में यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि का कथन किया गया है। तृतीय पाद में विभूति योग का तथा चतुर्थ में कैवल्य का वर्णन है। **"तथा योगशास्त्रं भगवता पतञ्जलिना प्रणीतिम्। अथ योगानुशासनमित्यादि पादचतुष्टयात्मकम्। तत्र प्रथमपादे......सिद्धिः प्रयोजनम् ॥"**[458]

---

455 द्वा. द. सो., पृ. १६२

456 द्वा. द. समी.,पृ.४८

457 वही, पृ.४९

458 प्रस्थानभेद, पृ. ९

- **राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय -** इसमें अष्टाङ्ग योग का वर्णन किया गया है। मोक्ष का उपाय योग है। ज्ञान व श्रद्धा से योग की प्राप्ति होती है। राजा लोग तथा सामान्य जन भी योग से मुक्त हो सकते है। "**राज्यादिभोगमिच्छूनां, गृहिणां तु प्रवर्तकः।**"[459]

॥ मीमांसा-दर्शन ॥

- **षड्दर्शनसमुच्चय -** जैमिनीय दर्शन में कोई सर्वज्ञत्वादि गुणों से युक्त देवता स्वीकार नहीं किया गया है

"जैमिनीयाः पुनः प्राहुः सर्वज्ञादिविशेषणः।

देवो न विद्यते कोऽपि यस्य मानं वचो भवेत् ॥"[460]

मीमांसा-दर्शन में नित्य वेदवाक्यों द्वारा तत्त्वनिर्णय, तत्त्वज्ञान, अतीन्द्रिय विषयों का साक्षात्कार और धर्माधर्म का ज्ञान किया जाता है। वेद अपौरुषेय ईश्वरीय ज्ञान हैं। वे किसी मनुष्य की बुद्धि से कल्पित नहीं हैं और न ही किसी के उपदेशमात्र हैं अपितु वेद नित्य शाश्वत ईश्वरीय वाणी हैं जिनका अक्षरशःमन्त्रशः ज्ञान ऋषियों के हृदय में हुआ था। वेदमन्त्रों के आधार पर ही अतीन्द्रिय विषयों एवं धर्म व अधर्म का निर्णय किया जा सकता है।

वेद ईश्वरीय ज्ञान हैं। वे स्वतः प्रमाण हैं। अतएव सर्वप्रथम वेदों का पाठ और अध्ययन करना चाहिए। तत्पश्चात् धर्म के यथार्थ स्वरूप का साक्षात्कार करने की जिज्ञासा करनी चाहिए।

"अत एव पुरा कार्यो वेदपाठः प्रयत्नतः।

ततो धर्मस्य जिज्ञासा कर्त्तव्या धर्मसाधनी ॥"[461]

किसी तत्त्व के साक्षात्कार को ही जिज्ञासा कहते हैं। जिज्ञासा ऐसी होनी चाहिए, जिससे धर्म के वास्तविक स्वरूप का साक्षात्कार किया जा सके। वेदों में स्वर्गादिसाधक कर्मों के प्रति जो आदेश है जिससे उन कर्मों की प्रेरणा मिलती है उसी को धर्म कहते हैं –

"नोदनालक्षणो धर्मो, नोदना तु क्रियां प्रति।

प्रवर्तकं वचः प्राहुः स्वः कामोऽग्निं यजेद्यथा ॥"[462]

---

[459] ष. द. स., पृ. ३१५

[460] वही, कारिका, ६८

[461] ष. द. स., कारिका, ७०

[462] वही, कारिका, ७१

मीमांसक वैदिक वाक्य को धर्म में प्रमाण मानते हैं। नोदना से उत्पन्न प्रमा का विषय धर्म है। जो अनर्थ का हेतु है वह अधर्म है। नोदना से भूत, भविष्य, वर्तमान, सूक्ष्म, अव्यवहित सभी अर्थों का ज्ञान होता है। वेद अपौरुषेय हैं, अतः उनका वाक्य ही धर्म का बोध कराने में समर्थ है। धर्म के विषय में वेद प्रमाण हैं। जैमिनीय दर्शन में छः प्रमाण माने गए हैं – १. प्रत्यक्ष २. अनुमान ३. उपमान ४. शब्द ५. अर्थापत्ति ६. अभाव। **"प्रत्यक्षमनुमानं च शब्दश्चोपमया सह। अर्थापत्तिरभावश्च षट् प्रमाणानि जैमिनेः ॥**[463]

- **शास्त्रवार्तासमुच्चय -** धर्म तथा अधर्म अतीन्द्रिय वस्तुएँ हैं, अतः उनके सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी न कोई मनुष्य करा सकता है, न किसी मनुष्य द्वारा रचित कोई ग्रन्थ और संभव नहीं, फिर भी धर्म-अधर्म के सम्बन्ध में प्रामाणिक जानकारी का द्वार हमारे लिए बन्द नहीं और वह इसलिए कि यह जानकारी हमें वेदों से प्राप्त हो सकती है, जो किसी ग्रन्थकार की रचना न होकर एक नित्य ग्रन्थ राशि है तथा इसीलिए उन सब दोषों से मुक्त हैं जो एक सामान्य ग्रन्थ में पाये जा सकते हैं।[464]
- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहकार ने मीमांसा-दर्शन को दो भागों में विभाजित किया है- **प्रभाकर पक्ष, भट्टाचार्यपक्ष।**

प्रभाकर पक्ष – प्रभाकर के मत में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, परतन्त्रता, शक्ति, सादृश्य, संख्या, ये आठ तत्त्व स्वीकार किये गये हैं। भूतलादि से अतिरिक्त विशेष अभाव पदार्थ नहीं है। वेद विहित कर्म से मुक्ति प्राप्त होत है। यहाँ विधि, अर्थवाद, मन्त्र, नामधेय ये चार स्वीकार किये गये है, निषेध का वर्णन स्वतन्त्र रूप से नही होता है।[465] वेद विधि प्रधान है। धर्म अधर्म के बोधक है। बुद्धि, इन्द्रिय, शरीर से भिन्न आत्मा है यह विभु और ध्रुव है। यहाँ वैशेषिक की मुक्ति को पाषाण के समान स्थित रहना माना गया है।[466]

भट्टाचार्यपक्ष – बौद्धादि नास्तिक मतों का निराकरण करके आचार्य कुमारिल भट्ट ने वेद धर्म की पुनः स्थापना की है। वेद के चार विधि, मन्त्र, नामधेय, अर्थवाद भाग है। वेद विधि प्रधान होने से धर्म-अधर्म के बोधक है। जहाँ निन्दनीय कर्म की निन्दा तथा प्रशंसनीय कर्म की प्रशंसा की जाती है उसे

---

463 वही, कारिका, ७२

464 शा. वा. स., पृ. २६

465 स. सि. सं., पृ. २९

466 वही, पृ. २९

अर्थवाद कहा है। कर्म के अङ्गभूत मन्त्र, अनुष्ठान के प्रकाशक यागादि नाम से कहे जाने वाले नामधेय कहलाते हैं।[467] इसमें वेद को अपौरूषेय माना गया है। ईश्वर को जगत्कर्ता माना गया है। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि ये छः प्रमाण माने गये हैं।[468]

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** माधवाचार्य के अनुसार मीमांसा-दर्शन में प्रथम मीमांसा सूत्र की विषय वस्तु का वर्णन किया गया है। 'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा' सूत्र पर प्रकाश डाला गया है। प्रभाकर के मत में भी प्रथम अधिकरण की व्याख्या दी गयी है। वेद पौरुषेय है या अपौरूषेय इस विषय में चर्चा करने के उपरान्त अपौरूषेय माना है। शब्द अनित्य है इसका खण्डन किया गया है। शब्द नित्यत्व की स्थापना की गई है। अन्त में प्रामाण्यवाद का निरूपण किया गया है।[469]
- **सर्वदर्शनकौमुदी –** मीमांसादर्शन के प्रणेता व्यास शिष्य जैमिनि है। भारत में जब उपनिषद् दर्शन का प्रभाव सर्वत्र विद्यमान था तथा लोगों के मन में कर्मकाण्ड के प्रति अरूचि हो गई थी उस समय महर्षि जैमिनि ने विचारशास्त्र अर्थात् मीमांसा-दर्शन की रचना कर वेद की रक्षा की है। यह द्वादश अध्यायों में विभक्त है। मीमांसा शास्त्र में ईश्वर की चर्चा नहीं होने से शङ्कराचार्य आदि ने इसे नास्तिक दर्शन कहा है। **"शङ्कराचार्येण तस्य नास्तिकदर्शनत्वस्वीकारेऽपि।"**[470]
- इसमें शब्द नित्य है, यह माना गया है अतः सर्वदर्शनकौमुदीकार ने भी शाबरभाष्य के सूत्रों को उद्धृत कर शब्द नित्यत्व का प्रतिपादन किया है। इसमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, समवाय, शक्ति, संख्या, सादृश्य ये आठ पदार्थ माने गये हैं। क्षिति, जल, तेज आदि नौ द्रव्य है। रूप रसादि २४ गुण है। उत्क्षेपण, आकुञ्चन आदि पाँच कर्म हैं। जो नित्य है तथा समवाय सम्बन्ध से अनेकों में रहता है, वह सामान्य है। कारण निष्ठ, कार्य के उत्पादन का सामर्थ्य को शक्ति कहा है।[471] एक, दो आदि की गणना में साधारण गुण संख्या है। समवाय नित्य सम्बन्ध है। किसी वस्तु से भिन्न होने पर उसमें निहित अधिक समान धर्म होने को सादृश्य कहा है।

  "तस्माद्भिन्नत्वेसति तन्निष्ठो बहुतर धर्मरूपः समानधर्मः सादृश्यम्।"[472]

  इसमें पाँच प्रमाण माने गये है अभाव को नहीं माना गया है।

---

467 वही, पृ. ३१

468 वही, पृ. ३३

469 स. द. सं., पृ. ४७६

470 स. द. कौ. ,पृ. १४५

471 स. द. कौ. , पृ. १५२

472 वही, पृ. १५२

- **सर्वमतसङ्ग्रह -** मीमांसा-दर्शन में दो सम्प्रदाय हैं –
    1. **कुमारिक सम्प्रदाय (भाट्टमत)**
    2. **प्रभाकर सम्प्रदाय (गुरुमत)**

दोनों ही मतों में प्रमाता आत्मा है, किन्तु आत्मा के स्वरूप में मत वैभिन्य है।

कुमारिल – कुमारिल मत में ज्ञाता अर्थात् आत्मा द्रव्य-बोध स्वरूप है। **"ज्ञाता तु द्रव्यबोधस्वरूपः"।**[473] यह बुद्धि अर्थात् ज्ञान सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, संस्कार, धर्म और अधर्म गुणों का आश्रय है। ज्ञाता इन बुद्ध्यादि गुणों का आश्रय होने से द्रव्य रूप है। और ज्ञेय से विलक्षण स्वभाव वाला होने से ज्ञानरूप है।[474] ज्ञान सुखादि गुण इसके परिणाम हैं किन्तु यह परिणामी होते हुए भी नित्य है। परिणामों से इसके नित्यत्व में कोई बाधा नहीं होती है। स्वरूपतः यह अनश्वर है, किन्तु इसके ज्ञानादि नश्वर है।[475]

यहाँ शंका होती है कि ज्ञान गुण है और गुण द्रव्याश्रित होता है। क्योंकि ज्ञानाश्रय द्रव्य, ज्ञान से भिन्न है। अतः द्रव्य का ज्ञान से संभेद असंभव है, तो आत्मा को द्रव्यज्ञानस्वरूप कैसे माना जा सकता है? इस शंका का निवारण करते हुए सर्वमतसङ्ग्रहकार ने कहा है कि जैसे सूर्यमण्डल प्रकाश का कारण है, इसलिए प्रकाश से भिन्न है। तथापि सूर्य के प्रकाशत्व रूप में दर्शन होते हैं। इसी प्रकार ज्ञाता के द्रव्यबोधस्वरूप में कोई विसंगति नहीं है।[476]

कुमारिल के मत में आत्मा अहं प्रत्यय वेद्य है । आत्मा का मानस प्रत्यक्ष होता है। 'अहम्' की प्रतीति में आत्मा का साक्षात् अनुभव होता है। प्रत्येक व्यक्ति को यह अनुभव होता है कि 'मै स्वयं को जानता हूँ' इस अनुभव में आत्मा, ज्ञाता और ज्ञेय दोनों है। आत्मा द्रव्य अंश से प्रमेय है और बोध अंश से प्रमाता है।[477] यदि आत्मा को जड़ अर्थात् द्रव्य और अजड़ अर्थात् ज्ञान रूप न माना जाये तो, अहं प्रत्यय विषयत्व की असिद्धि होगी।[478] अतः यह द्रव्य बोध स्वरुप है।

---

[473] स. म. सं., पृ. ३५

[474] वही, पृ. ३५

[475] शर्मा, राममूर्ति, भारतीय दर्शन की चिन्तन धारा, पृ. ३०

[476] स. म. सं. ,पृ. ३५

[477] अद्वैत ब्रह्म सिद्धि, पृ. १७१

[478] स. म. सं. ,पृ. ३५

प्रभाकर मत – प्रभाकर मत में प्रमाता जड़ द्रव्य बुद्ध्यादि धर्मों का आश्रय, देहेन्द्रियादि से भिन्न, नित्य, विभु, कर्त्ताऔर भोक्ता है। **"ज्ञाता तु वैशेषिकादिवज्जड़द्रव्यविशेषोबुद्ध्यादिधर्माश्रयोऽत एव देहादि विलक्षणो नित्यो विभुर्लोकत्रयं कर्मवशाद् भ्रमन् प्रत्यक्षादिप्रमाणकः कर्तृभोक्तृस्वभावश्च भवति।"**[479]

यहाँ सर्वमतसङ्ग्रहकार शालिकनाथ मिश्र को उद्धृत करते हैं।

"बुद्धीन्द्रियशरीरेभ्यो भिन्नात्मा विभुर्ध्रुवः।

नानाभूतः प्रतिक्षेत्रमर्थभित्तिषु भासते ॥"[480]

प्रभाकर आत्मा को न्याय वैशेषिक के समान जड़ द्रव्य मानते हैं। आत्मा ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और संस्कार गुणों का आश्रय है।[481] ये ज्ञानादि आत्मा के आगन्तुक गुण है। ज्ञाता स्वप्रकाश नहीं है, किन्तु ज्ञान स्वप्रकाश है। ज्ञान को स्वाभिव्यक्ति के लिए किसी अन्य ज्ञान की अपेक्षा नहीं है, क्योंकि ज्ञान के ज्ञान हेतु ज्ञानान्तर की कल्पना से अनवस्था दोष होगा। ज्ञान स्वप्रकाश तो है, किन्तु नित्य नहीं है। आत्मा का आगन्तुक गुण होने से ज्ञान अनित्य और उत्पत्ति विनाशशील है। विषय सम्पर्क से आत्मा में ज्ञानोत्पत्ति होती है। आत्मा जड़ द्रव्य होने से अपनी अभिव्यक्ति के लिए ज्ञान पर निर्भर है। यद्यपि आत्मा ज्ञान का आश्रय है, तथापि स्वाभिव्यक्ति हेतु ज्ञान पर आश्रित है। ज्ञानाश्रय से ही, जड़ आत्मा ज्ञाता रूप में प्रकाशित होती है - **"तस्य जड़त्वेऽपि ज्ञानाश्रयत्वेन प्रकाशनाद् ज्ञातृत्वम्।"**[482] ज्ञान इन्द्रिय सन्निहित पदार्थ को ज्ञेय रूप में, स्वयं को ज्ञान रूप में और आत्मा को ज्ञाता रुप में प्रकाशित करता है। इसलिए प्रत्येक ज्ञान में 'ज्ञेय-ज्ञान-ज्ञाता' का एक साथ भान होता है। यही त्रिपुटी प्रत्यक्ष है।[483]

आत्मा विभु है। आत्मा अनेक हैं। आत्मा कर्त्ताऔर भोक्ता है। यह यज्ञादि क्रियाओं का कर्त्ताऔर स्वर्गादि का भोक्ता है। कर्त्ताएवं भोक्ता क्रियाद्वय का समानाधिकरण दृष्टिगोचर होता है। आत्मा सुख, दुःखादि का भोक्ता भी है।[484]

---

479 स. म. सं. ,पृ. ३३

480 प्रकरणपञ्चिका, पृ. ३६१

481 वही, पृ. ३३

482 वही, पृ. ३३

483 वही, पृ. ३३

484 प्रकरणपञ्चिका, पृ. ३४४-३४५

सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार कुमारिल सम्मत द्रव्यबोधस्वरूप ज्ञाता तर्कसंगत नहीं है क्योंकि यदि बोध और अबोध का अभेद ग्रहण किया जाये तो सत् और असत् में भी अभेद की प्रसक्ति होगी।[485]

- **प्रस्थानभेद –** मधुसूदन सरस्वती ने प्रस्थानभेद में मीमांसा-दर्शन का प्रतिपादन स्वतन्त्र रूप से नहीं किया है। ब्राह्मण ग्रन्थों के प्रतिपाद्य में ही विधि, मन्त्र आदि की चर्चा विस्तारपूर्वक प्राप्त होती है। इसमें शाब्दी भावना कुमारिल भट्ट मानते हैं ऐसा कहा गया है। नियोग विधि प्रभाकर मानते हैं। विधि के भी चार भेद किये है – उत्पत्तिविधि, अधिकारविधि, विनियोग विधि, प्रयोगविधि।[486]

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** पूर्वमीमांसादर्शनम् नामक एकादश सोपान में पूर्व मीमांसा-दर्शन की मार्मिक मीमांसा है। इस दर्शन के अनुसार केवल कर्तव्य और कर्तव्य के अनुरोध से अन्य सब कुछ ज्ञेय है। शास्त्र विहित कर्तव्य समर्थ अधिकारी, ज्ञाता है। स्वयं में कर्तव्य-विधान के असामर्थ्य की भावना, अज्ञान का स्वरूप है तथा एतन्मूलक मानसिक संताप दुःख का स्वरूप है। कर्तव्य-विधान की भावना ज्ञान का स्वरूप है। तन्मूला मानसिक शान्ति मोक्ष का स्वरूप है। यह दर्शन वेद को अपौरुषेय मानता है।[487] पूर्व मीमांसा-दर्शन का सिद्धान्त निम्नानुसार है – **"ईश्वराभावेऽपि अपौरूषेयाद्वेदादेव कर्तव्यं ज्ञात्वा तव दुःखनाशः स्यात्। अदृष्टं खलु दुःखस्यकारणम्। तच्च सकामकर्मजन्यम्। निष्कामकर्माचरणाददृष्टाभावे दुःखनाशः स्यादेवेति।"**[488]
  मीमांसा-दर्शन में आत्मा को एक द्रव्य माना गया है। आत्मा स्वभावतः अचेतन मानी गई है। द्वादशदर्शनसोपानावलि के अनुसार जीवन का चरम लक्ष्य स्वर्ग को माना गया है।[489] इसमें प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अभाव ये छः प्रमाण माने गये है। अर्थापत्ति के भेदों की चर्चा भी की गयी है।

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** मीमांसा शास्त्र में धर्म के अनुष्ठान से ही फल की सिद्धि होती है। यह द्वादश अध्यायों में विभक्त है, प्रत्येक अध्ययाय में तीन पाद है। मीमांसा शास्त्र का प्रतिपाद्य धर्म है अतः उद्धृत किया गया है – **'चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः'**।[490] **'स्वाध्यायोऽध्येतव्यः'** में तव्य प्रत्यय

---

485 स. म. सं. ,पृ. ३७

486 प्रस्थानभेद, पृ. ३

487 श्रीपाद शास्त्री हसूरकर : व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, पृ. ३२४

488 द्वादर्शदर्शनसोपानावलि, दर्शनसोपानक्रमप्रदर्शकं पत्रम्, पृ. २८८

489 द्वा. द. सो., पृ. १६५

490 द्वा. द. स., पृ. ६५

से आख्यातत्व और लिङ्गत्व से ही भावना होती है।[491] वेद में कहे गये अर्थ के निर्णय के लिए श्रुति, लिङ्ग, वाक्य, प्रकरण, स्थान, समाख्या ये छः प्रमाण है। उत्तर की अपेक्षा पूर्व बलवान होता है।

- **लघुवृत्ति –** मीमांसा शास्त्र को पूर्व मीमांसा एवं उत्तर मीमांसा के रूप में विभाजन किया गया है। उत्तर मीमांसा को वेदान्त कहते हैं। वेदान्ती ब्रह्माद्वैतवाद को मानते हैं। मीमांसा में प्रामाणिक पुरूषाभाव होने से, सर्वज्ञादि पुरूषाभाव होने से वेदों को नित्य तथा शाश्वत स्वीकार किया गया है। वेद किसी पुरुष विशेष की रचना न होने से अपौरुषेय माने गये हैं। इसमें प्रमाण भी दिया गया है –

“आपाणिपादो ह्यमनो गृहीता पश्यत्यचक्षुः स श्रृणोत्यकर्णः।
स वेत्ति विश्वं न च तस्य वेत्ता तमाहुरग्रयं पुरुषं महान्तम् ॥”[492]

- **अवचूर्णि –** लघुवृत्ति में प्रतिपादित सिद्धान्तों का ही यहाँ वर्णन है।
- **षड्दर्शनसमुच्चय –** मीमांसा-दर्शन में साङ्ख्य की आचार मीमांसा को राजशेखर स्वीकार करते हैं। कर्म का पूर्व मीमांसा में तथा ब्रह्म का उत्तर मीमांसा में वर्णन है। मीमांसकों के चार भेद हैं – कुटीचर, बहूदक, हंस, परमहंस।[493]
- **षड्दर्शननिर्णय –** सर्वज्ञ के विषय में चर्चा की गई है। वेद को अपौरुषेय माना गया है। मेरूतुङ्गाचार्य ने मीमांसकों की अप्रशंसा की है –

“यूपं छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रूधिरकर्दमम्।
यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥”[494]

अतः अहिंसा, संयम, तपरूप आत्मयज्ञ ही स्वर्गादि का साधन है –

“इन्द्रियाणि पशून् कृत्वा वेदिं कृत्वा तपोमयीम्।
अहिंसामाहुतिं दद्यादेष यज्ञः सनातनः ॥”[495]

---

[491] वही, पृ. ५६
[492] श्वेताश्वतरोपनिषद् ३/१/९
[493] षड्दर्शनसमुच्चय, पृ. ३०८
[494] ष. द. नि., पृ. ३२२
[495] वही, पृ. ३२२

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** मीमांसा शास्त्र में वेद पाठ के अनन्तर ही धर्म की जिज्ञासा करनी चाहिए। प्रवर्तना को धर्म कहा है। अन्त में प्रमाण चर्चा उपलब्ध होती है।
- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** इसमें कहा गया है कि मीमांसा-दर्शन की रचना परस्पर विरूद्ध वैदिक कर्मों के विरोध के परिहार के लिए की गई है। जैमिनि मुनि ने कहा है कि इस संसार में प्रधान वस्तु कर्म ही है, यज्ञ आदि कर्मफल देने वाले है। मीमांसकों के सिद्धान्त में शब्द नित्य हैं। शब्द तथा अर्थ के ज्ञान की प्राप्ति के लिए मीमांसा का ज्ञान आवश्यक है।[496]

॥ वेदान्त-दर्शन ॥

- **शास्त्रवार्तासमुच्चय -** हरिभद्रसूरि ने अद्वैत दार्शनिकों की इस मान्यता पर विचार किया है कि ब्रह्म ही एकमात्र वास्तविक सत्ता है। जबकि जगत् में ब्रह्म के स्थान पर इन-उन वस्तुओं के दिखाई देने का कारण 'अविद्या' है, उत्तर में हरिभद्र का कहना है कि अविद्या यदि ब्रह्म से अभिन्न है तो वह जगद् वैविध्य की प्रतीति का कारण उसी प्रकार नहीं बन सकती जैसे कि अकेला ब्रह्म नहीं बन सकता, और यदि ब्रह्म से भिन्न है तो यह भी उचित प्रतीत नही होता है [497]।
- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** शङ्कराचार्य ने इसमें साङ्ख्य, मीमांसा, न्याय वैशेषिकादि दर्शनों की समालोचना की है। वेदान्त का प्रतिपाद्य विषय ब्रह्म जिज्ञासा है। जिसको नित्यानित्य, विवेक, फलभोगविराग, शम, दम, मुमुक्षा आदि का ज्ञान है, वह अधिकारी है।[498] पञ्चकोश, सृष्टि की उत्पत्ति, आवरण विक्षेप शक्ति, मोक्ष का साधन आदि पर विस्तारपूर्वक चर्चा की है।
- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** साङ्ख्य के परिणामवाद का खण्डन किया गया है। वेदान्त सूत्र की विषय वस्तु पर प्रकाश डाला गया है। आत्मा के विषय में वैशेषिक, जैन, विज्ञानवादी बौद्धमत का खण्डन करके ब्रह्म की स्थापना की गई है तथा प्रमाणरूप में श्रुतियों के उदाहरण प्रस्तुत किये गये है। अध्यास का निरूपण कर उसके भेद अर्थाध्यास तथा ज्ञानाध्यास का वर्णन किया है –

प्रमाणदोषसंस्कारजन्मान्यस्य परात्मना।

तद्धीश्चाध्यास इति हि द्वयमिष्टं मनीषिभिः ॥[499]

---

[496] प्र. भि. प्र., पृ. ४५

[497] शा. वा. स., पृ. २५

[498] स. सि. सं., पृ. ५४

[499] वही, पृ. ६८३

वेदान्त-दर्शन का सर्वदर्शनसङ्ग्रह में विस्तार पूर्वक वर्णन प्राप्त होता है। अन्य दर्शनों का खण्डन इसमें विस्तार से किया गया है।

सर्वदर्शनकौमुदी - निर्गुण पर ब्रह्म सगुण ईश्वर जीवात्मा नामक एक पदार्थ के सिद्धान्त को मानने वाले ही अद्वैतवादी कहे जाते है। जहाँ द्वैत नहीं है उसे अद्वैत कहते हैं। स्वगत, स्वजातीय, विजातीय भेदों से रहित परब्रह्म के साथ जीवात्मा के एकत्व प्रतिपादक सिद्धान्त को ही 'अद्वैतवाद' नाम से जाना जाता है।[500] अद्वैतवाद में ब्रह्म को सत्, चित्, आनन्दस्वरूप, नित्य, शुद्ध, बुद्ध, अनादि कहा गय है। सर्वदर्शनकौमुदीकार ने माया की आवरण और विक्षेप नामक दो शक्तियों को स्वीकार किया है। दामोदर के अनुसार इसमें दो पदार्थ माने गये है चित् और अचित्। चित् ब्रह्म है और अचित् जड़ है। छः प्रमाण माने गये हैं।[501] पूर्व मीमांसा तथा उत्तर मीमांसा में भेद यह है कि पूर्वमीमांसा में कर्मकाण्ड का प्रतिपादन मुख्य है जबकि उत्तरमीमांसा में ज्ञान की प्रधानता है। सर्वदर्शनकौमुदी में ब्रह्म के अतिरिक्त किसी भी पदार्थ को अस्वीकार करके उसके मिथ्यात्व का प्रतिपादन किया गया है। जगत् में दृश्यमान् सम्पूर्ण वस्तुयें ब्रह्म का स्वरूप है। उनमें नाममात्र का भेद है। जो कुछ भी प्रतीत हो रहा है वह रज्जु मे सर्प के समान माया मात्र है।[502] ब्रह्म ज्ञान के श्रवण, मनन, निदिध्यासन, समाधि ये साधन बतायें गये है।

सर्वमतसङ्ग्रह - उपनिषदों की अध्यात्म विद्या का सम्यक् विवेचन वेदान्त-दर्शन में किया गया है। उसमें परमतत्त्व परब्रह्म का स्वरूप सगुण और निर्गुण दो रूपों में प्राप्त होता है। उपनिषदों के समान पुराणों में भी परमतत्त्व का स्वरूप निरूपित है। अतः सर्वमतसङ्ग्रहकार दो प्रकार के ब्रह्मवादियों का उल्लेख करते हैं[503]

१. औपनिषदिक
२. पौराणिक

इनमें औपनिषदिक ब्रह्मवादी सगुण और निर्गुण भेद से द्विविध है और पौराणिकों की गणना निर्गुण ब्रह्मवादियों में की गयी है। निर्गुणब्रह्मवादियों में आचार्य शङ्कर आदि है। और सगुणब्रह्मवादियों में आचार्य रामानुज, निम्बार्क, मध्व, वल्लभ और श्रीकृष्ण चैतन्य आदि हैं।

---

500 स. द. कौ. ,पृ. १६२-६३

501 वही, पृ. १६९

502 वही, पृ. १७४

503 स. म. सं. ,पृ. ३८

सगुणब्रह्मवादी – सगुणब्रह्मवादियों के अनुसार जीव ज्ञाता है।[504] वह ज्ञान का स्वरूप और आश्रय है। इनके मत में ज्ञाता आचार्य शङ्कर के समान ज्ञान स्वरूप मात्र नहीं है।[505] अपितु जिस प्रकार सूर्य प्रकाशमय है और प्रकाश का आश्रय भी है, उसी प्रकार वह ज्ञान स्वरूप और ज्ञानाश्रय दोनों है। **"ज्ञानस्वरूपस्यैव तस्य ज्ञानाश्रयत्वं मणिद्युमणिप्रदीपादिवत्।"**[506] वह स्वप्रकाश और स्वयंवेद्य दोनों है। वह स्वयं प्रकाशित होता है और स्वयं को जानता भी है। वह पदार्थों को भी जानता है, किन्तु उन्हें प्रकाशित नहीं कर सकता। 'जानामि' 'अनुभवामि' इत्यादि प्रत्यक्ष प्रमाणों से जीव के ज्ञातृत्व की सिद्धि होती है।[507] बन्धन और मुक्ति दोनों ही अवस्थाओं में इसका ज्ञातृत्व बना रहता है।[508] जीव अणुपरिणामी है। अणु परिमाण होते हुए भी वह अपने सार्वत्रिक ज्ञान के कारण शरीर के सुखदुःखादि का अनुभव करने में समर्थ होता है।[509] जीव ज्ञाता, भोक्ता और कर्त्ताहै। वह नित्य और अनेक है। शरीर, प्राण, इन्द्रिय, मन, अहङ्कार और बुद्धि से विलक्षण है।[510]

निर्गुणब्रह्मवादी – निर्गुणब्रह्मवादी शङ्कर आदि आचार्य और पौराणिकों के मत में जीव प्रमाता है। **"जीवः प्रमाता। स प्रत्यक्षानुमानगम्यः प्रतिक्षेत्रं मायया भिन्नः।**[511] अन्तःकरण से अवच्छिन्न चैतन्य अर्थात् ब्रह्म ही जीव है, यही प्रमाता है।[512] अज्ञान से आच्छन्न होकर ही ब्रह्म विविध जीवात्माओं के रूप में प्रतीत होने लगता है। अनेक प्रतीत होने वाली जीवात्माएँ वास्तव में एक हैं, किन्तु भिन्न-भिन्न अन्तःकरण और शरीरों से सम्बद्ध होने के कारण भिन्न प्रतीत होती हैं। यदि वह एक ही होता तो एक के ज्ञानप्राप्ति से, सभी ज्ञान की प्राप्ति करके मुक्त हो जाते और एक को सुखदुःखादि की अनुभूति होने पर सभी शरीरस्थ जीवों को सुखदुःखादि की अनुभूति होती। अतः प्रतिशरीर जीव भिन्न-भिन्न हैं। जीव परमार्थिक रूप में ब्रह्म से अभिन्न होने के कारण सत्, चित्, आनन्द स्वरूप है। अखण्ड, कूटस्थ नित्य और देशकाल से परे है, किन्तु अज्ञान से आच्छन्न स्थिति में, अर्थात् बद्धदशा में यह कर्ता, भोक्ता

---

504 स. म. सं. ,पृ. ३९

505 श्री निवासचारी एस. एम., फण्डामेंटल ऑव् विशिष्टाद्वैतवेदान्त, पृ. १९१

506 श्रीभाष्य, १/१/१/

507 सर्वसम्वादिनी, पृ. ९७

508 राधाकृष्णन, इण्डियन फिलासफी, द्वितीय भाग, पृ. ६८५

509 श्रीभाष्य, २/३/२५

510 तत्त्वत्रयम्, पृ. ११

511 स. म. सं., पृ. ४३

512 पञ्चपादिकाविवरण, पृ. ३०६

और ज्ञाता प्रतीत होता है। जैसे पारदर्शी मणि के पासयदि लाल फूल रख दिया जाता है तो मणि लाल प्रतीत होने लगती है, जैसे रूप रहित आकाश को मूर्ख लोग धूल से ढ़का हुआ मलिन समझने लगते हैं, जैसे संध्या के अन्धकार में रस्सी को साँप समझ लिया जाता है, जैसे सीपी को चाँदी समझ लिया जाता है उसी प्रकार अद्वैत ब्रह्म ही जीवात्मा के रूप में प्रतीत होने लगता है।[513] जीव अपने आप में शुद्ध चैतन्य है, शुद्ध ज्ञान है। विषयानुभूति होने पर ज्ञान ही ज्ञाता रूप में प्रतीत होने लगता है।

➢ **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** द्वादशसोपान में उत्तरमीमांसा-दर्शन की विवेचना के क्रम में मध्व, रामानुज, वल्लभ तथा शङ्कर इन चार महनीय आचार्यों के दार्शनिक मतों की स्वतन्त्र रूप से मीमांसा है। शांकर मत में मायिक जगत् ज्ञेय है। अन्तः करणावच्छिन्न चैतन्य, ज्ञाता है। त्रिगुणात्मक आवरण विक्षेप शक्ति विशिष्ट 'अतस्मिंस्तद्बुद्धि' अज्ञान का स्वरूप है। मै 'सत्, चित्, आनन्द स्वरूप हूँ' यह भावना ज्ञान का स्वरूप है। अद्वैतवादी श्री शांकर मत के अनुसार चार प्रमाण हैं प्रत्यक्ष, अनुमान, श्रुति, अनुभव। इस दर्शन के अनुसार तीन अवस्थाएं हैं – जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति।[514]

माया और अविद्या का प्रयोग एक ही अर्थ में किया गया है। द्वादशदर्शनसोपानावलि के अनुसार माया वस्तुओं के वास्तविक रूप को ढक लेती है। ब्रह्म को निर्गुण, निराकार माना गया है। ईश्वर को सगुण ब्रह्म के रूप में माना गया है। ईश्वर एक, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, स्वतन्त्र, जगत् का स्रष्टा, पालनकर्ता, संहार करता माना गया है।[515]

➢ **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् -** शङ्कराचार्य ने ब्रह्मसूत्र पर भाष्य लिखा है जिसको 'ब्रह्मसूत्र शाङ्करभाष्य' कहते हैं। इसमें चार अध्याय है – समन्वयाध्याय, अविरोधाध्याय, साधनाध्याय, फलाध्याय। प्रत्येक अध्याय में चार पाद है। द्वादशदर्शनसमीक्षणम् के वेदान्त मत में 'आत्मस्वरूप' का विवेचन करते समय चार्वाक, सांख्यादि मतों का खण्डन किया है।[516]

पूर्वपक्षी इसमें प्रश्न करता है ब्रह्म के विषय में क्या प्रमाण है यह प्रत्यक्ष से असिद्ध है क्योंकि व्याप्ति नहीं बनती है। उपमान से भी सिद्धि नही होती है। शब्द प्रमाण भी नहीं है क्योंकि कहा गया है कि 'यतो वाचो निर्वतन्ते'।[517]

---

513 स. म. सं., पृ. ४०

514 द्वा. द. सो., पृ. २३१

515 द्वा. द. सो., पृ. २४५

516 द्वा. द. स., पृ. ८७

517 वही, पृ. ८८, तै.उ. २/९

द्वादशदर्शनसमीक्षाकार कहते हैंकि प्रत्यक्षानुमानोपमान तो ब्रह्म के विषय में प्रमाण नहीं है लेकिन श्रुति प्रमाण है – **'तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि'**[518] **'सदैव सौम्येदमग्र आसीत्'**[519] इसमें पञ्चीकरण प्रक्रिया, परिणामविचार, अविद्या, ख्यातिविचार, महावाक्यादि पर विचार किया गया है।

- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** वेदान्त में जगत् की सृष्टि माया के कारण होती है। अतः जगत् मायिक कहा जाता है। ब्रह्म सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है। माया से विशिष्ट सगुण ब्रह्म को जगत् का कर्त्ताकहा गया है। गुणों से रहित निर्गुण ब्रह्म को सच्चिदानन्द कहा गया है। वेदान्त में मुक्ति ज्ञान के विना प्राप्त नहीं होती है। मुक्ति के लिए कर्मों का सन्यास आवश्यक है।[520]
- **लघुवृत्ति, अवचूर्णि, लघुषड्दर्शनसमुच्चय, राजशेखरकृत षड्दर्शनसमुच्चय, षड्दर्शननिर्णय, सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, षड्दर्शनपरिक्रम** आदि में वेदान्त मत का प्रतिपादन नहीं किया गया है, यह विचारणीय है।

॥ वेदव्यास पक्ष ॥

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह - शङ्कराचार्य वेदव्यास के पक्ष को उपस्थापित करते हुए कहते हैं कि अब समस्त शास्त्रों के आलोक में वेदों का जो सार महाभारत में वेदव्यास द्वारा प्रतिपादित किया गया है वहा वास्तव में साङ्ख्य-दर्शन से ही सम्बद्ध वैदिकों का पक्ष है। इसके अन्तर्गत प्रस्तुत ग्रन्थ में व्यास संसार को पुरुष व प्रकृति से युक्त मानते हैं। मूल प्रकृति सूक्ष्म तन्मात्राओं में तीन गुणों सत्व, रजस्, तमस् में व्याप्त रहती है। इन्हीं गुणों से पुरुष बंधता है व विवेकज्ञान से बन्धनमुक्त होता है। इन्हीं गुणों के स्वभाव से आत्मा उत्तम अर्थात् सत्वप्रधान, मध्यम रजस् प्रधान ,अधम तमस् प्रधान होती है।

इनमें उत्तम सात्विक आत्मा श्लेष्मीय कफ व शान्तचित्त प्रकृति की व जलात्मक, शुक्लवर्णी, मध्यम राजसिक आत्मा पित्त प्रकृति की रक्तवर्णी अग्निवत्, अधम तामसिक आत्मा वात प्रकृति वाय्वात्मक, धूम तथा कृष्णवर्णी होती है।

आगे सात्विक आत्मा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह प्रियङ्गुवर्णी, दूर्वाघास जैसा, शस्त्र की स्वच्छधारावत्, कफात्मक, स्वर्णकमलवत्, बन्धनमुक्त, अदृश्य अस्थिजोड़वत्, स्निग्ध व चौड़े वक्षयुक्त तथा दीर्घशरीरी, गम्भीर, मांसल, सौम्य, गजगामी, महामना, मृदङ्गवद्वाची, मेधावी,

---

518 बृ. उ.३/९/२६

519 छा.उ. ६/१/२

520 प्र. भि. प्र., पृ. ११५

दयालु, सत्यवादी, सभी शीतोष्ण सुख-दुःखादि द्वन्द्वों को सहने वाला, पुत्र-पौत्रादि से समृद्ध, शुक्ल, रतिक्षम, धर्मात्मा, मितभाषी, मृदुभाषी, अल्पाहारी, साहसी, प्रेम,प्रसन्नता,दानादि गुणों से सम्पन्न होता है। इसी से संसार उन्हें पहचानता है।[521]

- **राजसिक आत्मा** जन स्वयं अग्निवत् व कोपयुक्त, पित्तात्मक प्रकृति वाले, बुभुक्षार्त, सिर पे भूरे बालों तथा शरीर पर अल्परोमयुक्त, रक्तवर्ण के हाथ, पैर व चेहरे से युक्त, उष्ण शरीर, घर्मासहिष्णु, स्वेदन, पूतिगन्धयुक्त होता है। वह स्वस्थ, मृदु, अतिकोपी, शूरवीर, मानी, सुचरित, क्लेशभीरु, तथा पण्डित होता है। वह उज्जवल आकृतियुक्त, पुष्पप्रिय, अल्पकामी, कामिनी अनीप्सित, बली, साहसी, भोगी, वैभवी, मधुरभक्षी, अत्यल्प नेत्र, शीतल जलप्रिय, दयारहित, शत्रुसेवनप्रिय, अहङ्कारयुक्त, असत्कारप्रिय आदि होते हैं।[522]
- **अधम अथवा तामसिक आत्मा -** वातात्मक प्रकृति, अघन्य, मत्सरी, चोर, प्राकृत व नास्तिक होते हैं। वे कृश, कृष्ण, अतिलोमश, अस्निग्ध, स्थूलदन्तयुक्त, धूसरविग्रह, चञ्चल बुद्धि, चेष्टा, दृष्टि, गति, स्मृति युक्त, अस्थिर सौहार्दयुक्त, असङ्गत प्रलापयुक्त, बह्वाशी, मृगयाशील, कलहप्रिय, शीतासहिष्णु, दोषधीः, जर्जरस्वरयुक्त, अल्पपित्तकफ, अल्पजीवी आदि गुणों से सम्पन्न होते हैं।[523]

अब त्रिगुणों के विस्तृत वर्णन के पश्चात् वे पञ्चभूतों व पञ्चधातु को भी इससे युक्त मानते हैं। आगे इनके मिलने से त्वक्, मांस, अस्थि, मज्जा तथा स्नायु परस्पर भिन्न होते हुए भी पार्थिव शरीर की क्रियाओं को चलाते हैं। इसके आगे वे प्राण, वायु, षड् रस तथा विभिन्न वर्णों क वर्णन किया है। पुनः विविध सप्त स्वरों, द्वादश वायु के गुण, पञ्चमहाभूतोत्पत्ति व उनका स्वरूप वर्णित है। तदुपरान्त बताया गया है कि विष्णु चतुर्व्यूहात्मक जगत् रचता है। तत्पश्चात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, विट व शूद्र करके चतुर्वर्ण, उनके कर्म व अधिकार बताये हैं। अन्ततः इन्हीं त्रिगुणों से व्यक्ति कर्मानुसार देव, दैत्य, अथवा निशाचर बनता है। तीनों वेदों को पढ़ने का अधिकारी सात्विक तथा अथर्ववेद का अधिकारी राजसिक व तामसिक बताया गया है। विष्णु की कृपा का पात्र उसे ही बताया गया है जो अपने-अपने वर्णों के अनुसार कर्तव्य-कर्म करते हैं।[524]

---

[521] स. सि. सं., पृ.४७-४८

[522] स. सि. सं., पृ.४८-४९

[523] वही, पृ.४९-५०

[524] वही, पृ.५०-५३

॥ द्वैतवाद दर्शन ॥

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** माधवाचार्य के अनुसार परमेश्वर, जीव दो तत्त्व है। परमेश्वर स्वतन्त्र तथा जीव परतन्त्र है। इस विषय को स्पष्ट करने के लिए तत्त्व विवेक का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं –

स्वतन्त्रं परतन्त्रं च द्वितीधं तत्त्वमिष्यते।

स्वतन्त्रो भगवान्विष्णुर्निदोषोऽशेषसद्गुणः ॥[525]

ईश्वर की सेवा के तीन नियम हैं – अंकन, नामकरण, भजन।

अंकन – अपने शरीर पर उनके आयुध अर्थात् अस्त्र शस्त्र आदि का चिह्न अंकित करने को अंकन कहते हैं।[526] **नामकरण –** अपने पुत्रादि का नाम केशव आदि रखकर भगवान् के नाम को बार- बार स्मरण करना। **भजन –** भजन दस प्रकार का है – वाणी के द्वारा सत्य, हित, प्रिय वचन तथा स्वाध्याय, शरीर से दान, बचाव, रक्षा करना, मन से दया, स्पृहा और श्रद्धा। इनमें एक एक की प्राप्ति कर लेने पर उसे नारायण को समर्पण कर देना ही भजन है।[527] अपने मत की सिद्धि में मध्व श्रुति को प्रमाण के रूप में देते हैं। अन्त में माया, महावाक्य, ईश्वर के सर्वोत्कृष्टता के प्रमाण, ब्रह्मसूत्र के प्रथम सूत्र की व्याख्या, शास्त्रों का समन्वय प्रस्तुत किया गया है।

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** द्वैतवादी दर्शन में परब्रह्म ईश्वर और जीवात्मा दो पदार्थ कभी भी एक नही माने गये हैं, अपितु भिन्न-भिन्न पदार्थ माने गये हैं। इनके मत में जीव और ब्रह्म की पृथकता का प्रतिपादन किया गया है। जीव उपासक, सेवक और भक्त है। ब्रह्म उपास्य, सेव्य और भजनीय है।[528] ब्रह्म शब्द से यहाँ सगुण ब्रह्मेश्वर स्वीकार किया गया है। द्वैतवाद में कहा गया है कि सेव्य-सेवकभावरूप से हम भगवान् की सेवा कर सकते हैं किन्तु भगवत्त्व की प्राप्ति नही कर सकते हैं। स्वयं यह ग्रन्थ कहता है कि यह स्थूल बुद्धि व साधारण मनुष्यों के लिये अत्यन्त उपादेय है।[529] अन्ततः अद्वैतवाद तथा द्वैतवाद की समीक्षा की गई है।

---

525 स. द. सं., पृ. २१२

526 वही, पृ. २२५

527 वही, पृ. २२७

528 स. द. कौ., पृ.१७९

529 वही, पृ.१८०

➢ **द्वादशदर्शनसोपानावलि -** इस ग्रन्थ में मध्वाचार्य ने दस पदार्थ माने हैं – द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, विशिष्ट, अंशी, शक्ति, सादृश्य, अभाव। द्रव्य बीस माने गए हैं। शम, दम, कृपा, बल आदि को गुण माना गया है। तीन प्रकार के कर्म विहित, निषिद्ध, उदासीन हैं। द्वादशदर्शनसोपानावलि में उदाहरण देते हुए कहते हैं जिस प्रकार सामर्थ्यवान् मनुष्य अपने पुत्र-पौत्रादि को सुख से रहने के लिए घर बनाकर देता है, उसी प्रकार सब सामर्थ्य भगवान में है तथा अपने भक्तों के लिए सभी सुखों से युक्त पाञ्चभौतिक सृष्टि का निर्माण करता है।[530]

द्वैतवादी माध्व मत के अनुसार परमात्मा के द्वारा सृष्ट जगत् ज्ञेय है। अणुरूप श्रीहरि का सेवक ज्ञाता है। परमात्मा की निर्मिति में स्वत्वबुद्धि अज्ञान का स्वरूप है। नानाविध योनियों में जन्म तथा दुःख का अनुभव, दुःख का स्वरूप है। 'मै श्री हरि का सेवक हूँ', यह भावना ज्ञान का स्वरूप है। माध्व मत में प्रत्यक्ष, अनुमान व शब्द ये तीन प्रमाण माने गये हैं।

➢ **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** आनन्द को मधु कहते हैं और 'व' का अर्थ तीर्थ हैं। इसलिए पवन के तीसरे अवतार आनन्दतीर्थ मध्व कहलाते हैं। मध्व का यह सिद्धान्त द्वैतवाद कहा जाता है। ईश्वर तथा जीव में भेद ही है। ब्रह्म जगत् का निमित्त कारण है, उपादान कारण नहीं है।[531]

॥ विशिष्टाद्वैतवाद ॥

➢ **सर्वदर्शनसङ्ग्रह -** माधवाचार्य ने अनेकान्तवाद के खण्डन से रामानुज दर्शन का प्रारम्भ किया है। इनके मत में तीन पदार्थ माने गये हैं – चित्, अचित्, ईश्वर। चित जीव है। अचित् सम्पूर्ण दृश्यमान जगत् है। हरि अर्थात् विष्णु को ईश्वर माना गया है।[532]

चित् – चित् संकोच रहित, सीमाहीन, निर्मल ज्ञान स्वरूप, अनादि कर्मरूपी अविद्या से घिरा है, इसलिए अपने अपने कर्म के अनुसार ज्ञान का संकोच और विकास होना, भोगने योग्य अचित् वस्तुओं के संसर्ग में आना, उसके गुण के अनुसार ही सुख, दुःख इन दोनों का उपभोग करने से भोक्ता बनना, भगवान् के स्वरूप का ज्ञान, भगवान् के चरणों की प्राप्ति आदि जीवात्मा के स्वभाव कहा गया है।[533] **अचित् –** वस्तुएं भोग्य हैं, इनका अचेतन होना, पुरुषार्थों की प्राप्ति न करना, विकार प्राप्त करना आदि अचित् के स्वभाव है।[534]

---

530 द्वा. द. सो. ,पृ.१७९

531 प्र. भि. प्र. ,पृ, ४८

532 स. द. सं., पृ. १६१

533 स. द. सं., पृ. १८६

534 वही, पृ. १८७

ईश्वर – ईश्वर चित्, अचित् का नियन्ता, असीम ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य, शक्ति, तेज से युक्त, स्वेच्छा से चित्, अचित् वस्तुओं को उत्पन्न करना, अनन्त भूषणों को धारण करना आदि ईश्वर का स्वभाव बताया गया है।[535] अन्त में ईश्वर तथा उसकी पाँच मूर्तियाँ, उपासना के पाँच प्रकार, ब्रह्मसूत्र के प्रथम सूत्र की व्याख्या आदि का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है।

- **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप –** रङ्गेशनाथ मिश्र के अनुसार, रामानुज के मत में ब्रह्म के जीव तथा जगत् रूप विशेषणों से विशिष्ट तथा एक होने से विशिष्टाद्वैतवाद माना गया है। ब्रह्म सगुण है। जीव और जगत ब्रह्म के विशेषण हैं।[536]
- **द्वादशदर्शनसोपानावलि -** इसमें श्रीपादशास्त्री हसूरकर द्वारा सात प्रश्न उठाए गए हैं तथा उन्हीं बिन्दुओं को केन्द्रित कर रामानुजाचार्य का मत प्रस्तुत किया गया है जो निम्नवत् है –

    १. किं ज्ञेयम् ? सर्वदृश्यं चेश्वरशरीरभूतं जगत्

    २. कीदृशो ज्ञाता ? चेतनावानणुः

    ३. अज्ञानस्य स्वरूपं किं ? विषयेषु ममत्वभावना

    ४. दुःखस्य स्वरूपं किं ? नानाविधो मानसस्तापः

    ५. ज्ञानस्य स्वरूपं किं ? ईश्वरो नित्य, असङ्ख्य, मङ्गलगुणवानिति भावना

    ६. दुःखध्वंसस्य स्वरूपं किं ? भगवतः कृपया दुःखस्यापुनरावृत्तिः

    ७. एतेषु प्रमाणं किं ? प्रत्यक्षमनुमानं शब्दश्च[537]

विशिष्टाद्वैतवादी श्री रामानुज के मतानुसार समस्त दृश्य एवं अदृश्य ईश्वर शरीर भूत जगत् ज्ञेय है। चेतनावान् अणु ज्ञाता है। विषयों में ममत्व भावना अज्ञान का स्वरूप है। नानाविध मानसिक सन्ताप, दुःख का स्वरूप है। ईश्वर की कृपा से दुःखों की पुनरावृत्ति का न होना ही मोक्ष है। रामानुज मत इन सबकी सिद्धि में तीन प्रमाण मानता है – प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द।

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** दामोदर शास्त्री रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैतमत को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि रामानुजाचार्य चित्, अचित् और ईश्वर इन तीन तत्त्वों को मानते हैं। चित्, चेतन, भोक्ता जीव है।[538] ईश्वर सर्वज्ञ,कल्याणकारी, सर्वशक्तिमान्, स्वतः प्रकाशस्वरूप जगत् के स्वामी

---

535 वही, पृ. १८८

536 प्र. भि. प्र., पृ, ४८

537 द्वा. द. सो., पृ.१९७

538 स. द. कौ.,पृ.१८२

श्रीमन्नारायण है। इसमें शङ्कराचार्य और रामानुजाचार्य दोनों के मतों में समानता व विषमता की चर्चा की गई है।

॥ शुद्धाद्वैत ॥

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** इसमें कार्य-कारण रूप में ब्रह्म को शुद्ध माना गया है। माया का ब्रह्म के साथ सम्बन्ध नहीं है। दृश्यादृश्य सम्पूर्ण जगत् माया का लीलामात्र कहा गया है। माया को वस्तु नहीं माना गया है। सर्वदर्शनकौमुदी के 'शुद्धाद्वैत' नामक अध्याय में जीव को नित्य और अणु माना गया है। ब्रह्म और जीव के बीच अंश और अंशी भाव का सम्बन्ध है।[539]
- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** 'शुद्धाद्वैत' मत के प्रतिष्ठापक आचार्य वल्लभाचार्य है। इसको शुद्धाद्वैत इसलिए कहा जाता है कि यह माया के सम्बन्ध से रहित ब्रह्म का अद्वैत मानते हैं। वल्लभाचार्य के मत में ब्रह्म ही एकमात्र अद्वैत तत्त्व है। ब्रह्म कार्य और कारण दोनों रूपों में शुद्ध है। भगवान् श्रीकृष्ण परब्रह्म है। भगवान् की शक्ति और महिमा अनन्त है। भगवान् कृष्ण को एक और अनेक स्वीकार किया गया है।

  शुद्धाद्वैतवादी श्री वल्लभाचार्य के मतानुसार परमात्म-परिणाम रूप जगत् ज्ञेय है। ज्ञान व भक्ति का आश्रयी श्रीकृष्ण का सेवक ज्ञाता है। 'मै स्वतन्त्र व सुख आदि का भोक्ता हूँ' यह भावना अज्ञान का स्वरूप है। नानाविध दुःखप्रद योनियों में जन्म, दुःख का स्वरूप है और 'मै श्रीनाथ का सेवक हूँ' यह भावना ज्ञान का स्वरूप है। गोलोक की प्राप्ति तथा भक्ति और सुख में भेद-विस्मृति, दुःखध्वंस अथवा मोक्ष का स्वरूप है। श्री वल्लभाचार्य के मतानुसार भागवत और श्रुति ही प्रमाण है।[540] वल्लभ मत का श्लोकात्मक परिचय निम्न लिखित है –

सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति पठ्यते
सर्वं ब्रह्मात्मकं विश्वं इदमाबोध्यते पुरः ॥ १ ॥
सर्वशब्देन यावद्धि दृष्टश्रुतमहो जगत्
बोध्यते तेन सर्वं हि ब्रह्मरूपं सनातनम् ॥
कार्यस्य ब्रह्मरूपस्य ब्रह्मैव स्यात्तु कारणम् ॥ २ ॥[541]

---

539 वही, पृ. २०२

540 द्वा. द. सो.,पृ.२११

541 वही, पृ.२११

॥ अचिन्त्यभेदवाद ॥

सर्वदर्शनकौमुदी – अचिन्त्यभेदवाद के प्रवर्तक बलदेव विद्याभूषण है। इन्होंने 'ब्रह्मसूत्र' के ऊपर 'गोविन्दभाष्य' की रचना की है।[542] अचिन्त्यभेदवाद में पाँच पदार्थ माने गये हैं – ईश्वर, जीव, प्रकृति, काल, कर्म। इसमें निष्काम कर्म करने वाला, सत्संगसेवी, श्रद्धालु, शम, दमादि सम्पन्न जीव ही ब्रह्मज्ञान का अधिकारी है। इसमें वन्दनीय, विशुद्ध, अनन्त, गुणशाली, अचिन्त्य, अनन्त शक्ति सम्पन्न, सत्, चित्, आनन्द, पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण इसके विषय है। इनके साक्षात्कार से मोक्षप्राप्ति संभव है।[543]

इनके मत में आठ प्रमेय पदार्थ हैं – श्रीकृष्ण परमोत्तम वस्तु, निखिलशास्त्रसम्पन्न, विश्व सत्य है। उनका भेद सत्य है। जीव हरि का दास है। जीव का सघन तारतम्य होना, श्रीकृष्ण के चरण लाभ से मुक्ति, निर्गुण हरि की भजन रूप तथा अपरोक्ष ज्ञान रूपी भक्ति ही मुक्ति का हेतु है। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द तीन प्रमाण हैं।[544]

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, वल्लभसिद्धान्त – वल्लभ का मत शुद्धाद्वैत कहलाता है। शङ्कराचार्य की तरह यह माया को नहीं मानते हैं।[545]

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, भास्करसिद्धान्त – भास्कर के सिद्धान्त में भेदाभेदवाद माना गया है। ब्रह्म और जीव में परस्पर भेद तथा अभेद दोनों हैं।[546]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, रसेश्वर-दर्शन – सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार इसको आयुर्वेद दर्शन भी कहते हैं। रसेश्वर-दर्शन में जीवन्मुक्ति के लिए रस अर्थात् पारद-रस का प्रयोग अनिवार्य माना गया है। पारद रस से शरीर अजर–अमर हो जाता है। आयुर्वेद में त्वचा, रक्त, मांस, मेदस्, अस्थि और मज्जा से जो शरीर बनता है, वह अनित्य है। जब इसमें पारद और अभ्रक का संयोग हो जाता है, तो यह नित्य हो जाता है। पारद शिव की सृष्टि तथा अभ्रक पार्वती की सृष्टि है।[547] इनके सम्मिलन से शरीर नित्य हो जाता

---

542 वही, पृ. २०३

543 वही, पृ. २१३

544 द्वा. द. सो., पृ, २१५

545 प्र. भि. प्र.,पृ, ४८

546 वही, पृ, ४७

547 स. द. सं., पृ. ३२५

है। इसमें पारद के मूर्छित, मृत और बद्ध भेद बतलायें गये हैं । पारद के अठारह संस्कार होते हैं। पारद रस से व्यक्ति मृत्यु के भय से रहित हो जाता है – 'एकोऽसौ रसराजः शरीरमराजमरं कुरुते'।[548]

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, रसेश्वर-दर्शन – प्रत्यभिज्ञाप्रदीप में जीवित रहते हुए मुक्ति बतलायी गयी है। देह के स्थिर होने पर ज्ञान के अभ्यास से मुक्ति प्राप्त होती है। दिव्य शरीर की प्राप्ति के लिए पारद का सेवन करना चाहिए। विधि के अनुसार सेवन करने पर यह रसराज पारद अपने दिव्य गुणों से शरीर को अजर तथा अमर बना देता है।[549] यह पारद सांसारिक दुःखों के विनाश के लिए है। यह संसार से पार करता है, अतः इसे पारद कहते हैं। रस का सेवक महेश्वरभक्त समाधि में लीन होकर पुरूषार्थों को प्राप्त कर लेता है।[550]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, पाणिनि-दर्शन – व्याकरण शास्त्र प्रकृति प्रत्यय के विभाग के लिए प्रसिद्ध है। 'अथ शब्दानुशासनम्' तथा शब्दानुशासन के प्रयोजन पर विचार किया गया है। माधवाचार्य ने वाक्यपदीय, ब्रह्मकाण्ड की प्रथम कारिका उद्धृत करते हुए शब्द ब्रह्म का स्वरूप बतलाया है –

अनादिनिधनं ब्रह्म शब्दतत्त्वं यदक्षरम्।

विवर्ततेऽर्थभावेन प्रक्रिया जगतो यतः ॥[551]

पद की संख्या के विषय में कहते हैं कि –

द्विधा कैश्चित्पदं भिन्नं चतुर्धा पञ्चधाऽपि वा।

अपोद्धृत्यैव वाक्येभ्यः प्रकृति प्रत्ययादिवत् ॥[552]

स्फोटवाद के विषय में नैयायिकों, मीमांसकों अन्य आपत्तियों का समाधान किया गया है तथा स्फोटवाद की स्थापना की गई है। व्याकरण को मोक्ष का मार्ग कहा गया है –

तद् द्वारमपवर्गस्य वाङ्मलानां विचिकित्सितम्।

पवित्रं सर्वविद्यानामधिविद्यं प्रचक्षते ॥[553]

---

548 वही, पृ. ३३३

549 प्र. भि. प्र.,पृ, ५४

550 वही, पृ, ५५

551 स. द. सं., पृ. ५०४

552 वही, पृ. ५०५

553 वही, पृ. ५२५

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, पाणिनि-दर्शन – प्रत्यभिज्ञाप्रदीप के अन्तर्गत जगत का उपादान स्फोट रूप शब्द ब्रह्म है। यह सकल प्रपञ्चों का विस्तार नित्य करता है। वह अक्षर शब्द ब्रह्म आदि तथा अन्त से रहित है। वाणी के मलों का प्रक्षालक तथा समस्त विद्याओं में पवित्र व्याकरण शास्त्र अपवर्ग का द्वार है।[554] अन्त में व्याकरण दर्शन के ग्रन्थों तथा व्याकरण के प्रयोजन और वेदाङ्गों का वर्णन किया गया है।

नकुलीश पाशुपत दर्शन – महेश्वर दार्शनिक वैष्णव मत को स्वीकार नहीं करते हैं क्योंकि दास जीव मोक्ष में भी परतन्त्र होते हैं।[555] प्रखर प्रतिभाशाली तथा मोक्ष में स्वतन्त्रता चाहने वाले माहेश्वर पाशुपत शास्त्र को मानते हैं। इसमें पशु, पति, पाश तीन तत्त्व है। पशु जीव है। पति शिव है। पाश सांसारिक बन्धन है।[556]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, नकुलीश–पाशुपत दर्शन - वैष्णवों का खण्डन करने के उपरान्त नकुलीश-पाशुपत दर्शन के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है। पाशुपत दर्शन के संस्थापक नकुलीश है। पाशुपत दर्शन के मूलाधार कार्य, कारण, योग, विधि और दुःखान्त है। 'पाशुपत' शब्द पशुपति शिव से बना है। पशु सभी प्राणियों को कहते हैं–

ब्रह्माद्याः स्थावरान्ताश्च देवदेवस्य शूलिनः।

पशवः परिकीर्त्यन्ते समस्ताः पशुवर्तिनः ॥[557]

आठ पंचक लाभ, मल, उपाय, देश, अवस्था, विशुद्धि, दीक्षाकारी और बल, पाँच- पाँच भेदों से युक्त गण जानने योग्य है और एक गण तीन भेदों का है। इन नौ गणों का ज्ञाता और जो संस्कार करने वाला है वह गुरु कहलाता है।[558] सर्वदर्शनसङ्ग्रह के नकुलीश पाशुपत मत में पाशुपत सूत्र की व्याख्या, दुःखान्त, कार्य, कारण, विधि आदि का वर्णन है।

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, शैव दर्शन – शैव दर्शन में पति, पशु, पाश ये तीन पदार्थ माने गये हैं। पति पदार्थ से शिव का ज्ञान होता है। मुक्त आत्मा वाले विद्येश्वर आदि शिव है। परमेश्वर के पराधीन होने से वे स्वतन्त्र नहीं है। मुक्त परमेश्वर के विषय में कहा गया है कि –

मुक्तात्मनोऽपि शिवाः किं त्वेते यत्प्रसादतो मुक्ताः।

---

554 प्र. भि. प्र.,पृ, ५५-५६

555 वही, पृ, ५४

556 वही, पृ, ५४

557 स. द. सं. की हिन्दी व्याख्या पर उद्धृत, पृ. २५५

558 स. द. सं., पृ. २५६

सोऽनादिमुक्त एको विज्ञेयः पञ्चमन्त्रतनुः ॥[559]

पशु तीन प्रकार का है – विज्ञानाकल, प्रलयाकल, सकल। विज्ञानाकल मलयुक्त, प्रलयाकल मल और कर्म से युक्त, सकल मल, माया, कर्म से युक्त होता है। पाश चार प्रकार का होता है – मल, कर्म, माया और रोधशक्ति। आत्मा की स्वाभाविक ज्ञान और क्रिया की शक्तियों का आच्छादित करना मल है। ज्ञान और क्रिया की शक्तियों को ढक देने की सामर्थ्य ही रोधशक्ति है जो मल में स्थित है। फल के इच्छुक व्यक्ति जो कार्य करें वह कर्म है। प्रलयकाल में जिसमें सारा संसार सीमित हो जाता है तथा सृष्टिकाल में अभिव्यक्त होता है, वह माया है।[560]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन – प्रारम्भ में प्रत्यभिज्ञा का स्वरूप तथा साहित्य पर प्रकाश डाला गया है –

"सूत्रं वृत्तिर्विवृतिलघ्वी वृहतीत्युभे विमर्शिन्यौ।

प्रकरणविवरणपञ्चकमिति शास्त्रं प्रत्यभिज्ञायाः ॥"[561]

प्रत्यभिज्ञादर्शन में शिव की तीन शक्तियाँ है ज्ञान, इच्छा और क्रिया। संसार की रचना ईश्वर की इच्छा से होती है। अन्त में आभासवाद, उपादान कारण, पदार्थों की उत्पत्ति, जीव संसार का सम्बन्ध आदि का वर्णन प्राप्त होता है।

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप में श्रीकण्ठ का शैवविशिष्टाद्वैत, श्रीपति का वीरशैवविशिष्टादवैत, निम्बार्क का द्वैताद्वैत, बलदेव का अचिन्त्यभेदाभेद आदि का संक्षेप में वर्णन प्राप्त होता है।

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, शैव दर्शन – इसमें भी पशु, पति, पाश तीन पदार्थ माने गये हैं। पति ईश्वर, पशु जीव तथा पाश संसार का बन्धन है।[562]

इस प्रकार उपलब्ध सङ्ग्रह-ग्रन्थों में भारतीय दर्शनों के सभी पक्षों का अत्यन्त परिष्कृत तथा सुगम शैली के द्वारा वर्णन किया गया है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों की भाषा शैली सरल तथा सुबोध होने से दार्शनिक तथ्यों को समझने में सरलता का अनुभव होता है। अतः सङ्ग्रह ग्रन्थ समाज में अधिक प्रचलित हो

---

559 स. द. सं., पृ. २८६

560 वही, पृ. २९४-९६

561 वही, पृ. ३००

562 प्र. भि. प्र. ,पृ, ५४

सके हैं। सभी मतों का बड़ी सहजता से वर्णन किया गया है तथा वाद-विवाद के विषयों को भी बड़ी सरलता से समझाया गया है।

अध्याय–तृतीय

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में द्रव्य का स्वरूप

सङ्ग्रह ग्रन्थों में प्रतिपादित द्रव्य व उनके विभिन्न भेदों का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में पृथिवी का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में जल का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में तेज का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वायु का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में आकाश का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में काल का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में दिक् का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में आत्मा का स्वरूप

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में मन का स्वरूप

अध्याय–तृतीय

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में द्रव्य का स्वरूप

संसार में प्रत्येक मनुष्य दुःखी है। दुःख से निवृत्ति के लिए मनुष्य मोक्ष-मार्ग का अन्वेषण करता है। भारतीय-दर्शन दुःख निवृत्ति का मार्ग बताता है। वैशेषिक-दर्शन में भी दुःखों से छुटकारा पाने का मार्ग पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य का ज्ञान प्राप्त करना है। मनुष्य जब संसार में विद्यमान प्रत्येक वस्तु के गुणों व अवगुणों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है तब संसार के पदार्थों से विरक्ति होने लगती है। जब मनुष्य इस सांसारिक भोग पदार्थों से विरक्त हो जाता है तब ही साधना करके दुःखों से मुक्त हो जाता है। दुःखों से मुक्ति का मार्ग पदार्थों के ज्ञान के बिना असंभव है।

वैशेषिक-दर्शन द्वारा प्रतिपादित सात पदार्थों में सर्वप्रथम एवं सर्वप्रधान पदार्थ द्रव्य है। यह एक ऐसा पदार्थ है जिसके द्वारा वैशेषिक अपने को आदर्शवादी दर्शन पद्धतियों के समक्ष एक यथार्थवादी-बाह्यार्थवादी दर्शन के रूप में खड़ा करता है। द्रव्य अन्य सारे पदार्थों का आश्रयभूत है। न्याय-वैशेषिक में द्रव्य की पृथक् सत्ता मानी गयी है क्योंकि अगर इसकी पृथक् सत्ता नहीं मानी जाएगी तो यह जगत् मिथ्या सिद्ध हो जाएगा तथा समस्त जगत् की सत्ता ही विलुप्त हो जाएगी। यह दर्शन विशुद्ध यथार्थवादी एवं लोकानुभववादी दर्शन है जो मानता है कि संसार के सब पदार्थों की सत्ता, ज्ञाता के ज्ञान से स्वतन्त्र, निरपेक्ष एवं पृथक् है।

द्रव्य एक शास्त्रीय पारिभाषिक शब्द है। लोक में इसे बहुमूल्य वस्तु, ठोस अथवा यदा-कदा तरल पदार्थ भी माना जाता है। आप्टे ने इसके कई अर्थ गिनाये हैं, यथा – वस्तु, सामग्री, पदार्थ, समान, अवयव, उपादान, औषधि, धन, लज्जा, शालीनता, काँसा, मदिरा, शर्त आदि।[563] वैशेषिक दर्शनानुसार कणाद ने इसे क्रिया, गुण से युक्त समवायिकारण कहा है।[564] विभिन्न सङ्ग्रह ग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक-दर्शन में पदार्थों का स्वरूप तथा प्रथम पदार्थ द्रव्य का वर्णन निम्नलिखित है –

सङ्ग्रह ग्रन्थों में प्रतिपादित द्रव्य व उनके विभिन्न भेदों का स्वरूप

---

563 संस्कृत हिन्दी कोश, पृ. ३७५

564 क्रियागुणवत्समवायिकारणमिति द्रव्यलक्षणम्। वै. सू. १/१/१५

षड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित द्रव्य

आचार्य हरिभद्रसूरि कहते हैं कि वैशेषिकों तथा नैयायिकों में देवता के स्वरूप के विषय में कोई मतभेद नहीं है। तत्त्वों की सङ्ख्या तथा स्वरूप के विषय में दोनों के मत पृथक् हैं। षड्दर्शनसमुच्चय के प्रारम्भ में ही कहा गया है कि इसमें देवता तथा तत्त्व के विषय में ही कथन किया गया है – **"देवतातत्त्वभेदेन ज्ञातव्यानि महर्षिभिः"।**[565] न्यायदर्शन में देवता के विषय में कहते हैं कि शिव जगत् की सृष्टि तथा संहार करने वाले व्यापक, नित्य, एक, सर्वज्ञ तथा नित्यज्ञानशाली हैं अर्थात् यही स्वरूप वैशेषिक-दर्शन में भी मान्य है।[566]

षड्दर्शनसमुच्चय के अन्तर्गत वैशेषिक-दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष व समवाय ये छः पदार्थ स्वीकार किए गए हैं -

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं च चतुर्थकम्।

विशेषसमवायौ च तत्त्वषट्कं तु तन्मते ॥[567]

षड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित वैशेषिक-दर्शन में द्रव्य - पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन ये नौ द्रव्य षड्दर्शनसमुच्चय में भी मान्य हैं -

तत्र द्रव्यं नवधा भूजलतेजोऽनिलान्तरिक्षाणि।

कालदिगात्ममनांसि च गुणः पुनः पञ्चविंशतिधा ॥[568]

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य

वैशेषिक-दर्शन में कुछ आचार्यों ने इसे भाष्य की श्रेणी में रखकर प्रशस्तपादभाष्य कहा है।[569] इस ग्रन्थ के मङ्गलाचरण में भी इसको सङ्ग्रह ही कहा गया है –

"प्रणम्य हेतुमीश्वरं मुनिं कणादमन्वतः।

---

565 ष.स .द ., कारिका-२

566 वही, कारिका-३

567 वही, कारिका-६०

568 वही, कारिका-६१

569 व्योमवती, पृ.२०, न्यायकन्दली, पृ. ६९६

पदार्थधर्मसङ्ग्रहः प्रवक्ष्यते महोदयः ॥"[570]

पारिभाषिक दृष्टि से भी यह सङ्ग्रह प्रतीत होता है। सङ्ग्रह का लक्षण इस प्रकार है–

"विस्तरेणोपदिष्टानामर्थानां सूत्रभाष्ययोः।

निबन्धो यः समासेन सङ्ग्रहन्त विदुर्बुधाः ॥"[571]

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में पदार्थ

पदार्थ – प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार पदार्थ उसको कहते हैं कि जिसमें अस्तित्व, अभिधेयत्व, ज्ञेयत्व रहते हैं - **षण्णामपि पदार्थानामस्तित्वाभिधेयत्वज्ञेयत्वानि।**[572] संसार में जो पदार्थ उत्पन्न हुए हैं, उनका अस्तित्व होता है। किसी वस्तु के अस्तित्व को ही उसका स्वरूप कहा जा सकता है। जिसको शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त कर सकते हैं, उसको अभिधेय कहते हैं। जिसका ज्ञान हो सकता है, उसे ज्ञेयत्व कहते हैं।

प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार पदार्थ छः हैं - द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय।

द्रव्य – पदार्थधर्मसङ्ग्रह ग्रन्थ के अनुसार वैशेषिक-दर्शन में द्रव्य नौ हैं – **'द्रव्याणि पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि'**।[573]

१.पृथिवी २. जल ३. तेज ४.वायु ५.आकाश ६.काल ७.दिक् ८.आत्मा ९.मन

१.पृथिवी – प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार पृथिवीत्व रूप जाति विशेष के साथ समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध द्रव्य पृथिवी कहलाता है अर्थात् **'पृथिवीत्वाभिसम्बन्धात् पृथिवी'**।[574] गन्ध जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहती है, वह पृथिवी है।[575] प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार पृथिवी में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व तथा संस्कार ये चौदह

---

[570] प. ध. सं., पृ.१

[571] वही, भूमिका, पृ.२७

[572] वही, पृ.६

[573] वही, पृ.३

[574] प. ध. सं., पृ.१५

[575] वही, पृ.१६

गुण रहते हैं –

‘रूपरसगन्धस्पर्शसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वसंस्कारवती।’

रूप – पदार्थधर्मसङ्ग्रह ग्रन्थ के अनुसार रूप के सात प्रकार होते हैं। वैशेषिक-दर्शन में प्रतिपादित शुक्ल, नील, पीत, रक्त, हरित, चित्र व कपिश ये सात प्रकार के रूप माने गये हैं।[576]

रस – मधुर, अम्ल, लवण, कटु, कषाय, और तिक्त ये छः प्रकार रस के होते हैं - **‘रसः षड्विधो मधुरादिः**

।’[577]

गन्ध – गन्ध सुरभि और असुरभि रूप से दो प्रकार की होती है। **‘गन्धो द्विविधः**

सुरभिरसुरभिश्च।’[578]

स्पर्श – पृथिवी का स्पर्श अनुष्णाशीत होता हुआ तेज के संयोग से परिवर्तन स्वभाव वाला होता है। **‘स्पर्शोऽस्या अनुष्णाशीतत्वे सति पाकजः।’**[579]

पृथिवी में सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व ये सात गुण तथा कर्म रूपवान् द्रव्यों में समवेत होने से चाक्षुष प्रत्यक्ष के विषय होते हैं।[580]

पृथिवी के भेद – प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार पृथिवी नित्य व अनित्य रूप से दो प्रकार की है। परमाणु रूप नित्य है तथा कार्य रूप अनित्य है। यह गाढ़ तथा शिथिल आदि अवयवों के संयोग-विभाग से युक्त घटत्व-पटत्व इत्यादि रूप अपर जातियों से युक्त शय्या, आसन इत्यादि कार्य का उत्पादक होने से प्राणियों का उपकार करने वाली भी है।

प्रशस्तपादभाष्य के अनुसार शरीर दो प्रकार का है –

१. योनिज
२. अयोनिज

---

[576] त. स. दी., पृ.१४

[577] वही, पृ.१६

[578] वही, पृ.१६

[579] वही, पृ.१६

[580] वही, पृ.१६

योनिज शरीर निम्न भेद से तीन प्रकार का होता है -

- शरीर
- इन्द्रिय
- विषय

२. अयोनिज शरीर -

जिसमें वीर्य और रज की अपेक्षा नही होती है, उसे अयोनिज शरीर कहते हैं। यह देवर्षियों का होता है। धर्मविशेष सहित परमाणुओं से उत्पन्न होता है। **'तत्रायोनिजमनपेक्ष्य शुक्रशोणितं देवर्षीणां शरीरं धर्मविशेषसहितेभ्योऽणुभ्यो जायते।'**[581]

कीड़े-मकोड़े इत्यादि तुच्छ प्राणियों के यातना भोगने वाले शरीर दुःखसाधक अधर्म विशेष से संयुक्त परमाणुओं से उत्पन्न होते हैं। वीर्य और रज के सन्निपात से उत्पन्न शरीर योनिज कहलाता है। यह दो प्रकार का होता है –

१. जरायुज

२. अण्डज

जरायु अर्थात् गर्भाशय से उत्पन्न होने वाले को जरायुज कहते हैं। जैसे मनुष्य अथवा पशु का शरीर। अण्डे से उत्पन्न अण्डज शरीर कहलाता है। यथा – पक्षी तथा सरकने वाले सर्पादि का शरीर।[582] प्रशस्तपादाचार्य के अनुसार द्वयणुक से लेकर ब्रह्माण्ड पर्यन्त सभी पार्थिव वस्तुयें 'विषय' हैं।

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में विषय को तीन भागों में बाँटा गया है –

१. मृत्तिका अर्थात् मिट्टी
२. पाषाण अर्थात् पत्थर
३. स्थावर अर्थात् वृक्षादि

'विषयस्तु द्वयणुकादिक्रमेणारब्धस्त्रिविधो - मृतपाषाणस्थावरलक्षणः।'[583]

---

[581] प. ध. सं., पृ.१७

[582] प. ध. सं., पृ.१९

[583] वही, पृ.१९

जल – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार जलत्व रूप जाति विशेष के साथ समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध जल है- '**अस्वाभिसम्बन्धादापः**।'[584] जल में रूप, रस, स्पर्श, द्रवत्व, स्नेह, सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, संस्कार यह चौदह गुण रहते हैं। '**रूपरसस्पर्शद्रवत्वस्नेहसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वसंस्कार ..... वत्यः**।'[585]

जल में शुक्ल रूप गुण, मधुर रस तथा शीतस्पर्श रहता है।[586] जल में स्नेह नामक गुण तथा स्वभाविक द्रवत्व पाया जाता है। यह भी दो प्रकार का होता है – १. नित्य २. अनित्य

कार्य रूप जल निम्न भेद से तीन प्रकार का है - **'शरीरेन्द्रियविषयसञ्ज्ञकम्'**

१. शरीर

२. इन्द्रिय

३. विषय।[587]

जलीय शरीर अयोनिज कहलाता है। जल रूप देवता वाले जल रूप संसार में पार्थिव द्रव्य के अवयवों के धारण से ही सुख-दुःखादि के अनुभव में समर्थ है।[588]

जलीय इन्द्रिय सम्पूर्ण प्राणियों का मधुरादि रस को प्रकट करने वाला, जल से भिन्न पृथिवी आदि के अवयवों से रहित केवल जलीय अवयवों से उत्पन्न रसनेन्द्रिय अर्थात् जिह्वा कहलाती है।[589] जलीय विषय नदी, समुद्र, बर्फ, ओले आदि हैं।[590]

---

[584] वही, पृ.२०

[585] वही, पृ.२०

[586] वही, पृ.२०

[587] प. ध. सं., पृ.२१

[588] वही, पृ.२१

[589] वही, पृ.२२

[590] वही, पृ.२२

तेज – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार 'तेजत्व' जाति से साक्षात् समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध तेज कहलाता है अर्थात् **'तेजस्त्वाभिसम्बन्धात् तेजः।'**[591] तेज में रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग-विभाग, परत्व-अपरत्व, द्रवत्व तथा संस्कार ये ग्यारह गुण रहते हैं। **'रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वद्रवत्वसंस्कारवत्।**[592]

तेज का गुण केवल भास्वर शुक्ल है। उष्ण, स्पर्श, तेज का स्वभाविक गुण है।[593]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार तेज दो प्रकार है –

१. कारणरूप नित्य
२. कार्यरूप अनित्य

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार कार्यरूप अनित्य तेज तीन प्रकार का है –

१. शरीर
२. इन्द्रिय
३. विषय[594]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार तैजस शरीर अयोनिज है। यह पृथिवी पर नहीं, अपितु आदित्यलोक या सूर्यलोक में ही पाए जाते हैं तथा पार्थिव अवयवों के उपष्टम्भ से ही उपभोग योग्य बनते हैं।[595]

तैजस इन्द्रिय सभी प्राणियों के शुक्लादि रूप को प्रकट करने वाली तेज से भिन्न पार्थिवादि से रहित केवल तेज द्रव्य के अवयवों से उत्पन्न 'चक्षुः' है। **'इन्द्रियं सर्वप्राणिनां रूपव्यञ्जकमन्यावयवानभिभूतैस्तेजोवयवैरारब्धं चक्षुः।'**[596]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार तेज का विषय चार प्रकार का होता है –

---

591 वही, पृ.२२

592 वही, पृ.२२

593 वही, पृ.२२

594 वही, पृ.२२

595 प. ध. सं., पृ.२३

596 वही, पृ.२३

१. **भौम –** लकड़ी आदि इन्धन से उत्पन्न ऊपर उठने वाला, पकाना, जलाना इत्यादि कार्य करने में समर्थ भौम रूप तेज है।[597]

२. **दिव्य –** आकाश में उत्पन्न होने से दिव्य नामक तेज है। जल रूप इन्धन से उत्पन्न होने वाला सूर्यकिरण तथा विद्युतादि दिव्य तेज है। **'दिव्यमबिन्धनं सौरविद्युदादि।'**[598]

३. **औदर्य –** भोजन किए अन्न को पचाने वाला जठराग्नि औदर्य तेज के अन्तर्गत आता है।[599]

४. **आकरज –** खान में उत्पन्न सुवर्णादि तैजस के विषय जब पृथिवी से युक्त होते हैं तो रसादि विषयों की प्राप्ति होती है। **आकरजं च सुवर्णादि।**[600]

वायु – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार वायुत्व जाति के साथ साक्षात् समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध द्रव्य वायु कहा जाता है। **वायुत्वाभिसम्बन्धद्वायुः।**[601] इसमें स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग-विभाग, परत्व-अपरत्व तथा वेग नामक नौ गुण रहते हैं।[602] वायु में रहने वाला स्पर्श गुण अनुष्णाशीत होता है तथा तेजः संयोग से परिवर्तन-शील नही होता है। रूपरहित द्रव्यों में संख्यादि गुणों का चाक्षुष प्रत्यक्ष नहीं होता है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग-विभाग, परत्व-अपरत्व तथा वेग नामक संस्कार ये आठ गुण वायु में रहते हैं।[603]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार वायु के भेद – यह वायु दो प्रकार है –

१. कारणरूप नित्य (अणुरूप)

२. कार्यरूप अनित्य

अनित्य कार्य रूप वायु के चार भेद होते हैं –

१. शरीर

२. इन्द्रिय

---

597 वही, पृ.२३

598 वही, पृ.२३

599 वही, पृ.२४

600 वही, पृ.२४

601 वही, पृ.२४

602 प. ध. सं., पृ.२४

603 वही, पृ.२६

३. विषय

४. प्राण[604]

१. **शरीर –** वायु का शरीर अयोनिज होता है। यह वायुलोक में पार्थिव भाग के सम्बन्ध में जलीयादि शरीर के समान सुखभोग में समर्थ होता है। **तत्र अयोनिजमेव शरीरं मरूतां लोके पार्थिवावयवोपष्टम्भाच्चोपभोगसमर्थम्।**[605]

२. **इन्द्रिय –** प्राणिमात्र का शीत स्पर्श का ग्रहण करने वाला, पृथिव्यादि अवयवों से अस्पष्ट, केवल वायु द्रव्य के अवयवों से उत्पन्न हुआ, सम्पूर्ण शरीर में व्यापक त्वगिन्द्रिय कहा जाता है।[606]

३. **विषय –** विषय रूप द्रव्य प्रत्यक्ष अनुभव होने वाले शीतादि स्पर्श का आधारस्वरूप है। स्पर्श, शब्द, धारण तथा कम्प रूप हेतुओं से वायु रूप विषय का अनुमान होता है। **विषयतूपलभ्यमानस्पर्शाधिष्ठानभूतः स्पर्शशब्दधृतिकम्पलिङ्गस्तिर्यग्गमन स्वभावो मेघादिप्रेरणादिसमर्थः।**[607]

वायु के अप्रत्यक्ष होने पर भी यह अनेक प्रकार का होता है। इसका ज्ञान सम्मूर्छन अर्थात् मिश्रण से होता है। विरुद्ध दिशाओं से चले हुए समान वेग वाले दो वायुओं के मिलन को **सम्मूर्छन** कहते हैं।[608]

४. **प्राण –** प्राण रूप कार्य वायु द्रव्य शरीर के मध्य में अन्न, रस, मल तथा मज्जादि धातुओं के आलम्बन, धारण और विकारादि क्रियाओं को करने से उनका जनक है, जो वस्तुतः एक होने पर भी मुख तथा नासिका के द्वारा निकलना तथा प्रवेश करना, इस उपाधि से प्राण, नीचे ले जाने से अपान, चारों ओर ले जाने से समान, ऊपर की ओर ले जाने से उदान, नाड़ियों में फैलने से व्यान, इस प्रकार क्रिया के भेद होने से वायु भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है।[609]

---

604 वही, पृ.२६

605 वही, पृ.२६

606 वही, पृ.२६

607 प. ध. सं., पृ.२७

608 वही, पृ.२९

609 वही, पृ.२९

आकाश - पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार आकाश एक विभु, नित्य और अखण्ड तत्व है। इसलिए इसकी अपर जाति नहीं होती है। आकाश एक है, अतः इसके भेद नहीं होते हैं। आकाश में शब्द, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग ये छः गुण रहते हैं। **'शब्दसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागाः।'**[610]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार शब्द आकाश का विशेष गुण है। शब्दरूप गुण प्रत्यक्ष का विषय होते हुए पटादि के रूपादिकों के समान कारण के गुण से जन्म न होने से, आधार के रहने के समय तक न रहने से, आधार को छोड़कर दूसरे स्थान में प्राप्त होने से, स्पर्शवान् पृथिव्यादि वायुपर्यन्त चार द्रव्यों का गुण नहीं है। शब्द आत्मा का गुण नही है क्योंकि शब्द का प्रत्यक्ष बाह्येन्द्रियों से होता है, जबकि आत्मा के गुणों का प्रत्यक्ष अन्तरिन्द्रिय मन से होता है। शब्द दिशा, काल और मन का भी गुण नही है क्योंकि वैशेषिक-दर्शन में श्रोत्रग्राह्य होने तथा विशेष गुण होने से शब्द दिशा, काल एवं मन का भी गुण नही है। अतः कहा जा सकता है कि इनका कोई विशेष गुण नही होता है।[611]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार पृथिवी, जल, तेज, वायु, दिशा, काल आत्मा एवं मन इन आठों द्रव्यों का शब्दाश्रय के रूप में निषेध होने पर केवल आकाश ही शेष रहता है अतः यही शब्द का आश्रय है, क्योंकि शब्द गुण है और आकाश द्रव्य है। गुण हमेशा द्रव्याश्रित ही होता है।

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार द्रव्य सब प्राणियों की शब्दोपलब्धि का श्रोत्रभाव से निमित्त कारण है। श्रोत्र का अभिप्राय 'कर्णशष्कुली' में स्थित श्रोत्रेन्द्रिय नामक आकाश से है।[612]

प्रशस्तपाद के अनुसार धर्माधर्म रूप निमित्त का अभाव ही बधिरता है क्योंकि शब्द के भोग का प्रापक धर्माधर्म रूप अदृष्ट वहाँ सक्रिय नहीं होता है।[613]

काल – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार परत्व-अपरत्व, युगपत्, चिर तथा क्षिप्र प्रतीतियों का हेतु काल है। **कालः परापरव्यतिकरयौगपद्यचिरक्षिप्रप्रत्ययलिङ्गम्।**[614] द्रव्यादि पदार्थों में परापरादि

---

[610] वही, पृ.२९

[611] प. ध. सं.,पृ.४३

[612] वही, पृ.४३

[613] वही, पृ.४१

[614] वही, पृ.४१

प्रत्यय द्रव्यादि ज्ञान से विलक्षण हैं। उनके उत्पन्न होने में काल द्रव्य से भिन्न निमित्त न होने से जो यह कालिक परत्वादि व्यवहार में निमित्त कारण है, वह काल नामक द्रव्य है।[615]

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में सभी कार्यों के उत्पत्ति, स्थिति, विनाश का हेतु काल को स्वीकार किया गया है। यह काल क्षण, लव, निमेष, काष्ठा, कला, मुहूर्त, याम, अहोरात्र, अर्धमास, मास, ऋतु, अयन, संवत्सर, युग, कल्प, मन्वन्तर, प्रलय तथा महाप्रलय का कारण है। आकाशादि द्रव्यों से भेद सिद्धि करने वाले विशेष गुण काल में नही हैं, यही दिखाने के लिए उसके साधारण गुण भाष्यकार ने बतलाए हैं कि काल नामक द्रव्य में संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग-विभाग ये गुण रहते हैं।[616]

युगपत् उत्पन्न हुआ इत्यादि प्रत्ययों के सर्वत्र कार्य में समान होने से काल में एक संख्या नामक गुण रहता है। काल का सर्वोत्कृष्ट परममहत्परिमाण गुण है। काल में संयोग होने से उस संयोग का नाशक विभाग नामक सामान्य गुण भी है। आकाश के समान काल भी द्रव्य है, यह एक, नित्य, विभु है।[617]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार कहते हैं कि ज्येष्ठ, कनिष्ठादि व्यवहारों के सर्वत्र समान होने से काल, द्रव्य के एक होने पर भी संसार के कार्य प्रारम्भ, समाप्ति, स्वरूपस्थिति तथा विनाश आदि भेद उपाधियों के कारण भिन्न-भिन्न प्रतीत होते हैं।[618]

दिशा – पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर इत्यादि प्रतीतियों से दिशा नामक द्रव्य सिद्ध होता है। किसी मूर्त द्रव्य को अवधि मानकर उसकी अपेक्षा अन्य मूर्त्त द्रव्यों में पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि प्रतीतियाँ जिसके द्वारा होती है, वही दिशा है। **'दिक् पूर्वापरादिप्रत्ययलिङ्गा।'**[619] दिशा नामक द्रव्य में भी संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग ये पाँच गुण पाए जाते हैं। प्रशस्तपाद के अनुसार काल के समान दिशा भी संख्या में एक है। ऋषियों द्वारा किए गए वाक्य-प्रयोगों के औचित्य के लिए उसके दस नाम हैं। ये नाम औपाधिक हैं क्योंकि ये मेरु परिक्रमा के कारण जन्य संयोग-विशेषों पर आधारित हैं।[620]

---

615 वही, पृ.४१

616 प. ध. सं., पृ.४३

617 वही, पृ.४३

618 वही, पृ.४४

619 वही, पृ.४६

620 वही, पृ.४६

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार दिशा के दस औपाधिक भेदों के नाम उनके अधिष्ठाता लोकपालों के अनुसार इस प्रकार हैं अर्थात् **'तासामेव देवतापरिग्रहात् पुनर्दश सञ्ज्ञा भवन्ति माहेन्द्री वैश्वानरी याम्या नैर्ऋति वारूणी वायव्या कौबेरी ऐशानी ब्राह्मी नागी चेति'**–

१. माहेन्द्री (पूर्व)

२. वैश्वानरी (दक्षिण-पूर्व)

३. याम्या (दक्षिण)

४. नैर्ऋति (दक्षिण-पश्चिम)

५. वारुणी (पश्चिम)

६. वायव्या (उत्तर-पश्चिम)

७. कावेरी (उत्तर)

८. ऐशानी (उत्तर-पूर्व)

९. ब्राह्मी (ऊर्ध्व)

१०.नागी (अधः)[621]

मन - पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार मनस्त्व जाति से युक्त मन नामक द्रव्य है। **मनस्त्वयोगान्मनः।**[622] व्यापक आत्मा का सम्पूर्ण इन्द्रियों के साथ एक काल में सम्बन्ध तथा इन्द्रियों का पदार्थों के साथ सन्निकर्ष होने पर भी एक पदार्थ के ज्ञान के समय दूसरे के साथ सुख-दुःख नही होता है। आत्मा, इन्द्रिय तथा विषय के सम्बन्ध से सुखादि कार्य की उत्पत्ति में एक विशेष कारण की अपेक्षा करते हैं, क्योंकि उनके रहने पर भी कार्य की उत्पत्ति नही होती, यथा तन्तु आदि के रहने पर भी संयोग रूप विशेष कारण के न रहने पर पटोत्पत्ति नही होती है। इस अनुमान से ही मन की सिद्धि होती है।[623]

प्रशस्तपाद ने अपने भाष्य में मन की सिद्धि के लिए दो अन्य हेतु भी दिए हैं **'श्रोत्राद्यव्यापारे स्मृत्युत्पत्तिदर्शनात् बाह्यैन्द्रियैरगृहीतसुखादिग्राह्यान्तर-भावाच्चान्तःकरणम्'**।[624]

---

[621] प. ध. सं.,पृ.४७

[622] वही, पृ.५६

[623] वही, पृ.५६

[624] प. ध. सं., पृ.५७

१. स्मृति का हेतु मन है।
२. सुखादि साधक इन्द्रिय को मन कहा है।

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार मन में संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग-विभाग, परत्व-अपरत्व तथा संस्कार रूप वेग नामक ये आठ गुण वायु में रहते हैं। **'संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वसंस्काराः।'**[625] ये गुण मन के असाधारण धर्म हैं। प्रत्येक शरीर में एक मन रहता है। अतः संख्या में एकत्व की सिद्धि होती है। वैशेषिक-दर्शन में मन अनेक माने गये हैं। मन में संख्या नामक गुण है, अतः पृथक्त्व की सिद्धि हो जाती है क्योंकि जहाँ संख्या पायी जाती है वहाँ पृथक्त्व भी होता है।[626]

इसी भाष्य के अनुसार मन अणु परिमाण वाला है। मन में हटने तथा समीप आने रूप क्रिया होने से संयोग-विभाग नामक गुण सिद्ध होते हैं। व्यापकता होने से मूर्त द्रव्य होने कारण घटादि मूर्त द्रव्यों के समान परत्व-अपरत्व तथा वेग नामक संस्कार भी मन में पाये जाते हैं।[627]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार मन स्पर्शरहित होने से किसी द्रव्य का समवायिकारण नही है। मन में क्रिया है, अतः मूर्त्तत्व भी है। प्रशस्तपाद के अनुसार मन अज्ञ द्रव्य है। इन्द्रिय अथवा करण होने से मन की सत्ता अपने लिए नही, अपितु परार्थ है। मन एक द्रव्य है क्योंकि इसमें गुण और कर्म रहते हैं। प्रयत्न और अदृष्ट के कारण मन आशु गति वाला है। **'प्रयत्नादृष्टपरिग्रहवशादाशुसञ्चारि।'**[628]

आत्मा – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार आत्मत्व जाति के साथ समवाय सम्बन्ध से सम्बद्ध आत्मा है अर्थात् **'आत्मत्वाभिसम्बन्धादात्मा।'** [629]

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में अतिसूक्ष्म होने से आत्मा का प्रत्यक्षत्व स्वीकार नही किया गया है। (शब्दादि रूप विषयक ज्ञानादि क्रियाओं से भी उक्त क्रिया के आश्रयरूप कारण आत्मा की अनुमिति होती है।) **'तस्य सौक्ष्म्यादप्रत्यक्षत्वेसति करणैः शब्दाद्युपलब्ध्यनुमितैः श्रोत्रादिभिः समधिगमः क्रियते,**

---

625 वही, पृ.५७

626 वही, पृ.५७

627 वही, पृ.५७

628 प. ध. सं., पृ.५८

629 वही, पृ. ४७

वास्यादीनां करणानां कर्तृप्रयोज्यत्वदर्शनात्, शब्दादिषु प्रसिद्धया च प्रसाधकोऽनुमीयते। न शरीरेन्द्रियमनसामज्ञत्वात्।'[630]

प्रशस्तपाद के अनुसार शब्दादि-प्रत्यक्ष से अनुमित होने वाले श्रोत्रादि करणों से भी आत्मा का अनुमान होता है क्योंकि कुल्हाड़ी आदि करण बढ़ई रूप कर्त्ता के सम्बन्ध से ही छेदनादि कार्य करते देखे जाते हैं। अभिप्राय यह है कि करण अर्थात् इन्द्रियाँ अचेतन होने से स्वतः तो सक्रिय हो नही सकती, उनको चलाने वाला कोई चेतन अधिष्ठाता तो होना चाहिए, वही आत्मा है, यह सिद्ध होता है।[631]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार ज्ञान या चैतन्य शरीर का धर्म नही है क्योंकि वह शरीर घटादि की तरह भूत-द्रव्यों से उत्पन्न होता है तथा जितने भी कार्य भूतद्रव्यों से उत्पन्न होते हैं, वे सभी अचेतन होते हैं। इस विषय में हेतु यह है कि मृत शरीर में चैतन्य नही होता है।[632]

चैतन्य इन्द्रियों का धर्म नही है क्योंकि इन्द्रियाँ ज्ञान क्रिया के करण हैं। करण अचेतन होता है। ज्ञान मन का भी गुण नही है क्योंकि मन को चक्षुरादि अन्य कारणों से निरपेक्ष होकर ज्ञान का समवायिकारण मानें तो एक ही समय में एक व्यक्ति को आलोचन ज्ञान और स्मृति दोनो होनी चाहिए, जो कि अनुपपन्न है। मन स्वयं भी सुखादि का कारण है, अतः वह कर्त्ता नही हो सकता है।[633]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार आत्मा में बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग तथा विभाग ये चौदह गुण पाये जाते हैं। **तस्य गुणाः बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्कारसङ्ख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागाः।**[634]

इनमें से प्रथम नौ गुण आत्मा के विशेष गुण हैं। अन्तिम पाँच सामान्य गुण हैं।[635] धर्म तथा अधर्म आत्मा के गुण हैं। स्मरण की उत्पत्ति में संस्कार ही कारण होता है। सुखी-दुःखी इत्यादि व्यवस्था के नियम से अनेक संख्या तथा पृथक्त्व गुण भी आत्मा में पाया जाता है। आकाश के समान आत्मा

---

630 वही, पृ.४८

631 वही, पृ.४७

632 वही, पृ.४९

633 प. ध. सं., पृ.४९

634 वही, पृ.४९

635 वही, पृ.५४

भी विभु होने से सर्वोत्कृष्ट महत्परिमाणवान् है। सुख-दुःख इत्यादि विशेष गुणों के संयोग सम्बन्ध से उत्पन्न होने के कारण संयोग तथा संयोग नाशक होने से विभाग भी आत्मा का गुण है।[636]

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में वैशेषिकदर्शन को एक पक्ष के रूप में प्रस्तुत किया है। इसमें छः पदार्थ माने गये हैं। जिनके ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है[637] –

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं यत्परापरम्।

विशेषस्समवायश्च षट् पदार्था इहेरिताः ॥[638]

१. द्रव्य

२. गुण

३. कर्म

४. सामान्य

५. विशेष

६. समवाय

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में द्रव्य अथवा पदार्थ नौ प्रकार का स्वीकार किया गया है –

१. पृथिवी २. जल ३. तेज ४. वायु ५. आकाश ६. काल ७. दिक् ८. आत्मा ९. मन।

पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च।

दिक्कालात्ममनांसीति नव द्रव्याणि तन्मते ॥[639]

इन नौ द्रव्यों को व्याख्या करके इस प्रकार बताया गया है -

१. **पृथिवी** – गन्धवती पृथिवी है। **पृथिवी गन्धवती।** [640]

---

636 वही, पृ.५५

637 स.सं .सि ., पृ.२०

638 स. सि. सं., पृ. २१

639 वही, पृ. २१

640 वही, पृ.२१

२. **जल –** सरोवर में रहने वाला जल है। **आपः सरसः।**[641]

३. **तेज –** प्रभा तेज है। **तेजसः प्रभा।**[642]

४. **वायु –** अनुष्णाशीत स्पर्श गुण से युक्त वायु है। **अनुष्णाशीतसस्पर्शो वायु।**[643]

५. **आकाश –** शब्द जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह आकाश है। **शब्दगुणं नभः।**[644]

६. **काल –** चिर, क्षिप्र का ज्ञान कराने वाला काल है। **कालः चिरक्षिप्रप्रचिरागतः।**[645]

७. **दिक् –** पूर्व और अपर का निर्धारक लिङ्ग दिक् है। **दिक्पूर्वापरार्धलिङ्गा।**[646]

८. **आत्मा –** अहं प्रत्यय से सिद्ध आत्मा है। **आत्माहंप्रत्ययात्सिद्धः।**[647]

९. **मन –** अन्तःकरण को मन कहा गया है। **मनोऽन्तःकरणं।**[648]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में वैशेषिक-दर्शन को 'औलूक्य-दर्शन' कहा गया है। इसे विवेचन के क्रम में 'रसेश्वर-दर्शन' के बाद दसवें स्थान पर रखा गया है। इसके प्रारम्भ में दुःखों का अन्त शिव के साक्षात्कार से होगा, इस विषय में बताया गया है। वैशेषिक सूत्रों की विषयवस्तु तथा उद्देश्य, लक्षण, परीक्षा का भी कथन किया गया है।

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में माधवाचार्य ने वैशेषिक-दर्शन के प्रारम्भ में पदार्थ छः ही स्वीकार किए हैं -

१. द्रव्य
२. गुण
३. कर्म
४. सामान्य
५. विशेष

---

[641] वही, पृ.२१

[642] वही, पृ.२१

[643] वही, पृ.२१

[644] स. सि. सं., पृ.२१

[645] वही, पृ.२१

[646] वही, पृ.२१

[647] वही, पृ.२१

[648] वही, पृ.२१

६. समवाय

तत्र द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवाया इति षडेव ते पदार्थाः।[649]

यद्यपि अन्त में अभाव का भी वर्णन प्राप्त होता है।

वैशेषिक-दर्शन में पदार्थों के विभाजन के सन्दर्भ में यहाँ एक क्रम प्राप्त होता है जिसके विषय में यहाँ विस्तार-पूर्वक चर्चा प्राप्त होती है। माधवाचार्य कहते हैं कि सभी पदार्थों का आधार होने के कारण द्रव्य का कथन पहले किया गया है। **समस्तपदार्थायतनत्वेन प्रधानस्य द्रव्यस्य प्रथमुद्देशः।**[650] सभी द्रव्यों में पाये जाने वाले गुण को गुणत्व जाति के कारण द्वितीय स्थान पर रखा है।

सर्वदर्शनसङ्ग्रह के हिन्दी भाष्यकर्त्ता उमाशङ्कर शर्मा ने गुण का अर्थ गौण किया है। द्रव्य की अपेक्षा गुण गौण होता है अतः इसे द्वितीय स्थान पर रखा गया है। **अनन्तरं गुणत्वोपाधिना सकलद्रव्यवृत्तेर्गुणस्य।**[651]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में गुण के बाद कर्म को रखते हैं, क्योंकि द्रव्य, गुण, कर्म तीनों में सामान्य की सत्ता रहती है। द्रव्य पर गुण और कर्म आश्रित रहते हैं, अतः द्रव्य को प्रथम रखा गया है, गौण होने से गुण द्वितीय स्थान पर रखा गया है। शेष कर्म रहता है अतः तृतीय स्थान पर कर्म को रखा गया है। **सामान्यवत्त्वसाम्यात्कर्मणः।**[652]

चतुर्थ स्थान में सामान्य को रखते हैं। सामान्य द्रव्य, गुण, कर्म में रहता है, अतः ये तीनों आधार हैं तथा सामान्य आधेय है। अतः इसे तीनों के बाद चतुर्थ स्थान पर रखा गया है। **पश्चात्तत्त्रितयाश्रितस्य सामान्यस्य।**[653]

पञ्चम क्रम में विशेष को रखते हैं क्योंकि विशेष आधार है। आधार पर ही आधेय रहता है अतः विशेष को पहले अर्थात् पञ्चम स्थान में रखते हैं। **तदनन्तरं समवायाधिकरणस्य विशेषस्य**[654] अन्त में आधेय रूप समवाय को रखते हैं। **अन्तेऽवशिष्टस्य समवायस्येति।**[655]

---

[649] वही, पृ. ३४२

[650] स. सि. सं., पृ.३४३

[651] वही, पृ.३४४

[652] वही, पृ.३४३

[653] वही, पृ.३४३

[654] वही, पृ.३४३

[655] वही, पृ.३४३

सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार प्रश्न करते हुए कहते हैं कि पदार्थ छः ही क्यो हैं ? अभाव भी तो पदार्थ है। पुनः स्वयं ही उत्तर में कहते हैं कि पदार्थ दो प्रकार के हैं –

१. भावरूप
२. अभावरूप

भाव पदार्थ छः ही हैं। शक्ति और सादृश्य का इन्हीं भावरूप पदार्थों में ही अन्तर्भाव हो जाता है।[656]

द्रव्य – द्रव्यत्व जाति से युक्त ही द्रव्य है अर्थात् जिसमें द्रव्य समवाय सम्बन्ध से रहता है, उसे द्रव्य कहते हैं। '**तत्र द्रव्यादित्रितयस्य द्रव्यत्वादिजातिर्लक्षणम्।**'[657]

इस लक्षण को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जब गगनारविन्द में आकाश के साथ तथा अरविन्द के साथ अलग-अलग कोई पदार्थ समवेत हो, वह नित्य हो तथा गन्ध के साथ समवेत न हो उसे द्रव्य-सामान्य कहते हैं।

द्रव्यत्वं नाम गगनारविन्दसमवेतत्वे सति नित्यत्वे सति गन्धासमवेतत्वम्।[658]

द्रव्य के भेद – द्रव्य नौ प्रकार का है –

'द्रव्यं नवविधं पृथिव्यापस्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनांसि इति।'[659]

१.पृथिवी २. जल ३. तेज ४.वायु ५.आकाश ६.काल ७.दिक् ८.आत्मन् ९.मनस्

१. **पृथिवीत्व –** जो पाक अर्थात् अग्नि-संयोग से उत्पन्न रूप समानाधिकरण हो तथा द्रव्य सामान्य के द्वारा सीधे व्याप्त हो, उसे पृथिवीत्व कहते हैं अर्थात् '**पृथिवीत्वं नाम पाकजरूपसमानाधिकरण-द्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः।**'[660]

२. **जलत्व –** जो सरिताओं और सागरों में समवेत हो किन्तु ज्वलन से समवेत न हो, उसे अपत्व कहते हैं। **अस्त्वं नाम सरित्सागरसमवेतत्वे सति ज्वलनासमवेतं सामान्यम्।**[661] सरिताओं और सागरों के

---

[656] स. द. सं., पृ.३४५

[657] वही, पृ.३४७

[658] वही, पृ.३४७

[659] वही, पृ.३५२

[660] वही, पृ.३५२

[661] स. द. सं., पृ.३५२

साथ जल का समवाय सम्बन्ध होता है। इस विशेषण का प्रयोग होने से उन जातियों की व्यावृत्ति होती है जो जलत्व से व्यधिकरण में है। यथा – पृथिवीत्व आदि।

३. **तेजस्त्व –** जो चन्द्र और स्वर्ण के साथ समवेत हो, किन्तु जल से समवेत न हो, उसे तेज कहते हैं अर्थात् **तेजस्त्वं नाम चन्द्रचामीकरसमवेतत्वे सति सलिलासमवेतं सामान्यम्।**[662] चन्द्र व स्वर्ण में तेजस्त्व नामक जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है। इतना कहने से पृथिवीत्व व जलत्व आदि जातियों का परिहार हो जाता है, क्योंकि तेजस्त्व जाति केवल तेज में ही समवाय सम्बन्ध से रहती है अन्य के साथ तो संयोग सम्बन्ध होता है।

यहाँ तेज के लक्षण में दो शब्द प्रयोग किये गये हैं – चन्द्र व स्वर्ण। यहाँ यह शङ्का उत्पन्न होती है कि क्या चन्द्र में स्वर्णत्व तथा स्वर्ण में चन्द्रत्व रह सकता है, तो यह सम्भव नही है क्योंकि चन्द्र में चन्द्रत्व समवाय सम्बन्ध से रहता है स्वर्णत्व नही तथा स्वर्ण में स्वर्णत्व समवाय सम्बन्ध से रहता है चन्द्रत्व नही। वैशेषिक-दर्शन के अनुसार जाति और व्यक्ति में समवाय सम्बन्ध होता है।[663]

यहाँ सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार द्वारा लक्षण देते हुए तेजस्त्व, वायुत्व आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है। जबकि अन्यान्य ग्रन्थों में पृथिवी तथा जल आदि शब्दों का प्रयोग होता है क्योंकि पृथिवी द्रव्य है तथा द्रव्यत्व उसमें रहने वाली जाति है।[664]

वायुत्व – जो त्वगिन्द्रिय अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय से समवेत तथा द्रव्यत्व के द्वारा सीधे व्याप्त हो उसे वायु कहते हैं। वायु के कारण ही स्पर्श का अनुभव होता है। द्रव्यत्व में वायु भी आता है इसीलिए साक्षात् व्याप्त है। **वायुत्वं नाम त्वगिन्द्रियसमवेतद्रव्यत्वसाक्षाद्व्याप्यजातिः।**[665] आकाश, काल, दिक् इनके विषय में माधवाचार्य कहते हैं कि आकाश, काल व दिक् ये तीनों पारिभाषिक संज्ञायें हैं।[666]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह के औलूक्य दर्शन में जिनकी जातियाँ हैं, उन्हीं के लक्षण दिए गए हैं। यथा - पृथिवी – पृथिवीत्व, जल-जलत्व, तेज-तेजस्त्व, वायु-वायुत्व। आकाश में आकाशत्व, काल में कालत्व, दिक् में दिक्त्व होता ही नही है, क्योंकि ये तीनों ही एक – एक हैं। जाति तभी हो सकती है कि जब अनेकता

---

[662] वही, पृ.३५४

[663] तर्क सङ्ग्रह, पृ.११०

[664] स. द. सं., पृ.३५२-३५४

[665] स. द. सं., पृ.३५४

[666] वही, पृ.३५४

हो। यथा गौ होने पर ही गोत्व का प्रयोग होता है। सामान्य अर्थात् जाति के लिए कम से कम दो व्यक्ति होने चाहिए अन्यथा समानता किसके साथ प्रदर्शित करेंगे।

आकाश – सर्वदर्शनसङ्ग्रह में बताया गया है कि संयोग से उत्पन्न न होने वाले तथा अनित्य विशिष्ट गुण के साथ जो विशेष समानाधिकरण है, उसी विशेष का आधार आकाश है अर्थात् **संयोगाजन्यजन्यविशेषगुणसमानाधिकरणविशेषाधिकरणमाकाशम्।**[667] वैशेषिक-दर्शन में विशेष नामक पदार्थ केवल नित्य द्रव्यों में रहता है। अतः आकाश भी नित्य है, इसीलिए आकाश में भी विशेष रहता है। आकाश विशेष का आधार है। इसमें भी विशेष गुण शब्द रहता है। इस शब्द के साथ ही आकाश में अवस्थित विशेष समानाधिकरण है। यहाँ ध्यातव्य है कि शब्द का आधार भी आकाश है। विशेष नामक पदार्थ का आधार भी आकाश है। अतः आधार की समानता के कारण दोनों का समानाधिकरण है।

यहाँ लक्षणमें शब्द के दो विशेषण हैं – 'संयोगाजन्य तथा जन्य' शब्द जन्य अर्थात् उत्पन्न किया जाता है अतः अनित्य है। शब्द संयोग से उत्पन्न नही होता है, अतः नित्य है। सर्वदर्शनसङ्ग्रह में बताया गया है कि वैशेषिक-दर्शन में विभाग से उत्पन्न तथा शब्द से उत्पन्न शब्द की सत्ता स्वीकार की जाती है।

काल – जो व्यापक तथा दिक् से असमवेत परत्व के असमवायिकारण का अधिकरण हो, वह काल है। **विभुत्वे सति दिगसमवेतपरत्वासमवायिकारणाधिकरणः कालः।**[668] परत्व दो प्रकार का होता है –

१. स्थानगत
२. कालगत

१. **स्थानगत –** परत्व का दिक् व वस्तु का संयोग असमवायिकारण होता है। इसमें दिक् समवेत रहता है। काल असमवेत रहता है क्योकि संयोग दो पदार्थों का होता है।
२. **कालगत –** कालगत परत्व का काल और वस्तु का संयोग असमवायिकारण होता है।इसमें दिक् असमवेत रहता है। काल समवेत रहता है।
   काल के लक्षण में 'विभु' पद का प्रयोग करने से ज्येष्ठ में अतिव्याप्ति नही होती है, क्योंकि संयोग दो वस्तुओं का होता है। इसलिए काल और ज्येष्ठ वस्तु दोनों में उसकी सत्ता रहती है। अन्तर यह है कि काल विभु होता है, ज्येष्ठ वस्तु विभु नही हो सकती है।

---

[667] वही, पृ.३५५

[668] स. द. सं., पृ. ३५५

दिक् – जो काल न हो, किसी विशेष गुण से रहित हो तथा महती अर्थात् विभु हो, वही दिक् है अर्थात् **अकालत्वे सति अविशेषगुणा महती दिक्।**[669]

काल में अतिव्याप्ति रोकने के लिए 'अकाल' कहते हैं क्योंकि काल भी विशेष गुण से शून्य तथा विभु होता है।

आकाश और आत्मा में अतिव्याप्ति रोकने के लिए 'विशेष गुण से रहित' कहा गया है क्योंकि आकाश का विशेष गुण शब्द है। आत्मा का विशेष गुण बुद्धि आदि है। ये दोनों अकाल हैं तथा विभु हैं किन्तु विशेष गुण से रहित नही हैं।

मन में अतिव्याप्ति न हो इसीलिए इसमें 'महती' कहा गया है। क्योंकि मन अकाल तथा विशेष गुण से रहित है तथा विभु नही है।

आत्मत्व – जो मूर्त द्रव्यों में समवेत न हो तथा द्रव्यत्व के द्वारा व्याप्त होती हो, वह आत्मा है। **आत्मत्वं नामामूर्तसमवेतद्रव्यत्वापरजातिः।**[670] पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन में यह लक्षण अतिव्याप्त न हो अतः 'अमूर्त समवेत' कहा गया है।

मनस्त्व – जो अणु द्रव्य का समवायिकारण नही हो सकते, उन अणुओं में समवेत तथा द्रव्यत्व के द्वारा व्याप्त होने वाली जाति को मनस्त्व जाति कहते हैं। **मनस्त्वं नाम द्रव्यसमवायिकारणत्वरहितागुणसमवेतद्रव्यत्वापरजातिः।**[671]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह में बताया गया है कि 'जो अणु द्रव्य का समवायिकारण नहीं हो सकते हैं' यह कहने से पृथिवी, जल, तेज और वायु के परमाणुओं का निरसन हो जाता है क्योंकि इनका संयोग होने पर उन द्रव्यों के द्वयणुक, त्र्यणुक, चतुरणुक आदि बनते हैं तथा वे परमाणु द्वयणुकादि के समवायि-कारण होते हैं। 'अणु' कहने से आकाश, काल, दिक्, आत्मा में यह लक्षण अतिव्याप्त नहीं होता है।

सर्वदर्शनकौमुदी में प्रतिपादित द्रव्य

सर्वदर्शनकौमुदी के अनुसार वैशेषिक-दर्शन में सात पदार्थ हैं तथा जिसमें अभिधेयत्व और ज्ञेयत्व है, वह पदार्थ कहलाता है। पदार्थ भाव और अभावरूप से दो प्रकार का है। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य,

---

[669] वही, पृ.३५५

[670] स. द. सं., पृ.३५८

[671] वही, पृ.३५८

विशेष, समवाय ये भाव पदार्थ हैं।[672] प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव, अन्योन्याभाव ये चार प्रकार का अभाव है। **'तेषु द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः षट् भावपदार्थाः।'**[673]

द्रव्य – जिसमें द्रव्यत्व रूप जाति, गुण, कर्म रहते हैं, वह द्रव्य है। **'यस्मिन् पदार्थे द्रव्यत्वरूपा जातिः, गुणाश्च तिष्ठन्ति, यथासम्भव स्थलेषु च कर्माण्यपि तिष्ठन्ति, स एव द्रव्यम्।'**[674]द्रव्य नौ प्रकार का होता है –

१. क्षिति
२. अप्
३. तेजस्
४. मरुद्
५. व्योम
६. काल
७. दिक्
८. आत्मा
९. मनस्

तच्च द्रव्यं नवविधम्। क्षित्यप्तेजोमरुद् व्योमकालदिगात्ममनो भेदात्।[675]

१. **पृथिवी –** जिस द्रव्य में सुगन्ध व दुर्गन्ध ये दोनों रहते हैं वह पृथिवी है। **'यस्मिन् द्रव्ये सुगन्धो दुर्गन्धो वा तिष्ठति तदेव पृथिवी।'**[676]
२. **जल –** शीत स्पर्श जिसमें रहता है, वह जल है। **यद्द्रव्ये शीतलस्पर्शस्तिष्ठति तदेव जलम्।**[677]
३. **तेज –** उष्ण स्पर्श जिसमें है, वह तेज है। **यद्द्रव्ये उष्णस्पर्शस्तिष्ठत तत्तेजः।**[678]

---

672 स. द. कौ.,पृ.६३

673 वही, पृ.६३

674 वही, पृ. ६३

675 स. द. कौ., पृ.६३

676 वही, पृ.६३

677 वही, पृ.६३

678 वही, पृ.६३

४. **वायु –** जिस द्रव्य में रूप नही है लेकिन स्पर्श रहता है, वह वायु है। **यस्मिन् द्रव्ये रूपं नास्त्यथ च स्पर्शस्तिष्ठति तद् वायुः।**[679]

५. **आकाश –** जिस द्रव्य में अवकाश होने से शब्द उसमें समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह आकाश है **यद्द्रव्यं अवकाशप्रदत्वे सति शब्दसमवायिकारणं भवेत्तदाकाशः।**[680]

६. **काल –** दिन-रात्रि आदि के समय और व्यवहार का असाधारण कारण काल है अर्थात् **'सार्द्धशतपलसार्द्धविलिप्तिका घटिका दिन रात्र्यादिसमयव्यवहारासाधारणकारणं कालः।'**[681]

७. **दिक् –** पूर्व, पश्चिम आदि दिशाओं के व्यवहार का असाधारण कारण दिक् है।**'पूर्वादिदिग्विदिगादिसमयव्यवहारासाधारणकारणं कालः।'**[682]

८. **आत्मा –** नित्य होने पर समवाय सम्बन्ध से जिसमें ज्ञान रहता है। **'नित्यत्वे सति समवायसम्बन्धेन जन्यज्ञानाद्यधिकरणकारणं दिक्।'**[683] एक शब्द 'जन्यज्ञानाधिकरणमात्मा' जन्य प्रयोग किया गया है। इसका अर्थ है कि ज्ञान उत्पन्न होता है। वैशेषिक-दर्शन ज्ञान को गुण माना गया है। बुद्धि में ही ज्ञान का ग्रहण किया जाता है। आत्मा के दो भेद है –

१. जीवात्मा

२. परमात्मा

१. जीवात्मा – जीवात्मा अनेक है, क्योंकि संसार में असंख्य मनुष्य है अतः प्रत्येक मनुष्य में रहने वाली जीवात्मा भी असंख्य है।[684]

२. परमात्मा – परमात्मा नित्य है, ईश्वर का ज्ञान भी नित्य है, जगत् का आदि कारण परमात्मा है। यह एक है। इसी को ईश्वर शब्द से कहा जाता है क्योंकि ईश्वर में अणिमा, लघिमा आदि अष्ट ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं।[685]

---

679 वही, पृ.६३

680 वही, पृ.६३

681 स. द. कौ., पृ. ६४

682 वही, पृ.६३

683 वही, पृ.६३

684 वही, पृ.६४

685 वही, पृ.६४

९. **मन –** जिस अन्तरिन्द्रिय के द्वारा आत्मा को ज्ञान की प्राप्ति होती है उसे मन कहते हैं। मन का परिमाण अणु, नित्य तथा असंख्य है। **येनान्तरिन्द्रियेणात्म प्रत्यक्षं भवति तदेव मनः।**[686]

सर्वमतसङ्ग्रह में प्रतिपादित द्रव्य

सर्वमतसङ्ग्रहकार बताते हैं कि प्रारम्भ में वैशेषिक-दर्शन में छः पदार्थ हैं –

इह द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमावायाख्या षडेव पदार्थाः।[687]

इनमें द्रव्य नौ हैं – १.पृथिवी २. जल ३. तेज ४.वायु ५.आकाश ६.काल ७.दिक् ८.आत्मा ९.मन। नौ द्रव्यों में से आठवाँ द्रव्य आत्मा प्रमाता है।[688] आत्मा के अतिरिक्त शेष आठ द्रव्य प्रमेय हैं तथा गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय भी प्रमेय हैं। **द्रव्यान्तराणि गुणादयश्च प्रमेयम्।**[689]

द्रव्य के भेद –

द्रव्य के नौ प्रकार हैं – **पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशकालदिगात्ममनोभेदात्।**[690]

१.पृथिवी – पृथिवी में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व तथा संस्कार ये चौदह गुण रहते हैं। **'तत्र रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वनैमित्तिकद्रवत्वसंस्काराः पृथिवीगुणाः।'**[691] इनमें से गन्ध पृथिवी का विशेष गुण है।[692] पृथिवी द्रव्य के प्रथमतः दो भेद हैं – नित्य और अनित्य।[693] वह परमाणु के रूप में नित्य है तथा तज्जन्य कार्यों के रूप में अनित्य। अनित्य पृथिवी शरीर, इन्द्रिय और विषय के भेद में त्रिविधा है।

---

686 वही, पृ.६४

687 स. म. सं. पृ. २२

688 वही, पृ.२२

689 वही, पृ.२२

690 वही, पृ.२२

691 वही, पृ.२३

692 वही, भूमेर्गन्धः। -पृ.२३,

693 प. ध. सं.,पृ.१७

२. जल – जल में भी चौदह गुण हैं[694] – १.रूप २. रस ३. स्पर्श ४.संख्या ५. परिमाण ६. पृथक्त्व ७. संयोग ८. विभाग ९. परत्व १०. अपरत्व ११. गुरूत्व १२. द्रवत्व १३. स्नेह १४.संस्कार। इनमें से रस जल का विशेष गुण है।[695] जल नित्य और अनित्य भेद से द्विविध है और अनित्य जल शरीर, इन्द्रिय और विषय भेद से त्रिविध है।

३. तेज – तेज में ग्यारह गुण हैं[696] - १. रूप २. स्पर्श ३.संख्या ४. परिमाण ५. पृथक्त्व ६. संयोग ७. विभाग ८. परत्व ९. अपरत्व १०. द्रवत्व (नैमित्तिक) ११. संस्कार। **'रूपस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वनैमित्तिकद्रवत्वसंस्कारास्तेजसो गुणः।'**[697]

तेज का विशेष गुण रूप है। **तेजसो रूपम्।**[698] तेज परमाणु रूप से नित्य व कार्यरूप से अनित्य है। अनित्य तेज के पुनः त्रिविध भेद हैं – १. तैजस शरीर २. तैजस् इन्द्रिय ३. तैजस विषय।

यहाँ ध्यातव्य है कि सर्वदर्शनकौमुदी के अनुसार वैशेषिक ने द्रवत्व गुण के दो भेद माने हैं –

१. सांसिद्धिक
२. नैमित्तिक

सांसिद्धिक स्वभाविक द्रवत्व है, जो केवल जल में पाया जाता है।

४. **वायु –** सर्वमतसङ्ग्रह के अनुसार वायु में नौ गुण हैं[699] - १. स्पर्श २.संख्या ३. परिमाण ४. पृथकत्व ५. संयोग ६. विभाग ७. परत्व ८. अपरत्व ९. संस्कार (वेग)। संस्कार वेग, भावना, स्थितिस्थापक भेद से त्रिविध है। वायु में केवल वेग संस्कार ही पाया जाता है। इन नौ गुणों में से 'स्पर्श' वायु का विशेष गुण है। **वायोः स्पर्शः।**[700] पृथिवी, जल व तेज की भाँति वायु परमाणु रूप से

---

694 स. म. सं.,पृ.२३

695 स. म. सं., अपां रसः।- पृ.२३

696 वहि, पृ.२३

697 वही, पृ.२३

698 वही, पृ.२३,

699 वही, पृ.२३

700 प. ध. सं., पृ.२३

नित्य व कार्यरूप से अनित्य है। अनित्य वायु के पुनः चार भेद हैं – १. शरीर २. इन्द्रिय ३. विषय ४. प्राण।[701]

पृथिवी, जल, तेज और वायु के नित्य परमाणु परमेश्वर की इच्छा से द्व्यणुक, त्र्यणुक आदि क्रम से घटपटादि विश्व की सृष्टि करते हैं।[702]

आकाश – सर्वमतसङ्ग्रह के अनुसार आकाश में छः गुण हैं[703] – १. सङ्ख्या २. परिमाण ३.पृथक्त्व ४. संयोग ५. विभाग ६. शब्द। इनमें से आकाश का विशेष गुण शब्द है। **आकाशस्य वि शब्दो विशेष गुणः।**[704] आकाश शब्द गुण का आश्रय है। यह एक, विभु, नित्य और अखण्ड है। **आकाशादिपञ्चकं तु नित्यमेव।**[705]

काल – सर्वमतसङ्ग्रह के अनुसार काल द्रव्य के पाँच गुण हैं[706] – १. संख्या, २. परिमाण, ३. पृथकत्व, ४. संयोग, ५. विभाग। काल में कोई भी विशेष गुण नहीं है। **दिक्कालमनसां विशेषगुणा न सन्ति।**[707] काल अतीतादि के व्यवहार का हेतु है।[708] यह नित्य और एक है।

दिक् – सर्वमतसङ्ग्रह के अनुसार दिक् द्रव्य में भी पाँच गुण हैं[709] - १. संख्या, २. परिमाण, ३. पृथकत्व, ४. संयोग, ५. विभाग।

इनमें से दिक् का कोई विशेष गुण नहीं है।[710] यह नित्य और एक है। इसके दस भेद औपाधिक हैं, वास्तविक नहीं।

---

701 वही, पृ.२६

702 वही, पृ.२४

703 वही, पृ.२३

704 वही, पृ.२३

705 वही, पृ.२४

706 वही, पृ. २३

707 वही, पृ. २३

708 अतीतादिव्यवहारहेतु कालः। त.सं ., पृ. ११

709 स. म. सं., पृ. २३

710 स. म. सं., पृ.२३

आत्मा – टी. गणपति शास्त्री के अनुसार आत्मा में चौदह गुण रहते हैं - **'संख्यापरिमाणपृथकत्वसंयोगविभाग बुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नदह्नमाधर्मसंस्कारा आत्मगुणाः।**[711] आत्मा का विस्तार से यहाँ वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

मन – सर्वमतसङ्ग्रहकार के अनुसार मन द्रव्य के आठ गुण हैं - **'संख्यापरिमाणपृथकत्वसंयोगविभागपरत्वापरत्ववेगसंस्कारा मनोगुणाः।'**[712] - १. संख्या, २. परिमाण, ३. पृथकत्व, ४. संयोग, ५. विभाग ६. परत्व, ७. अपरत्व, ८. संस्कार (वेग)। ये मन के सामान्य गुण हैं, इसका कोई भी विशेष गुण नहीं है। मन एक इन्द्रिय या करण है, जो आन्तरिक भावों के प्रत्यक्ष का हेतु है। इसके अभाव में बाह्येन्द्रियाँ भी स्व स्व विषयों का ग्रहण नहीं कर सकती। अतः सर्वमतसङ्ग्रह के अनुसार मन के दो प्रमुख कार्य हैं –

१. यह स्वयं सुखादि का ग्राहक इन्द्रिय है।
२. अन्य इन्द्रियों का भी सहायक है।[713]

मन नित्य और अनेक है। प्रत्येक शरीर में एक – एक मन रहता है।[714]

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में प्रतिपादित द्रव्य

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में वैशेषिक नाम का आधार – द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में कहा गया है कि वैशेषिक-दर्शन के प्रणेता भगवान कणाद ने अत्यन्त कठिन परिस्थितियों में अपने जीवन का निर्वाह करते हुए ज्ञान के भण्डार रूपी इस शास्त्र की रचना की है। महात्मा कणाद के नाम के बारे में किवदन्ती है कि इन्होंने खेत में पड़े अन्न के कण-कण को खाकर इस शास्त्र की रचना की अतः इस आधार पर इनका नाम कणाद पड़ा।[715]

विशेष पदार्थ को स्वीकार करने से 'वैशेषिक-दर्शन'[716] कहा जाता है, महर्षि कणाद के पिता का नाम उलूक ऋषि था। उलूक की सन्तान होने से ये औलूक्य कहलाते थे। अतः इसका नाम भी

---

[711] वही, पृ.२३

[712] वही, पृ.२३

[713] प्रयत्नज्ञानायौगपद्यवचनात्प्रतिशरीरमेकत्वं सिद्धम्। प. ध. सं., पृ. ५७

[714] स. म. सं., पृ. २२-२३

[715] द्वा. द. स., पृ.१९

[716] वही, पृ.१९

'औलूक्यदर्शन'[717] हो गया। द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में कहा गया है कि गौतमानुसार षोडश पदार्थ प्रमाण, प्रमेयादि महर्षि कणाद भी स्वीकार करते हैं। द्रव्य, गुण आदि का सुव्यवस्थित रूप तथा उनके साधर्म्य-वैधर्म्यादि का कथन यहाँ प्राप्त होता है, अतः इस विशेषता के कारण भी इसको वैशेषिक-दर्शन कहा गया है।[718]

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् मानता है कि महर्षि कणाद ने द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन छः पदार्थों का विवेचन वैशेषिक सूत्रों में किया है। वैशेषिक सूत्रों का विभाजन दस अध्यायों तथा प्रत्येक अध्याय को दो आह्निकों में किया गया है। प्रत्येक दिन एक आह्निक लिखे जाने से इसको ऋषि ने आह्निक में विभाजित किया है, ऐसा विचार सीताराम हेब्बार ने प्रस्तुत किया है।[719]

हेब्वार जी ने प्रथम अध्याय के प्रथम आह्निक में जाति, द्रव्य, गुण, कर्म आदि का विचार प्रस्तुत किया है। द्वितीय अध्याय में जाति एवं विशेष का निरूपण किया है। द्वितीय अध्याय के प्रथम आह्निक में भूतों के विशेष प्रकार तथा द्वितीय आह्निक में दिक् व काल पर विचार किया गया है। तृतीय अध्याय के प्रथम आह्निक में आत्मविचार तथा इसी अध्याय के द्वितीय आह्निक में अन्तःकरण पर चर्चा की गई है। चतुर्थ अध्याय के प्रथम आह्निक में शरीर का प्रतिपादन व इसी अध्याय के द्वितीय आह्निक में उसके कारणभूत परमाणु का विचार किया गया है। पञ्चम अध्याय के प्रथम व द्वितीय आह्निकों में शारीरक कर्म एवं मानसिक विचारों को प्रस्तुत किया गया है। षष्ठ अध्याय के प्रथम व द्वितीय आह्निकों में दान-प्रतिग्रह, आश्रम के स्वरूप तथा धर्मों का प्रतिपादन हुआ है। सप्तम अध्याय के प्रथम व द्वितीय आह्निकों में बुद्धि, रसादिगुण, द्वित्व, समवाय आदि का स्वरूप बताया है। अष्टम व नवम अध्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण, सविकल्पक, निर्विकल्पक, अभाव, हेतु का वर्णन किया गया है। दशम अध्याय के दोनों आह्निकों में अनुमान का स्वरूप बताया गया है।

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में पदार्थ का स्वरूप – द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में कहा गया है कि पदार्थ दो प्रकार के हैं –

१. भाव
२. अभाव

भाव पदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये छः हैं। अभाव चार प्रकार का है –

---

[717] वही, पृ.१९

[718] वही, पृ.१९

[719] वही, पृ.२०

१. प्राग्भाव
२. प्रध्वंसाभाव
३. अत्यन्ताभाव
४. अन्योन्याभाव

'पदार्थः द्विविधः – भावः अभावश्च। भावपदार्थे द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाः षट् स्वीक्रियन्ते। अभावः प्राग्भावः प्रध्वंसाभावात्यन्ताभावान्योन्याभावाः इति चत्वारः।'[720]

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि पदार्थों के विवेचन के समय में उद्देश्यादि अर्थात् उद्देश्य, लक्षण, परीक्षा का अनुसरण किया गया था, विभाग को छोड़ दिया गया था। अतः कैसे पदार्थ की सिद्धि होती है ? इसके उत्तर में आचार्य सीताराम हेब्बार कहते हैं कि उद्देश्य सामान्य और विशेष से दो प्रकार का होता है। द्रव्यादि षट् पदार्थ पृथिव्यादि नौ द्रव्य सामान्य उद्देश्य से स्वीकार किए जाते हैं। विशेष उद्देश्य में विभाग को भी एक गुण माना गया है। अतः पुनरुक्तिवश पुनः कथन नहीं किया गया है।[721]

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय के रूप में जो षट् पदार्थों का विशेष क्रम स्वीकार किया गया है, उसके विषय में कहते हैं कि द्रव्य को पहले रखने का कारण यह है कि द्रव्य सभी पदार्थों का आश्रयभूत है अर्थात् सभी पदार्थ द्रव्य पर आश्रित हैं।[722] द्वितीय स्थान पर गुण को रखा गया है क्योंकि गुण द्रव्य के धर्म होते हैं।[723] सभी द्रव्यों में कर्म नही होता है, अतः कर्म को तृतीय स्थान पर रखा गया है। जैसे आकाश, काल, दिक् व आत्मा नामक विभु द्रव्यों में कर्म नही रहता है। यदि इनमें भी कर्म को स्वीकार करेंगे तो इनमें व्यापकत्व की सिद्धि भी नही हो सकती है।[724]

द्वादशदर्शनसमीक्षणकार ने प्रश्न उपस्थित करते हुए कहा है कि कणाद के मतानुसार 'षडेव पदार्थाः' यह कहाँ कहा गया है ? जबकि षट् पदार्थों के अतिरिक्त अभाव को भी पदार्थ स्वीकार किया गया है। पुनः वहीं उसका उत्तर स्पष्ट किया गया है कि अभाव को पदार्थ मानने पर निषेध विषयक बुद्धि उत्पन्न होती है तथा निषेध को पदार्थों के अन्तर्गत ही माना गया है। अतः कणाद ने भावभूत छः पदार्थ ही

---

720 द्वा. द. स., पृ.२१

721 द्वा. द. स., पृ.२१

722 वही, पृ.२१

723 गुणः द्रव्यधर्मा, वही, पृ.२१

724 वही, पृ.२१

स्वीकार किए हैं। कहा गया है कि – **प्रश्नोऽयमुपस्थितो भवति – कणादेन “षडैव पदार्थाः” इति कुतः स्वीकृताः, षट्पदार्थातिरिक्तत्वेनाभावोऽपि एकः पदार्थः अस्ति। अभ्युपगमे सति सप्त पदार्थाः इति वाक्यप्रयोगे कणादस्यापत्तिः स्यात् इति यन्मत तन्न समीचीनम्।**[725]

द्रव्यत्व विचार – द्रव्य चार प्रकार का है –

द्रव्यत्वं चातुर्विध्यमस्ति – आकाशसमवेतत्वम्, कमलसमवेततत्वम्, गन्धासमवेततत्वम्, नित्यत्वम् चेति। यदि लक्षणे गन्धासमवेततत्वं न दीयते तर्हि द्रव्यगुणाकर्मसु वर्तमाना या सत्ता नाम जातिः सा आकाशे अतिव्याप्ता व्यभिचरति। यतः सा सत्ता गगनकमलेऽपि समवेता सती नित्या च भवति, किन्तु गन्धासमवेततत्वरूपेण न तिष्ठति। अतः लक्षणकोटिषु एतदवश्यं भवितव्यम्।[726]

यदि लक्षण में गन्धासमवेतत्त्व नहीं दिया जाता तो यह द्रव्य, गुण, कर्म में वर्त्तमान सत्ता नामक जाति आकाश में अतिव्याप्त हो जाती है। वह सत्ता गगनकमल में भी समवेतत्त्व रूप में नहीं रहती है।[727]

द्वादशदर्शनसोपानावलि में प्रतिपादित द्रव्य

इस संसार में सात पदार्थ हैं। न्यायदर्शनोक्त षोडश पदार्थों का इन्हीं सात पदार्थों में अन्तर्भाव हो जाता है। द्वादशदर्शनसोपानावलि के प्रारम्भ में ही तर्कसङ्ग्रह की चर्चा है। अन्नंभट्ट ने तर्कसङ्ग्रह की दीपिका में न्याय-दर्शन के सोलह पदार्थों का अन्तर्भाव वैशेषिक के सात पदार्थों में किया है।[728] वैशेषिक-दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इनके साधर्म्य और वैधर्म्य के ज्ञान से ही तत्त्वज्ञान होता है। द्वादशदर्शनसोपानावलिकार ने यहाँ वैशेषिक सूत्रों को उद्धृत किया है।[729]

द्रव्य – द्वादशदर्शनसोपानावलि के अनुसार जिसमें गुणवत्व तथा क्रियावत्व समवाय सम्बन्ध से रहती है, वह द्रव्य है। **‘तत्र गुणवत्त्वं वा क्रियावत्त्वं वा द्रव्यस्य लक्षणम्।’**[730] द्रव्य के नौ भेद है –

१.पृथिवी २. जल ३. तेज ४.वायु ५.आकाश ६.काल ७.दिक् ८.आत्मा ९.मन

इन सभी द्रव्यों का वर्णन द्वादशदर्शनसोपानावलि में निम्नवत् किया गया है-

---

725 वही, पृ.२२

726 द्वा. द. स., पृ.२३

727 वही, पृ.२३

728 त.सं ., पृ. ६४-६५

729 द्वा. द.सो., पृ.११७

730 वही, पृ.११७

१. पृथिवी – जहाँ पर गन्ध समवाय सम्बन्ध से रहती है, वह पृथिवी है। **तत्र गन्धवती पृथिवी।**[731]

२. जल – शीत तथा स्पर्श जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहते हैं, वह जल है। **शीतस्पर्शवत्य आपः।**[732]

३. तेज – उष्ण स्पर्श से युक्त तेज है। **उष्णस्पर्शवत्तेजः।**[733]

४. वायु – रूप रहित तथा स्पर्श गुण से युक्त वायु है। **रूपरहितस्पर्शवान्वायुः।**[734]

५. आकाश – आकाश का गुण शब्द है। आकाश में शब्द समवाय सम्बन्ध से रहता है। **शब्दगुणकमाकाशम्।**[735]

६. काल – यह पहले है, यह बाद है, इस कालिक परत्वापरत्व का आश्रय काल है। **कालिकपरत्वापरत्वाश्रयः कालः।**[736]

७. दिक् – यह प्राची है, यह उदीचि है। इस प्रकार दिक्कृत परत्वापरत्व का आश्रय दिक् है। **दिक्कृतपरत्वापरत्वाश्रय दिक्।**[737]

८. आत्मा – ज्ञान का अधिकरण आत्मा है। **ज्ञानाधिकरणमात्मा।**[738] यहाँ अधिकरण पारिभाषिक पद है। आधार को अधिकरण कहते हैं। **'आधारोऽधिकरणम्'** अर्थात् ज्ञान का आधार आत्मा है। यहाँ ज्ञान गुण है तथा आत्मा गुणी अर्थात् द्रव्य है। गुण और गुणी में समवाय सम्बन्ध होता है।[739]

९. मन – सुख-दुःखदि का साधन मन है। **सुखाद्युपलब्धिसाधनं मनः।**[740]

---

731 वही, पृ.११७

732 द्रा. द.सो., पृ.११७

733 वही, पृ.११७

734 वही, पृ.११७

735 वही, पृ.११७

736 वही, पृ.११७

737 वही, पृ.११७

738 वही, पृ.११७

739 वही, पृ.११७

740 वही, पृ.११७

इन नौ द्रव्यों में प्रथम चार अर्थात् पृथिवी, जल, तेज, वायु सावयव है। इनके परमाणु अनित्य कार्यरूप हैं व नित्य परमाणु कारणरूप है। इन चारों के परमाणु भिन्न-भिन्न है। आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन ये नित्य द्रव्य है।

राजशेखरसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित द्रव्य

राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय के अन्तर्गत १८० श्लोकों में छः दर्शनों का अर्थात् जैन, साङ्ख्य, जैमिनीय, योग, वैशेषिक सौगत का वर्णन किया गया है।[741] इसमें प्रत्येक दर्शन के लिङ्ग, वेष, आचार, देवता का वर्णन प्राप्त होता है।[742] इसमें वैशेषिक-दर्शन को पाशुपत दर्शन कहा गया है। **'पाशुपतान्यनामकम्'**[743] इसमें वैशेषिक के द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय ये छः ही पदार्थ माने गए हैं।

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं च चतुर्थकम्।

विशेषसमवायौ च तत्त्वषट्कं हि तन्मते ॥[744]

राजशेखरसूरि ने वैशेषिक के नौ द्रव्य माने हैं –

१. भू

२. जल

३. तेज

४. अनिल

५. अन्तरिक्ष

६. काल

७. दिक्

८. आत्मा

९. मन

---

[741] ष.समु .द ., पृ. ३०३

[742] वही, पृ. ३०३

[743] वही, पृ. ३१२

[744] वही, पृ. ३१२

तत्र द्रव्यं नवधा भूजलतेजोऽनिलान्तरिक्षाणि।

कालदिगात्ममनांसि ....॥[745]

इनके नामों का उल्लेख ही प्राप्त होता है विस्तार से वर्णन प्राप्त नहीं होता है।

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक में प्रतिपादित द्रव्य

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक का प्रारम्भ न्यायदर्शन से होता है। इसके लेखक जैनमुनि चिरन्तनाचार्य है। समय १२०१ विक्रमसम्वत है।[746] चिरन्तनाचार्य के अनुसार द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय इन तत्त्वों के ज्ञान से निःश्रेयस की प्राप्ति होती है। **'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगमः।'**[747]

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक के अनुसार द्रव्य नौ हैं –

१. पृथिवी

२. जल

३. तेज

४. वायु

५. आकाश

६. काल

७. दिक्

८. आत्मा

९. मन[748]

---

745 षड्दर्शनसमुच्चय, पृ. ७८

746 स.प्र .सि ., पृ. ३५७

747 वही, पृ. ३६१

748 वही, पृ. ३६१

१. **पृथिवी –** पृथिवीत्व गुण से युक्त पृथ्वी है। **'पृथिवीत्वयोगात् पृथिवी।'**[749] वह नित्य और अनित्य है। परमाणु रूप नित्य है कार्य रूप पृथिवी अनित्य है।[750] पृथिवी में चौदह गुण रहते है – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग।[751]

२. **जल –** जलत्व जाति से युक्त अर्थात् जलत्व जाति जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहती है वह जल है। **'अस्वाभिसम्बन्धादापः।'**[752] जल में रूप, रस, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, स्नेह, वेग रहते हैं।[753] जल में शुक्ल रूप रहता है। मधुर रस रहता है। जल में स्पर्श शीत होता है।[754]

३. **तेज –** तेजस्त्व जाति से युक्त तेज है। **'तेजस्त्वाभिसम्बन्धात् तेजः।'**[755] तेज में तेजस्त्व जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है। इसमें रूप, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग रहते हैं।[756] भास्वर शुक्ल नामक रूप गुण रहता है। उष्ण स्पर्श होता है।[757]

४. **वायु -** वायुत्व जाति से सम्बन्ध युक्त वायु है। **'वायुत्वाभिसम्बन्धाद् वायुः।'**[758] इसमें स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग रहते हैं।[759] पृथ्वी पर स्थित

---

749 स.प्र.सि., पृ. ३६१

750 वही, पृ. ३६१

751 वही, पृ. ३६१

752 वही, पृ. ३६१

753 वही, पृ. ३६१

754 वही, पृ. ३६१

755 वही, पृ. ३६१

756 वही, पृ. ३६१

757 वही, पृ. ३६१

758 वही, पृ. ३६१

759 वही, पृ. ३६२

वृक्षादि के हिलने-डुलने से वायु का अनुमान होता है। गन्धादि से रहित अनुष्णाशीत स्पर्श वायु में रहता है।[760]

५. **आकाश –** यह एक पारिभाषिक शब्द है। यह एक है। इसमें छः गुण संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग शब्द रहते हैं। **'संख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागशब्दैः षड्भिर्गुणैर्गुणवत् शब्दलिङ्गं चेति।'**[761] आकाश का ज्ञान शब्दरूपी गुण से होता है, क्योंकि शब्द गुण आकाश में समवाय सम्बन्ध से रहता है।[762]

६. **काल –** पर, अपर, युगपद, अयुगपद, चिर, क्षिप्र इत्यादि का बोधक काल है।[763] काल में संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, नामक पाँच गुण रहते हैं।[764]

७. **दिक् –** यह पूर्व है, यह उत्तर है इत्यादि का बोधक दिशा नामक द्रव्य है।**'इत इदम् इति यतस्तद् दिशो लिङ्गम्।'**[765] इसमें संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग गुण रहते हैं।[766]

८. **आत्मा –** आत्मत्व जाति से युक्त आत्मा है। **'आत्मत्वाभिसम्बन्धादात्मा।'**[767] आत्मा में चौदह गुण बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग रहते हैं।[768]

---

760 स.प्र .सि ., पृ. ३६२

761 वही, पृ. ३६२

762 वही, पृ. ३६२

763 वही, पृ. ३६२

764 वही, पृ. ३६२

765 वही, पृ. ३६२

766 वही, पृ. ३६२

767 वही, पृ. ३६२

768 वही, पृ. ३६२

९. **मन –** मनस्त्व जाति जिसमें समवाय समवाय सम्बन्ध से रहती है वह मन है।**'मनस्त्वाभिसम्बन्धाद् मनः।'**[769] क्रम पूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति में मन कारण है।[770] संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग नामक आठ गुणों से युक्त मन है।[771]

षड्दर्शनपरिक्रम में प्रतिपादित द्रव्य

षड्दर्शनपरिक्रम के कर्त्ता अज्ञात है।[772] यहाँ वर्णित वैशेषिक-दर्शन में द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, ये छः तत्त्व है तथा द्रव्य नौ हैं –

द्रव्यं गुणस्तथा कर्म सामान्यं सविशेषकम्।

समवायश्च षट्तत्त्वी तद्व्याख्यानमथोच्यते ॥[773]

द्रव्यं नवविधं प्रोक्तं पृथ्वीजलवह्नयस्तथा।

पवनो गगनं कालो दिगात्मा मन इत्यपि ॥[774]

षड्दर्शनपरिक्रम में द्रव्य -

१. पृथिवी

२. जल

३. वह्नि

४. पवन

५. गगन

६. काल

७. दिक्

८. आत्मा

---

769 स.प्र.सि., पृ. ३६२

770 वही, पृ. ३६२

771 वही, पृ. ३६२

772 षड्दर्शनपरिक्रम, पृ. ३९४

773 वही, पृ. ३९४

774 वही, पृ. ३९४

९. मन

प्रथम चार अर्थात् पृथिवी, जल, वह्नि, पवन ये कारण रूप नित्य तथा कार्यरूप अनित्य भेद दो प्रकार के है।[775] मन, दिक्, काल, आत्मा, व्योम, ये पाँच नित्य द्रव्य हैं।[776]

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप परिशिष्ट में प्रतिपादित द्रव्य

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप नामक ग्रन्थ में एक परिशिष्ट संकलित है। इसमें उनतीस मतों के सिद्धान्तों का ज्ञान प्राप्त होता है। इसमें वैशेषिक-दर्शन के नाम तथा ऋषि का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें कहा गया है कि जिसकी बुद्धि द्वित्व, पाकज उत्पत्ति तथा विभाग से होने वाले विभाग के विचार में स्खलित नहीं होती है, उसे वैशेषिक कहते हैं -

द्वित्वे च पाकजोत्पत्तौ विभागे च विभागजे।

यस्य न स्खलिता बुद्धिस्तं वै वैशेषिकं विदुः ॥[777]

यह वैशेषिक-दर्शन कणाद तथा औलूक्य दर्शन के नाम से जाना जाता है। उलूक ऋषि के पुत्र को औलूक्य कहा गया है। कपोतवृत्ति का अनुसरण करते हुए तथा गलियों में गिरे हुए तण्डुलों के कणों को खाते हुए वैशेषिकदर्शनकार 'कणाद' कहे गये हैं।[778] ईश्वर ने उलूक का शरीर धारण कर जिन्हें पदार्थों की शिक्षा दी उन्हें मुनियों ने औलूक्य कहा है।[779] इतना वर्णन ही वैशेषिक-दर्शन के सम्बन्ध में प्रत्यभिज्ञाप्रदीप में प्राप्त होता है।

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि में प्रतिपादित द्रव्य

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि, षड्दर्शनसमुच्चय की टीका है। इसमें छः पदार्थ माने गये हैं

१. द्रव्य
२. गुण
३. कर्म
४. सामान्य

---

775 षड्दर्शनपरिक्रम, पृ. ३९४

776 वही, पृ. ३९४

777 प्र.प्र .भि ., परिशिष्ट, पृ.४१

778 वही, पृ.४२

779 वही, पृ.४३

५. विशेष

६. समवाय

'तन्मते वैशेषिकमते तु निश्चितं च तत्त्वषट्कम्, नामानि सुगमार्थानि।'[780]

द्रव्य नौ प्रकार का स्वीकार किया गया है –

पृथिवी २. जल ३. तेज ४. वायु ५. आकाश ६. काल ७. दिक् ८. आत्मा ९. मन[781]

लघुषड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित द्रव्य

लघुषड्दर्शनसमुच्चय ग्रन्थ के लेखक का नाम ज्ञात नही है।[782] इसमें छः पदार्थ ही माने गये हैं[783] –

१. द्रव्य

२. गुण

३. कर्म

४. सामान्य

५. विशेष

६. समवाय

'द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायाख्यानि षट् तत्त्वानि।'[784]

यह अति सङ्क्षिप्त अर्थात् दो पृष्ठों में प्राप्त होती है।

लघुवृत्ति में प्रतिपादित द्रव्य

यह षड्दर्शनसमुच्चय की प्राचीन टीका है। इसमें छः पदार्थ माने गये हैं –

१. द्रव्य

२. गुण

३. कर्म

४. सामान्य

---

[780] ष .अ .स .द ., पृ.२९५

[781] वही, पृ.२९५

[782] लघुष.द .स ., पृ.३०१

[783] वही, पृ.३०१

[784] लघुष.द.स ., पृ.३०२

५. विशेष

६. समवाय[785]

द्रव्य नौ प्रकार का है –

१. पृथिवी २. जल ३. तेज ४. वायु ५. आकाश ६. काल ७. दिक् ८. आत्मा ९. मन

द्रव्यों के लक्षण तथा स्वरूप पर चर्चा उपलब्ध नही होती है।[786]

षड्दर्शननिर्णय में प्रतिपादित द्रव्य

वैशेषिक-दर्शन के देवता शिव है।[787] द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय, अभाव ये पदार्थ हैं।[788]

षड्दर्शनसमुच्चय की टीका तर्करहस्यदीपिका में द्रव्य

तर्करहस्यदीपिका में वैशेषिक-दर्शन के नाम के आधार - तर्करहस्यदीपिका में कणाद मुनि के विषय में कहा गया है कि एक विशिष्ट मुनि कापोती वृत्ति से मार्ग में पड़े हुए चावल के कणों को ग्रहण करके उदर पूरण करते थें। कण को खाने के कारण उनकी 'कणाद' संज्ञा थी अर्थात् आहार के निमित्त से मार्ग में पड़े हुए चावल के दानों को ग्रहण करके उदर पूरण करने से मुनि विशेष की 'कणाद' संज्ञा थी। जिस प्रकार कबूतर खेतों में पड़े हुए अनाज के दानों को खाकर अपनी आजीविका चलाता है उसी प्रकार कणाद मुनि ने भी गृहस्थों से बिना मागें खेतों में पड़े हुए अन्न के कणों को एकत्रित करके खाने के कारण कपोत वृत्ति वाले कहलाते थे। कणाद मुनि के सामने शिव द्वारा उलूक रूप धारण करके वैशेषिक-दर्शन का प्रकाशन किया गया - **तस्य कणादस्य मुनेः पुरः शिवेनोलूकरूपेण मतमेतत्प्रकाशितम्। तत औलूक्यं प्रोच्यते।**[789] अतः इस दर्शन को 'औलूक्य-दर्शन' कहा जाता है। वैशेषिक मतानुयायी 'पशुपति' अर्थात् शिव की भक्ति करने से इस दर्शन को पाशुपत दर्शन कहते हैं।[790] कणाद मुनि के शिष्य होने से वैशेषिकों को 'काणाद' भी कहा जाता है। आचार्य कणाद का '

---

[785] षड्दर्शनसमुच्चय लघुवृत्ति, पृ.५३

[786] वही, पृ.५३

[787] षड्दर्शननिर्णय, पृ. ३२४

[788] वही, पृ. ३२४

[789] त. र. दी., पृ. ४०६

[790] वही,पृ. ४०६

प्रागभिधानीपरिकर' यह नाम भी प्रचलित है।[791] तत्त्व मीमांसा के विषय में यहाँ न्याय एवं वैशेषिक-दर्शन में मतभेद है। इन तत्त्वों का विवरण षड्दर्शनसमुच्चय की दीपिका टीका में निम्नलिखित है –

पदार्थ – यहाँ वैशेषिक-दर्शन में वर्णित द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय[792] ये छः तत्त्व स्वीकार किये गये हैं। वैशेषिक में द्रव्य प्रथम तत्त्व है। द्वितीय तत्त्व गुण है। कर्म को तृतीय पदार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। चतुर्थ पदार्थ के रूप में सामान्य है। पञ्चम तथा षष्ठ पदार्थ के रूप में विशेष और समवाय को स्वीकार किया गया है। वैशेषिक-दर्शन में छः तत्त्व स्वीकार किये गये हैं।[793] वैशेषिक-दर्शन के प्रथम पदार्थ द्रव्यों में कुछ नित्य है और कुछ अनित्य है। कर्म को अनित्य ही स्वीकार किया गया है। सामान्य, विशेष तथा समवाय तो नित्य है। कुछ आचार्य अभाव नामक सप्तम पदार्थ को भी स्वीकार करते है।[794]

द्रव्य - छः पदार्थों में नौ[795] प्रकार के द्रव्य हैं। जिनका विवेचन निम्नलिखित है -

(१) पृथिवी (२) जल (३) तेज (४) वायु (५) आकाश (६) काल (७) दिशा (८) आत्मा (९) मन।

द्रव्य नौ है। यहाँ पर 'द्रव्यम्' इस पद का प्रयोग जाति को ध्यान में रखकर किया गया है, क्योंकि इन नौ पदार्थों में द्रव्यत्व जाति एक है। इस प्रकार जहाँ भी एकवचन का प्रयोग दिखाई देता है वहाँ पर जाति का कथन किया गया है।[796] इस प्रकार द्रव्यों की सङ्ख्या नौ है। यहाँ इनकी व्याख्या निम्नवत् है -

पृथिवी - भू का अर्थ पृथिवी है।[797] पृथिवी कठोर होती है। वह पाषाण, वनस्पति के रूप होती है। **काठिन्यलक्षणा मृत्पाषाणवनस्पतिरूपा।** [798]

---

[791] वही, पृ. ४०६

[792] वही, पृ. ४०६

[793] वही, पृ. ४०७

[794] वही, पृ. ४०७

[795] वही, पृ. ४०७

[796] त. र. दी.,पृ. ४०७

[797] वही, पृ. ४०७

[798] वही, पृ. ४०७

जल - जल का अर्थ है – पानी। जल सरोवर, समुद्र, ओस आदि अनेक रूपों में होता है।[799]

तेज - तेज अर्थात् अग्नि। तेज के चार प्रकार हैं – (१) भौम (२) दिव्य (३) औदर्य (४) आकरज।

तेजोऽग्निः, तच्च चतुर्धा, भौमं काष्ठेन्धनप्रभवं, दिव्यं सूर्यविद्युदादिजं, आहारपरिणामहेतुरौदर्यं, आकारजं च सुवर्णादि।[800]

(१) भौम - भौम अर्थात् काष्ठ की लकड़ी से उत्पन्न हुआ तेज द्रव्य भौम जाति का है।

(२) दिव्य - सूर्य और विद्युत से उत्पन्न तेज दिव्य जाति का है।

(३) औदर्य - भोजन आदि के पाचन में कारणभूत तेज औदर्य जाति का है।

(४) आकरज - खान में उत्पन्न सुवर्णादि तेज आकरज जाति का है। **आकारजं च सुवर्णादि।**[801]

वायु - अनिल का अर्थ वायु है।[802] ये चारों द्रव्य पृथिवी, जल, तेज, वायु अनेक प्रकार के होते हैं।

आकाश – यहाँ गुणरत्नसूरि अन्तरिक्ष को आकाश कहते हैं। यह आकाश द्रव्य नित्य है, अमूर्त है, विभु है। विभु शब्द का अर्थ है -विश्वव्यापक।[803] आकाश शब्द रूप लिङ् के द्वारा अनुमेय है [804] क्योंकि शब्द आकाश का गुण है। शब्द आकाश में समवाय सम्बन्ध से रहता है।

काल – दीपिकाकार कहते हैं कि पर और अपर प्रत्ययों के व्यतिरेक से तथा यह कार्य पहले हुआ, यह कार्य बाद में हुआ, यह कार्य जल्दी हुआ, यह कार्य विलम्ब से हुआ, इत्यादि प्रत्यय रूप लिङ्ग से काल द्रव्य की सिद्धि होती है। पिता ज्येष्ठ है, पुत्र कनिष्ठ है, यह काल 'युगपत्, क्रम से, शीघ्र, या धीरे धीरे कार्य हुआ या होगा' इत्यादि पर अपर आदि प्रत्यय सूर्य की गति तथा अन्य द्रव्यों से उत्पन्न न होते हुए दूसरे किसी द्रव्य की अपेक्षा से होता है, क्योंकि सूर्य की गति आदि में होने वाले प्रत्ययों से यह प्रत्यय विलक्षण प्रकार का है। जैसे कि, घट से होने वाला 'यह घट है' ऐसा प्रत्यय, सूर्य की गति आदि से भिन्न

---

[799] वही, पृ. ४०७

[800] वही, पृ. ४०७

[801] त. र. दी., पृ. ४०७

[802] वही, पृ. ४०७

[803] वही, पृ. ४०८

[804] वही, पृ. ४०८

काल द्रव्य की अपेक्षा रखते है। इसलिए परापरादिप्रत्यय का जो निमित्त है, वह पारिशेष न्याय से काल द्रव्य है। इस तरह से काल द्रव्य की सिद्धि होती है। वह एक, नित्य, अमूर्त और विभु द्रव्य है।[805]

दिशा - दिशा भी एक, नित्य, अमूर्त और विभु द्रव्य है।[806] मूर्त द्रव्यों में परस्पर मूर्त द्रव्यों की अपेक्षा से यह उससे पूर्व में, दक्षिण में, पश्चिम में, उत्तर में, अग्निकोण में, नैऋत्य कोण में, वायव्य कोण में, ईशान कोण में, ऊपर और नीचे है। इस अनुसार से दस प्रत्यय जिससे होते है वह दिशा है। उस दिशा के एक होने पर भी कार्य विशेष से उसमें पूर्व पश्चिम आदि अनेक प्रकार के व्यवहार होने लगते हैं। **एतश्चैकत्वेऽपि प्राच्यादिभेदेन नानात्वं कार्यविशेषाद्व्यवस्थितम्।** [807]

आत्मा - गुणरत्नसूरि आत्मा के विषय में कहते हैं कि जीव, नित्य-अमूर्त और विभु द्रव्य है। **आत्मा जीवोऽनेको नित्योऽमूर्तो विभुर्द्रव्यं च।** [808] बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न तथा भावना नामक संस्कार और द्वेष ये नौ आत्मा के विशेष गुण हैं। वैशेषिक-दर्शन के अनुसार इन गुणों का विच्छेद होना ही मोक्ष प्राप्त करना है।[809]

मन - गुणरत्नसूरि मन को चित्त कहते हैं तथा इसका बड़ा गूढ़ वर्णन करते हुए कहते हैं कि वह नित्य है, परमाणुरूप है, अनेक है। प्रत्येक शरीर में एक मन रहता है तथा अत्यन्त शीघ्र गति से समग्र शरीर में गति करता है। एक साथ सभी ज्ञानों की उत्पत्ति न होना, यही मन का लिङ्ग है **युगपज्ज्ञानानुत्पत्तिर्मनसो लिङ्गम्।**[810] अर्थात् मन की सिद्धि में प्रमाण है। आत्मा विभु होने से एक साथ सभी इन्द्रियों और पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है परन्तु ऐसा होने पर भी ज्ञान की उत्पत्ति क्रम से ही होती है। आत्मा और इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से अतिरिक्त ज्ञानोत्पत्ति में जो दूसरा कारण है वह मन है। जब मन इन्द्रिय के साथ सम्बद्ध होता है तब ज्ञान की उत्पत्ति होती है जब सम्बद्ध नहीं होता है, तब ज्ञान की उत्पत्ति नहीं होती है। तात्पर्य यह है कि आत्मा तो विभु होने के कारण सब जगह पहले से ही व्याप्त है, इसलिए उसका एक साथ सभी इन्द्रियों से संयोग होता है। तर्करहस्यदीपिका के अनुसार पदार्थों के साथ इन्द्रियों का भी एक साथ संयोग हो सकता है - जैसे कि एक आम को खाते

---

[805] वही, पृ. ४०८

[806] वही, पृ. ४०९

[807] त. र. दी., पृ. ४०९

[808] वही, पृ. ४०९

[809] वही, पृ. ४०९

[810] वही, पृ. ४०९

समय रूप, रस, गन्ध तथा उसका स्पर्श आदि सभी के साथ इन्द्रियों का एक साथ सम्बन्ध हो रहा है, उसके बाद भी रूपादि पांच विषयों का ज्ञान एक साथ उत्पन्न नहीं होता है परन्तु क्रम से ही उत्पन्न होता है। इस क्रमोत्पत्ति से यह ज्ञान प्राप्त होता है कि कोई एक सूक्ष्म पदार्थ है कि जिसके क्रमिक संयोग से ज्ञान एक साथ उत्पन्न न होते हुए क्रमशः उत्पन्न होता है। यह कारण आत्मा और इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के अतिरिक्त मन है। मन का जिस इन्द्रिय के साथ संयोग होता है, उस इन्द्रिय से ज्ञान उत्पन्न होता है। उसका संयोग ही ज्ञानोत्पत्ति का कारण बनता है। यदि मन का संयोग न हो तो इन्द्रिय का पदार्थ के साथ संयोग होने पर भी ज्ञानोत्पत्ति नहीं होती है।[811]

जब मनुष्य की मृत्यु होती है, तब वह मन मृत-शरीर से निकल कर स्वर्ग में जाता है और वहाँ स्वर्गीय दिव्य शरीर के साथ सम्बन्ध होकर, उसका उपभोग करता है। जब मनुष्य की मृत्यु होती है, तब मन का स्थूल शरीर के साथ का सम्बन्ध छूट जाता है। वह मन उस समय अदृष्ट पुण्य-पाप के अनुसार वहाँ निर्मित हुए अत्यन्त सूक्ष्म अतिवाहक लिंगशरीर को प्राप्त करता है और उसके द्वारा स्वर्ग तक पहुँच जाता है। जीव के अदृष्टानुसार मृत्यु के बाद ही परमाणुओं में क्रिया होती है। उस क्रिया के द्वारा द्वयणुक–त्र्यणुक आदि क्रम से अत्यन्त सूक्ष्म आतिवाहिक शरीर बन जाता है। **प्रतिवहनधर्मकत्वादातिवाहिकमित्युच्यते।**[812] वह शरीर मन को स्वर्गादि तक पहुँचाता है।[813] वह सूक्ष्म शरीर इन्द्रिय का विषय नहीं बनता है।

मृत शरीर में से निकला हुआ वह मन, मृत शरीर के समीप में जीव के अदृष्ट के वश से परमाणुओं में उत्पन्न हुए क्रिया के द्वारा द्वयणुक-त्र्यणुक आदि के क्रम से अतिसूक्ष्म–इन्द्रिय अगोचर शरीर में प्रवेश करके स्वर्गादि में जाता है। वहाँ स्वर्गीयादि भोग्य शरीरों के साथ सम्बन्ध होता है और उसका भोग करता है। यह मन अकेला सूक्ष्म शरीर के बिना इतनी दूर गति नहीं कर सकता है। सूक्ष्म शरीर मन को स्वर्ग–नरकादि देश तक ले जाने में कारण होने से आतिवाहिक कहा जाता है।[814]

आचार्य गुणरत्नसूरि तर्करहस्यदीपिका में नौ द्रव्यों के सामन्य लक्षणों का कथन करने के बाद अब विशिष्ट तथ्यों का वर्णन करते हुए कहते हैं कि नौ द्रव्यों में पृथिवी, जल, तेज और वायु ये चारों द्रव्यों के नित्य और अनित्य दो भेद है। परमाणु रूप पृथिवी नित्य है, क्योंकि कहा गया है कि 'सत् होने पर भी जो वस्तु कारणों से उत्पन्न नहीं होती है, वह नित्य होती है।' परमाणु रूप द्रव्य सत् है और किन्हीं

---

811 त. र. दी., पृ. ४०९

812 वही, पृ. ४०९

813 वही, पृ. ४०९

814 वही, पृ. ४०९

कारणों से उत्पन्न नहीं होते हैं, इसलिए नित्य है। **सदकारणवन्नित्यम्।**[815] परमाणु के संयोग से उत्पन्न हुए द्वयणुकादि कार्य द्रव्य अनित्य हैं। आकाश, काल, दिक् आदि द्रव्य नित्य हैं, क्योंकि ये किसी कारण से उत्पन्न नहीं होते हैं।[816]

तर्करहस्यदीपिकाकार कहते हैं कि पृथिवी के पाषाण आदि भेदों में भी पृथ्वीत्व का समवाय सम्बन्ध होता है। वह समवाय जलादि पदार्थों से पृथिवी को भिन्न सिद्ध करता है तथा पृथिवी आदि जलादि से भिन्न हैं, ऐसे व्यवहार में कारण बनता है। आकाश, काल, दिशा ये तीन द्रव्य एक है। इसलिए उसमें आकाशत्व आदि जाति प्राप्त नहीं होती है, इसलिए उनकी आकाश, काल, दिशा ये संज्ञाएं अनादि कालीन है।

द्रव्य को सामान्य रूप से दो प्रकारों में बाँटकर गुणरत्नसूरि कहते हैं कि यह नौ प्रकार का द्रव्य सामान्य रूप से दो प्रकार का हैं। (१) अद्रव्य द्रव्य, (२) अनेकद्रव्य द्रव्य।

अद्रव्य-द्रव्य - आकाश, काल, दिशा, आत्मा, मन और परमाणु अद्रव्य-द्रव्य है, क्योंकि कारण द्रव्यों से उत्पन्न नहीं होते हैं, इसलिए आकाशादि अद्रव्य-द्रव्य है अर्थात् नित्य है।**'इदं च नवविधमपि द्रव्यं सामान्यतो द्वेधा, अद्रव्यं द्रव्यं अनेकद्रव्यं च द्रव्यम् तत्राद्रव्यमाकाशकालदिगात्ममनः परमाणवः कारणद्रव्यानारब्धत्वात्। अनेकद्रव्यं तु द्वयणुकादि स्कन्धाः।'**[817]

अनेकद्रव्य-द्रव्य – द्वयणुकादि स्कन्ध अनेकद्रव्य द्रव्य हैं। जिसकी उत्पत्ति में अनेक द्रव्य समवायि कारण बनते हैं, वह अनेकद्रव्य-द्रव्य हैं।[818] यथा – परमाणु से उत्पन्न हुए द्वयणुकादि।

आगे द्रव्य की व्याख्या करते हुए दीपिकाकार कहते हैं कि - द्रव्य या तो अद्रव्य नित्य होगा या अनेक द्रव्य अनित्य होगा। कोई भी द्रव्य "एक द्रव्य" जिसकी उत्पत्ति में एक ही समवायि कारण हो वह एक द्रव्य नहीं हो सकता है यथा-ज्ञानादि गुण। दो परमाणु से उत्पन्न कार्य द्रव्य को अणु कहा जाता है, क्योंकि दो परमाणु से उत्पन्न हुए द्वयणुक का अणु परिमाण होता है। तीन–चार परमाणुओं से उत्पन्न हुए कार्य द्रव्य का परिमाण भी अणु ही होता है, परन्तु वह द्वयणुक नहीं कहा जाता है। तीन या चार द्वयणुक से उत्पन्न हुए कार्य द्रव्य को त्र्यणुक कहा जाता है। परन्तु दो द्वयणुक से उत्पन्न हुए कार्य द्रव्य

---

[815] सदकारणवन्नित्यम्। वै.सू.४/१/१ तर्करहस्यदीपिका में उद्धृत, पृ. ४१०

[816] वही, पृ. ४११

[817] वही, पृ. ४१०

[818] वही, पृ. ४१०

को त्र्यणुक नहीं कहा जाता है, क्योंकि दो द्व्यणुक से उत्पन्न हुए कार्य द्रव्य की उपलब्धि में निमित्तभूत महत् तत्त्व नहीं होता है, तथा त्र्यणुक ही प्रत्यक्ष के योग्य माना गया है।[819] तीन या चार द्व्यणुक से उत्पन्न होने वाला कार्य द्रव्य त्र्यणुक कहा जाता है। दो द्व्यणुकों से उत्पन्न होने वाले कार्य द्रव्य को त्र्यणुक नहीं कहा जा सकता क्योंकि दो द्व्यणुक से उत्पन्न कार्य में इन्द्रियों में ग्रहण करने योग्य महत् परिमाण नहीं होता है। त्र्यणुक द्रव्य ही इन्द्रिय ग्राह्य है। इस प्रकार महत् परिमाण वाले कार्य द्रव्यों की उत्पत्ति होती है। "कारण द्रव्य का परिमाण कार्य में स्व-सजातीय उत्कृष्ट परिमाण को उत्पन्न करता है।" यदि परमाणु के परिमाण को द्व्यणुक के परिमाण में कारण मानेंगे तो उसमें अणु परिमाण के सजातीय उत्कृष्ट अणुतर परिमाण की उत्पत्ति होगी, इसलिए परमाणु के परिमाण को कार्य के परिमाण में कारण न मानते हुए परमाणु की सङ्ख्या को कारण माना जाता है, जिससे द्व्यणुक में अणु परिमाण की ही उत्पत्ति होती है, न कि अणुतर परिमाण से। इस तरह से यदि द्व्यणुक के अणु परिमाण को त्र्यणुक के परिमाण में कारण मानेंगे, तो उसमें भी अणुजातीय उत्कृष्ट अणुतर परिमाण से ही उत्पत्ति होगी, जो इष्ट नहीं है। इसलिए द्व्यणुकों में रहने वाली बहुत्व सङ्ख्या को कारण मानने से ही त्र्यणुक में महत्परिमाण की उत्पत्ति हो जाती है। इससे तीन द्व्यणुक से त्र्यणुक की उत्पत्ति होती है, दो द्व्यणुक से नहीं। दो द्व्यणुक में बहुत्व सङ्ख्या नहीं है, द्वित्वसङ्ख्या ही रहती है।

---

[819] त.र.दी., पृ. ४१०

चतुर्थ–अध्याय

सङ्ग्रहग्रन्थों में गुण एवं कर्म निरूपण

गुण विचार

कर्म विचार

चतुर्थ–अध्याय

सङ्ग्रहग्रन्थों में गुण एवं कर्म निरूपण

गुण विचार - वैशेषिक-दर्शन में सात पदार्थ माने गए हैं। सात पदार्थों में गुण द्वितीय स्थान पर है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों में गुण का स्वरूप निम्नलिखित है –

षड्दर्शनसमुच्चय – षड्दर्शनसमुच्चय में चौबीस गुण स्वीकार किए गए हैं[820] – स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिमाण, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग[821] ये चौबीस गुण हैं।

स्पर्शरसरूपगन्धाः शब्दः संख्या विभागसंयोगौ।

परिमाणं च पृथक्त्वं तथा परत्वापरत्वे च ॥

बुद्धिः सुखदुःखेच्छाधर्माधर्मप्रयत्नसंस्काराः।

द्वेषः स्नेहगुरुत्वे द्रवत्ववेगौ गुणा एते ॥[822]

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह – शङ्कराचार्य के अनुसार गुण चौबीस हैं[823] –

चतुर्विंशतिधा भिन्ना गुणास्तेऽपि यथाक्रमात्।

शब्दः स्पर्शो रसो रूपं गन्धसंयोगवेगताः॥

संख्याद्रवत्वसंस्कारापरिणामविभागताः।

प्रयत्नसुखदुःखेच्छाबुद्धिद्वेषपृथक्त्वताः

परत्वश्चापरत्वञ्च धर्माधर्मौ च गौरवम्।

इमे गुणाश्चतुर्विंशत्यथ .... ॥[824]

इनका विस्तार से वर्णन नही प्राप्त होता है।

---

820 ष. द. स. , पृ. ५२

821 वही, पृ. ५३

822 वही, पृ. ४१२

823 स. सि. सं., पृ. २०

824 वही, पृ. २१

पदार्थधर्मसङ्ग्रह – प्रशस्तपाद गुण का लक्षण करते हुए कहते हैं कि गुणत्व जाति से युक्त, द्रव्याश्रित, गुण शून्य, क्रिया से रहित गुण है। **'रूपादीनां गुणानां सर्वेषां गुणत्वाभिसम्बन्धो द्रव्याश्रितत्वं निर्गुणत्वं निष्क्रियत्वम्।'** [825] गुण के इस लक्षण में चार पारिभाषिक पद प्रयोग किए गए है जो निम्नलिखित हैं –

१. **गुणत्वाभिसम्बन्धे –** गुणत्व जाति से युक्त अर्थात् गुणों में गुणत्व जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है।[826]
२. **द्रव्याश्रितत्वम् –** गुण द्रव्यों में ही आश्रित होते हैं। वैशेषिक-दर्शन की मान्यता है कि गुण केवल द्रव्य पर ही आश्रित रहते हैं क्योंकि निर्गुण द्रव्य की प्राप्ति नहीं होती है। द्रव्य सदा ही गुणों से युक्त रहता है।[827]
३. **निर्गुणत्वम् –** गुण में गुण नहीं रहते हैं क्योंकि एक गुण से दूसरे गुण की उत्पत्ति नही होती है।[828]
४. **निष्क्रियत्वम् -** वैशेषिक-दर्शन के अनुसार गुणों में क्रिया नहीं रहती है।[829]

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में गुणों का विभाजन – प्रशस्तपाद ने गुणों का विभाजन अनेक प्रकार से किया है जो निम्नलिखित हैं –

१. मूर्त, अमूर्त, उभयगुणों के रूप में

१. **मूर्त गुण –** रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व, स्नेह, वेग।[830]
२. **अमूर्त गुण –** बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना।[831]

३. **उभयगुण –** जो गुण मूर्त और अमूर्त दोनों प्रकार के द्रव्यों में रहते हैं वह उभय गुण कहलाते हैं।[832]

---

825 प. ध. सं.,पृ. ६०
826 वही, पृ. ६०
827 वै. द. प. नि. ,पृ.२६४
828 वही, पृ. ६०
829 प. ध. सं., पृ. ६०
830 वही, पृ. ६०
831 प. ध. सं., पृ. ६१
832 वही, पृ. ६१

२. अनेकवृत्ति गुण और एकवृत्ति गुण

१. **अनेकवृत्ति गुण** – संयोग, विभाग, द्वित्व, द्विपृथक्त्व[833]

२. **एकवृत्ति गुण** – शेष सभी गुण[834]

३ विशेष और सामान्य गुण

१. **विशेष गुण** – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, स्नेह, द्रवत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, शब्द, भावना।[835]

२. **सामान्य गुण** – संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग।[836]

४ बाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्य, द्वीन्द्रियग्राह्य, अन्तःकरण ग्राह्य, अतीन्द्रिय

१. **बाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्य** – शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध गुण, ये पाँच एक ही इन्द्रिय से ग्रहीत होते हैं तथा ये बाह्येन्द्रिय ग्राह्य कहलाते हैं।[837]

२. **द्वीन्द्रियग्राह्य** – संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग ये दस गुण दो इन्द्रियों अर्थात् चक्षु और त्वग् से ग्रहीत होते हैं।[838]

३. **अन्तःकरण ग्राह्य** – बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष और प्रयत्न ये अन्तःकरण ग्राह्य है।[839]

४. **अतीन्द्रिय** – गुरुत्व, धर्म, अधर्म और भावना ये अतीन्द्रिय गुण हैं।[840]

५ कारण गुण पूर्वक अकारण गुण पूर्वक

१. **कारण गुण पूर्वक** – अपने आश्रयीभूत द्रव्य के अवयवों में रहने वाले अपने–अपने समान जातीय गुण से उत्पन्न होते हैं अतः कारण गुण कहे जाते हैं। कारण गुण निम्नलिखित है –

---

833 वही, पृ. ६१

834 वही, पृ. ६१

835 वही, पृ. ६१

836 वही, पृ. ६१

837 वही, पृ. ६१

838 वही, पृ. ६१

839 वही, पृ. ६१

840 प. ध. सं., पृ. ६१

अपाकज रूप, आपाकज रस, आपाकज गन्ध, आपाकज स्पर्श, परिमाण, एकत्व, एकपृथक्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग।[841]

२. **अकारण गुण पूर्वक –** ये अपने आश्रयों के अवयवों में रहने वाले समान जातीय गुण से उत्पन्न नहीं होते क्योंकि इनके आश्रय नित्य हैं, इन गुणों के समवायि कारण का कोई कारण ही नही है। ये निम्नलिखित हैं – बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द।[842]

५ संयोगज, कर्मज, विभागज और बुद्ध्यपेक्ष -

१. **संयोगज -** बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना, शब्द, रुई प्रभृति के परिमाण, उत्तरदेश के साथ संयोग और नैमित्तिक द्रवत्व ये तेरह गुण संयोग से उत्पन्न होते हैं।[843] संयोग, विभाग और वेग ये क्रिया से उत्पन्न होते हैं।[844]

२. **कर्मज –** आद्य संयोग और आद्य विभाग ही कर्मज होते हैं।[845]

३. **विभागज -** द्वितीय संयोग की उत्पत्ति संयोग से तथा द्वितीय विभाग की उत्पत्ति विभाग से होती है।[846]

४. **बुद्ध्यपेक्ष -** परत्व, अपरत्व, द्वित्व और द्विपृथक्त्व आदि गुण बुद्धि सापेक्ष हैं।[847]

७. समानजात्यारम्भक, असमानजात्यारम्भक, समानासमानजात्यारम्भक, स्वाश्रयसमवेतारम्भक

१. **समानजात्यारम्भक –** रूप, रस, गन्ध, अनुष्णाशीत स्पर्श, शब्द, परिमाण, एकत्व, संख्या, एकपृथक्त्व, स्नेह ये गुण अपने समान जातीय गुणों के ही उत्पादक होते हैं।[848]

---

841 वही, पृ. ६२

842 वही, पृ. ६२

843 वही, पृ. ६२

844 वही, पृ. ६३

845 वही, पृ. ६३

846 वही, पृ. ६३

847 प. ध. सं., पृ. ६३

848 वही, पृ. ६४

२. **असमानजात्यारम्भक –** सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न ये गुण विजातीय कार्य के उत्पादक हैं।[849]

३. **समानासमानजात्यारम्भक –** सयोग, विभाग, संख्या, गुरुत्व, द्रवत्व, उष्ण स्पर्श, ज्ञान, धर्म, अधर्म, संस्कार ये गुण समान तथा असमान जाति के कार्य के जनक होते हैं।[850]

१. **स्वाश्रयसमवेतारम्भक –** ज्ञान, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, भावना तथा शब्द ये गुण अपने आधार से सम्बद्ध कार्य के उत्पादक हैं।[851]

२. **परत्रारम्भक –** रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिमाण, स्नेह, प्रयत्न ये गुण अन्य में कार्योत्पादक होते है।[852]

३. **उभयत्रारम्भक –** संयोग, विभाग, संख्या, एकपृथक्त्व, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग, धर्म और अधर्म ये नौ अपने आश्रय एवं अनाश्रय दोनों प्रकार की वस्तुओं में कार्य को उत्पन्न करते हैं।[853]

९. क्रियाहेतु, असमवायिकारण, निमित्तकारण, उभयकारण, अकारण

१. **क्रियाहेतु –** गुरुत्व, द्रवत्व, वेग, प्रयत्न, धर्म, अधर्म और विशेष प्रकार के संयोग से ये सात गुण क्रिया के कारण हैं। इनमें गुरुत्व से पतन रूप क्रिया, द्रवत्व से प्रसारण रूप क्रिया, वेग से तीर की उत्तर क्रियाएँ, प्रयत्न से शरीर की क्रिया, धर्म और अधर्म से अग्नि आदि में उर्ध्व ज्वलन आदि क्रियाएँ होती हैं। नोदन एवं अभिघात रूप विशेष प्रकार के संयोग ही 'संयोगविशेष' शब्द से कहे गए हैं।[854]

२. असमवायिकारण – वैशेषिक-दर्शन के अनुसार समवायि कारण द्रव्य होता है, अतः रूप, रस, गन्ध, अनुष्णाशीत स्पर्श, संख्या, परिमाण, एक पृथक्त्व, स्नेह और शब्द ये गुण हैं अतः ये असमवायिकारण हैं।[855]

---

849 वही, पृ. ६४

850 वही, पृ. ६४

851 वही, पृ. ६४

852 वही, पृ. ६५

853 वही, पृ. ६५

854 प. ध. सं.,पृ. ६६

855 वही, पृ. ६६

३. निमित्तकारण – बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, भावना ये निमित्त कारण हैं क्योंकि समवायि-असमवायि कारण से भिन्न निमित्त कारण होता है।[856]

४. उभयकारण – संयोग, विभाग, उष्ण स्पर्श, गुरुत्व, द्रवत्व और वेग ये सभी गुण असमवायि कारण और निमित्तकारण दोनो हैं।[857]

५. अकारण – परत्व, अपरत्व, द्वित्व, द्विपृथक्त्व ये चार गुण किसी भी गुण के कारण नही हैं।[858]

१०. व्याप्यवृत्ति, अव्याप्यवृत्ति – संयोग, विभाग, शब्द एवं आत्मा के सभी विशेष गुण अव्याप्य वृत्ति गुण हैं। ये गुण प्रदेश वृत्ति भी कहलाते है। प्रदेश वृत्ति का अर्थ अव्याप्यवृत्तित्व तथा आश्रय व्यापित्व है अर्थात् ये गुण अपने आश्रय के किसी अंश में रहते भी हैं और अपने आश्रय के दूसरे अंश में नहीं भी रहते हैं।[859] ऐसे गुणों का एक ही आश्रय में भाव और अभाव दोनो प्राप्त होते हैं। वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ निरूपण की लेखिका प्रो. शशिप्रभा कुमार का यही मत है।[860]

११. यावद्द्रव्यभावी, अयावद्द्रव्यभावी - अपाकज रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, परिमाण, एकत्व, एकपृथकत्व, सांसिद्धिक द्रवत्व, गुरूत्व और स्नेह ये दस गुण 'यावद्द्रव्यभावी' गुण है।[861] यावद् द्रव्यभावी का अर्थ हैं कि आश्रय के रहने तक इन गुणों का नाश नहीं होता है। शेष सभी गुण अयावद्द्रव्यभावी गुण है।[862]

रूप – रूप गुण का प्रत्यक्ष चक्षुरिन्द्रिय से होता है। **रूपं चक्षुर्ग्राह्यम्।**[863] यह पृथिवी, जल तथा तेज में रहता है। द्रव्यादि का प्रत्यक्ष चक्षु नामक इन्द्रिय से होता है। चक्षु से होने वाले प्रत्यक्ष में रूप नेत्रों की सहायता करता है। यह श्वेत, रक्त आदि अनेक प्रकार का है। जलादि द्रव्यों के परमाणुओं में नित्य रहता है। पृथिवी के परमाणुओं में अग्नि संयोग से नष्ट होता है। सम्पूर्ण कार्यद्रव्यों में कारण के गुणों से उत्पन्न होता है। आधार द्रव्य अर्थात् द्रव्य के नाश से ही रूप नामक गुण का नाश होता है।[864]

---

856 वही, पृ. ६७

857 वही, पृ. ६७

858 वही, पृ. ६७

859 वही, पृ. ६७

860 प. ध. सं., पृ. ६७

861 वही, पृ. ६७

862 वही, पृ. ६७

863 वही, पृ. ६८

864 वही, पृ. ६९

रस – रसनेन्द्रिय से रस गुण का प्रत्यक्ष होता है। **रसो रसनग्राह्यः।**[865] यह पृथिवी और जल में रहता है। इससे जीवनी शक्ति, शरीर में पुष्टि, बल, निरोगता प्राप्त होता है। मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त, कटु, कषाय भेद से यह छः प्रकार का होता है। यह नित्य परमाणु रूप तथा अनित्य कार्य रूप होता है।[866]

गन्ध – गन्ध गुण का प्रत्यक्ष घ्राणेन्द्रिय से होता है। **गन्धो घ्राणग्राह्यः।**[867] यह पृथिवी में रहता है। गन्ध के ज्ञान में घ्राणेन्द्रिय की सहायता करता है। यह सुरभि तथा असुरभि रूप से दो प्रकार का होता है। गन्ध की नित्यता अनित्यता भी रूप, रस के समान है अर्थात् जैसे पार्थिव परमाणुओं के रूप व रस की उत्पत्ति एवं विनाश दोनों ही अग्नि के संयोग से होते हैं तथा कार्यद्रव्यों में उनकी उत्पत्ति कारण द्रव्य के गुणों से एवं नाश आश्रय द्रव्य के नाश से होता है।[868]

स्पर्श – स्पर्श गुण का त्वक् इन्द्रिय से प्रत्यक्ष होता है। **स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यः।**[869] यह पृथिवी, जल, तेज, वायु नामक द्रव्य में रहता है। यह रूप का सहायक है। इसके शीत, उष्ण तथा अनुष्णाशीत भेद से तीन प्रकार का है।[870] स्पर्श नामक गुण का वर्णन करने के बाद पाकज प्रक्रिया का वर्णन प्राप्त होता है। जो अधोलिखित है।

पाक-प्रक्रिया – तर्कसङ्ग्रह में पाक को 'तेजःसंयोगमात्र' कहा गया है[871] किन्तु न्यायबोधिनीकार 'विजातीय तेजःसंयोग' को पाक कहा है।[872] यहाँ समस्या यह है कि यह जो पाक क्रिया है वह केवल परमाणुओं में होती है अथवा संघातरूप घट में। प्रथम मत पीलुपाकवाद है। द्वितीय मत पिठरपाकवाद है।

१. **पीलुपाकवाद –** पीलु अर्थात् परमाणुओं में पाक होता है। यह वैशेषिक-दर्शन की मान्यता है। जब एक कच्चा घडा पकने के लिए भट्टी में रखा जाता है, तब वैशेषिक सिद्धान्तानुसार अग्नि के तीव्र तथा उष्ण अभिघात से उस अवयवी घट के परमाणु रूप अवयवों के मध्य परस्पर आरम्भक संयोग का विनाश हो जाता है, जिससे कि द्वयणुकों का विघटन तथा उस अवयवी द्रव्य घट का भी नाश हो जाता है। इस प्रकार जब घट का संघात रूप सर्वथा विघटित हो

---

865 वही, पृ. ६९

866 वही, पृ. ६९

867 वही, पृ. ६९

868 प. ध. सं., पृ. ७०

869 वही, पृ. ७०

870 वही, पृ. ७१

871 त.सं ., पृ. ९४

872 न्यायबोधिनी, पृ. २१३

जाता है तब पुनः तृतीय अग्नि-संयोग से ही उस घट के परमाणुओं का पाक एवं रूपादि-परिवर्तन हो जाता है तथा तदनन्तर भोगी जीवों के विशेष अदृष्टवश उन विघटित तथा पक्व परमाणुओं में पुनःविपरीत क्रिया उत्पन्न होती है तथा संयोगवश द्वयणुकादि की उत्पत्ति क्रम से घटादि स्थूल द्रव्य की उत्पत्ति हो जाती है, फिर इस नए कार्यद्रव्य में स्वभाविक कारण-गुण के क्रम से रक्त रूपादि गुणों की उत्पत्ति होती है।[873]

२. **पिठरपाक –** न्याय-दर्शन पिठरपाक सिद्धान्त को मानता है, जिसके अनुसार पाक परमाणुओं का नहीं, अपितु कार्य-कारण समुदाय का होता है।[874]

संख्या – संख्या गुण का लक्षण करते हुए प्रशस्तपाद कहते हैं कि एक, दो, इत्यादि व्यवहार का कारण संख्या है। **एकादिव्यवहारहेतुः सङ्ख्या।**[875] प्रशस्तपाद ने संख्या के दो भेद किए हैं –

१. एकद्रव्या
२. अनेकद्रव्या

१. **एकद्रव्या –** एक द्रव्य में रहने वाली संख्या को 'एकद्रव्या' कहते हैं। एकद्रव्या संख्या के जलादि द्रव्यों के परमाणुओं के रूपादिगुणों के समान नित्य अनित्य भेद होते हैं।[876]

२. **अनेकद्रव्या –** अनेक द्रव्यों में रहने वाली संख्या को अनेकद्रव्या कहते हैं।[877]

अनेकद्रव्या संख्या दो से लेकर परार्धपर्यन्त होती है। एकत्व संख्या से अनेक को विषय करने वाली अपेक्षाबुद्धि से उत्पत्ति होती है तथा अपेक्षा बुद्धि के विनाश से विनाश भी होता है अतः यह सिद्ध होता है कि द्वित्वादि संख्या नामक गुण का उत्पत्ति और विनाश होता है।

परिमाण – मान अर्थात् माप व्यवहार का कारण परिमाण होता है। **मानव्यवहारकारणम् परिमाणम्।**[878] यह चार प्रकार का है –

१. अणु
२. महत्

[873] वैशेषिकदर्शन में पदार्थनिरूपण, पृ. २९९

[874] वही, पृ. ३०१

[875] प. ध. सं.,पृ. ७४

[876] वही, पृ. ७४

[877] वही, पृ. ७४

[878] वही, पृ. ८६

३. दीर्घ

४. ह्रस्व[879]

५. अणु और महत् के पुनः दो-दो भेद हो जाते हैं

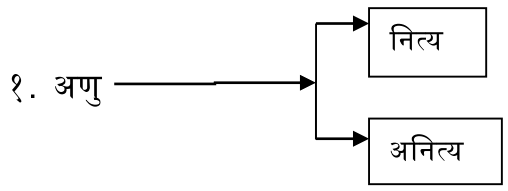

नित्य - पृथिवी से लेकर वायु पर्यन्त चारों द्रव्यों के परमाणुओं तथा मन में रहने वाला अणु परिमाण नित्य है। इसे वैशेषिक सूत्रों में पारिमाण्डल्य की संज्ञा दी गई है।[880]

अनित्य – अनित्य अणु परिमाण द्व्यणुक नामक अवयवी-द्रव्य में रहता है।[881]

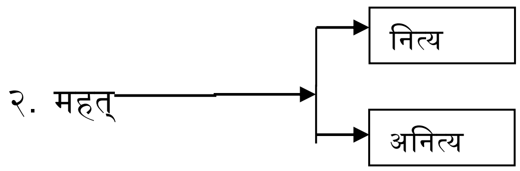

नित्य – नित्य महत् परिमाण आकाश, काल, दिशा, आत्मा चारों नित्य द्रव्यों में रहता है।[882]

अनित्य – अनित्य महत् परिमाण त्र्यणुक आदि अनित्य द्रव्यों में पाया जाता है।[883]

दीर्घ एवं ह्रस्व – प्रशस्तपाद का कथन है कि जिन द्रव्यों के महत् व अणु परिमाण उत्पत्तिशील अनित्य हैं उनमें दीर्घत्व और ह्रस्वत्व भी समवाय सम्बन्ध से उत्पत्तिशील होते हैं।[884] वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ निरूपण नामक वैशेषिक-दर्शन के ग्रन्थ में इसको निम्नलिखित चित्र के माध्यम से समझाया गया है।

---

879 प. ध. सं., पृ. ८६

880 वही, पृ. ८६

881 वही, पृ. ८६

882 वही, पृ. ८६

883 वही, पृ. ८६

884 प. ध. सं., पृ. ८६

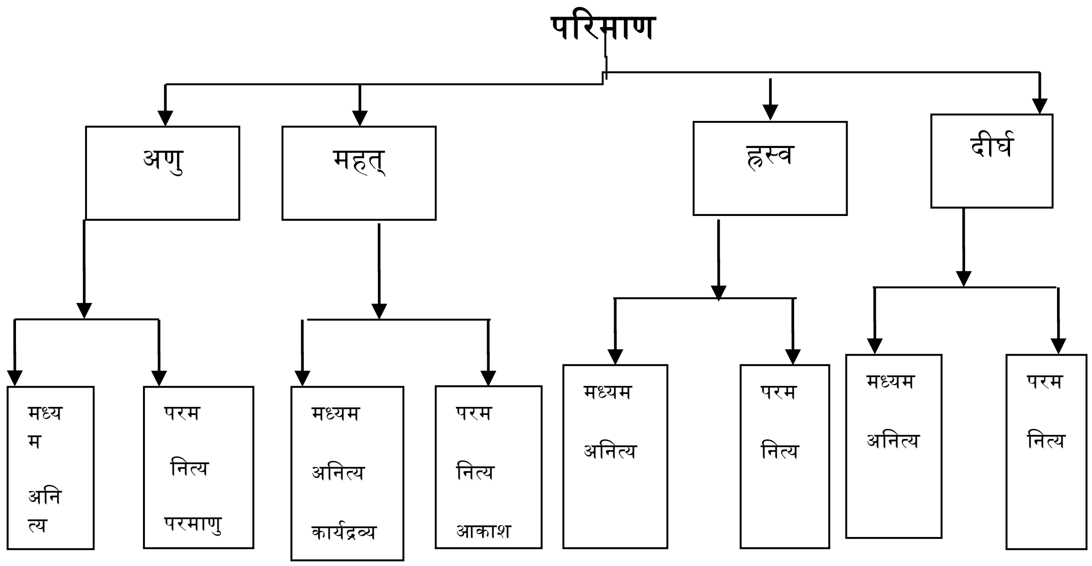

पृथक्त्व – अपोद्धार अर्थात् पृथक् करना इस व्यवहार का कारण पृथक्त्व गुण है। **पृथक्त्वमपोद्धारव्यवहारकारणम्।**[885] वैशेषिक-दर्शन में संख्या के समान एकद्रव्य तथा अनेकद्रव्य पृथक्त्व के दो भेद होते है। एकद्रव्यवृत्ति अर्थात् कोई कोई पृथक्त्व तो केवल एकद्रव्य में रहता है, जैसे एक पृथक्त्व, कोई पृथक्त्व दो या अधिक द्रव्यों में रहता है, वह अनेक पृथक्त्व है।[886] पृथक्त्व नामक गुण भी संख्या के समान नित्य और अनित्य दो प्रकार का होता है।

संयोग – प्रशस्तपाद ने संयोग नामक गुण का लक्षण करते हुए कहते हैं कि दो पदार्थ अथवा अनेक पदार्थ परस्पर संयुक्त हैं इत्यादि ज्ञान तथा शब्द व्यवहार के कारण गुण का नाम संयोग है। **संयोगः संयुक्तप्रत्ययनिमित्तम्।**[887]

संयोग गुण द्रव्य, गुण तथा कर्म पदार्थों को उत्पन्न करता है, यथा तन्तु आदि अवयवों का संयोग पटादि द्रव्य में, भेरी आकाश का संयोग भी शब्द गुण में, प्रयत्नवान् आत्मा तथा हस्त का संयोग हस्त क्रिया में कारण होता है।[888]

संयोग का एक अन्य लक्षण भी प्रशस्तपाद ने बताया है कि अप्राप्त दो द्रव्यों के प्राप्त होने को संयोग गुण कहते हैं।[889] समवाय के तीन भेद है –

१. अन्यतरकर्मज

---

885 वही, पृ. ९५

886 वही, पृ. ९५

887 वही, पृ. ९८

888 प. ध. सं., पृ. ९८

889 वही, पृ. ९९

२. उभयकर्मज

३. संयोगज[890]

१. **अन्यतरकर्मज –** प्रशस्तपाद के अनुसार एक क्रिया से युक्त द्रव्य के साथ दूसरे निष्क्रिय द्रव्य का संयोग अन्यतरकर्मज कहलाता है। यथा – सूखे वृक्ष के साथ बाज पक्षी का संयोग।[891]

२. **उभयकर्मज –** दो विरुद्ध दिशाओं में रहने वाले दो क्रियायुक्त द्रव्यों का संयोग उभयकर्मज है। जैसे कि दो लड़ते हुए पहलवानों अथवा मेषों का संयोग।[892]

३. **संयोगज –** उत्पन्न होते ही या उत्पन्न होने के बहुत बाद किसी निष्क्रिय द्रव्य का अपने अवयवों के संयोग से अपने अकारणीभूत द्रव्यों के साथ संयोग होता है, वह संयोगज संयोग है। यह एक संयोग से, दो संयोगों से अथवा बहुत संयोगों से भी उत्पन्न होता है।[893]

विभाग – प्रशस्तपाद विभाग का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैंकि 'ये दोनों वस्तुएं विभक्त हैं' ऐसी प्रतीति का हेतु विभाग है अर्थात् पहले से प्राप्त संयुक्त दो वस्तुओं का अप्राप्त होना विभाग है। **विभागो विभक्तप्रत्ययनिमित्तम्।**[894] विभाग भी तीन प्रकार का है –

१. अन्यतरकर्मज

२. उभयकर्मज

३. विभागज विभाग[895]

१. **अन्यतरकर्मज –** वृक्ष तथा पक्षी इन दोनों मे से केवल पक्षी की क्रिया से वृक्ष तथा पक्षी का विभाग होता है, यह अन्यतर क्रियाजन्य विभाग है।[896]

२. **उभयकर्मज –** दोनों मल्ल या मेषों की क्रिया से दोनों का परस्पर पृथक् होना यह उभयकर्मज विभाग है।[897]

---

890 वही, पृ. ९९-१००

891 वही, पृ. १००

892 वही, पृ. १००

893 वही, पृ. १०१

894 प. ध. सं., पृ. १०७

895 वही, पृ. १०७

896 वही, पृ. १०७

897 वही, पृ. १०७

३. **विभागज विभाग** – यह क्रिया से नहीं, अपितु पूर्व विभाग से ही जन्य होता है। यह दो प्रकार का है –

१. कारण विभागज

२. कारणाकारण विभागज[898]

१. **कारणविभागज** – कार्य से नियत रूप से सम्बद्ध, अवयव रूप कारण में उत्पन्न हुई क्रिया जिस समय अपने आश्रय रूप अवयव द्रव्य में दूसरे द्रव्य से विभाग को उत्पन्न करती है, उस समय विभक्त अवयवों में आकाशादि देशों से विभाग को उत्पन्न नहीं करती एवं जिस समय वही क्रिया अवयवों में आकाशादि देशों से विभाग को उत्पन्न करती है, उस समय एक अवयव में दूसरे अवयव से विभाग को उत्पन्न नहीं करती। अतः अवयव में रहने वाली क्रिया उसमें दूसरे अवयव से ही विभाग को उत्पन्न करती है। तत्पश्चात् अवयवी द्रव्य के उत्पादक संयोग का नाश होता है, उसके विनष्ट हो जाने पर असमवायिकारण के अभाव से अवयवी द्रव्य रूप कार्य का अभाव होता है। उस समय विभाग के आश्रय और विभाग की अवधि रूप दोनों अवयवों में विद्यमान क्रिया कार्य से संयुक्त आकाशादि देशों के साथ क्रिया से युक्त अवयवों के ही विभाग को उत्पन्न करती है, निष्क्रिय अवयवों में वह क्रिया को उत्पन्न नहीं कर सकती क्योंकि उसके बाद कारणों के न रहने से उत्तर देश के साथ संयोग की उत्पत्ति नहीं होगी, जिससे विभाग की उत्पत्ति अनुपभोग्य अर्थात् निष्प्रयोजन हो जायेगी।[899]

२. **कारणाकारणविभागज–विभाग** – जिस समय हाथ में उत्पन्न हुई क्रिया शरीर के दूसरे अवयवों से विभाग को उत्पन्न करती हुई आकाशादि देशों के साथ विभागों को उत्पन्न करती है, उस समय के वे विभाग शरीर के कारण अवयव और शरीर के अकारण के विभाग हैं। क्रिया जिस दिशा में उत्तरसंयोगरूप कार्य को करने के लिए उत्सुक रहती है, उसी दिशा के साहाय्य से वे कारण और अकारण के विभाग कार्य और अकार्य के विभागों को उत्पन्न करते हैं। इसके बाद वे ही कारण अकारण के विभाग कारणों और अकारणों के सहाय से उन कारणों से उत्पन्न कार्य द्रव्यों और उनसे अनुत्पन्न अकार्य द्रव्यों में संयोग को उत्पन्न करते हैं।[900]

परत्व–अपरत्व – परत्व और अपरत्व नामक गुण पर तथा अपर प्रतीति के कारण हैं। **परत्वमपरत्वं च परापराभिधानप्रत्ययनिमित्तम्।**[901] ये दो प्रकार के हैं –

---

[898] वही, पृ. १०७

[899] प. ध. सं., पृ. १०९

[900] वही, पृ. ११३

[901] वही, पृ. १२४

१. **दिक्कृत**

२. **कालकृत**[902]

दिक्कृत परत्व अपरत्व – प्रशस्तपाद के अनुसार इसकी उत्पत्ति का प्रकार यह है कि एक ही दिशा में अवस्थित दो कार्यद्रव्यों में संयुक्त संयोग की अधिकता और अल्पता के रहने पर देखने वाले एक पुरूष के समीप प्रदेश को अवधि मानकर 'यह इससे दूर है' इस प्रकार की दूरत्व विषयक बुद्धि परत्व के आधार द्रव्य में उत्पन्न होती है। इसके बाद उसी बुद्धि के सहयोग से दूर प्रदेशों के संयोग के द्वारा दिक्कृत परत्व विषयक बुद्धि की उत्पत्ति होती है और तब इसी परत्व विषयक बुद्धि को अवलम्बन बनाकर दूर के दिक्प्रदेशों के संयोग से दिक्कृत परत्व गुण की उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार दूर दिशा के द्रव्य को अवधि मानकर 'इससे यह सीमित है' इस प्रकार की बुद्धि अपरत्व गुण के आधार भूत द्रव्य में उत्पन्न होती है, फिर उसी बुद्धि को अवलम्बन बनाकर अपर अर्थात् समीप वाले प्रदेशों के संयोग से दिक्कृत अपरत्व की उत्पत्ति होती है।[903]

कालकृत परत्व अपरत्व – प्रशस्तपाद कालिक परत्व-अपरत्व की उत्पत्ति प्रक्रिया बताते हुए कहते हैं कि वर्तमान काल में अवस्थित किसी भी दिक्प्रदेश के साथ संयुक्त युवा पुरूष में कडी मूँछ और गठित शरीर आदि साधारण स्थिति और किसी भी दिक्प्रदेश से संयुक्त वृद्ध पुरूष के पके हुए बाल और शरीर की शिथिलता आदि की स्थिति उन दोनों स्थितियों के रहते हुए दोनों को देखने वाले पुरूष को उक्त युवा पुरूष की अपेक्षा उक्त वृद्ध पुरूष में विप्रकृष्ट बुद्धि अर्थात् कालकृत परत्व की बुद्धि उत्पन्न होती है। इसके बाद इसी के साहाय्य से अधिक काल प्रदेश के साथ संयोग से वृद्ध पुरूष में काल कृत परत्व अर्थात् ज्येष्ठत्व की उत्पत्ति होती है एवं इसी वृद्ध पुरूष की अपेक्षा युवा पुरूष में 'सन्निकृष्ट बुद्धि' उत्पन्न होती है। इसी बुद्धि के द्वारा दूसरे काल प्रदेश के साथ युवा पुरूष के संयोग के काल कृत अपरत्व अर्थात् कनिष्ठत्व की उत्पत्ति होती है।[904]

गुरुत्व – पृथिवी और जल में पतन क्रिया का हेतु गुरुत्व गुण है। **गुरुत्वं जलभूम्योः पतनकर्मकारण्।**[905] प्रशस्तपाद के मत में 'गुरुत्व' का प्रत्यक्ष सम्भव नही है। अतः पतन क्रिया रूप हेतु से इसका अनुमान ही होता है। प्रशस्तपाद ने संयोग, प्रयत्न, संस्कार को गुरुत्व का प्रतिबन्धक बताया है। वैशेषिक

---

902 वही, पृ. १२४

903 प. ध. सं., पृ. १२५

904 वही, पृ. १२६-२७

905 वही, पृ. २१७

मतानुसार यह नित्य और अनित्य दो प्रकार का होता है। अनित्य अवयवी में तो वह कारणगुणपूर्वक होने से अनित्य तथा नित्य परमाणुओं में रहने पर नित्य होता है।[906]

द्रवत्व – स्यन्दन रूप क्रिया का कारण द्रवत्व गुण होता है। **द्रवत्वं स्यन्दनकर्मकारणम्।**[907] यह पृथिवी, जल, तेज में रहता है। यह दो प्रकार का है –

१. **सांसिद्धिक**
२. **नैमित्तिक**

१. **सांसिद्धिक –** यह केवल जल में पाया जाता है, अतः यह जल का विशेष गुण है।[908] यह नित्य और अनित्य भेद से दो प्रकार का है।
२. **नैमित्तिक –** पृथिवी और जल दोनों में अग्नि संयोग रूपी निमित्त से द्रवत्व की उत्पत्ति होती है। अतः उनमें पाया जाने वाला द्रवत्व नैमित्तिक है।[909]

स्नेह – पिण्ड होने के कारण गुण का नाम स्नेह है। **स्नेहोऽपां विशेषगुणः।**[910] यह जल का विशेष गुण है, और स्वच्छता का भी कारण है। यह नित्य और अनित्य के भेद से दो प्रकार का है – स्नेह जलीय परमाणुओं में नित्य तथा कार्यद्रव्यों में कारणगुण क्रम से उत्पन्न होता है तथा अपने आश्रय के नाश से नाश को प्राप्त होता है अतः उत्पत्ति, विनाश होने से अनित्य हैं।[911]

शब्द – प्रशस्तपाद ने चौबीसवें गुण के रूप में शब्द का निरूपण किया है – शब्द आकाश का गुण है, जो श्रवणेन्द्रिय से ग्रहण किया जाता है, उसके कार्य और कारण दोनों ही उसके विरोधी हैं। संयोग-विभाग, में से किसी एक से शब्द की उत्पत्ति होती है। यह अपने आश्रय द्रव्य के किसी एक में ही रहता है तथा अपने समान और असमानजातीय कारणों वाला है। **शब्दोऽम्बरगुणः श्रोत्रग्राह्यः क्षणिकः कार्यकारणोभयविरोधी संयोगविभागशब्दजः प्रदेशवृत्तिः समानासमानजातीयकारणः।**[912] शब्द के दो भेद हैं –

---

906 वही, पृ. २१७
907 प. ध. सं., पृ. २१८
908 वही, पृ. २१८
909 वही, पृ. २२०
910 वही, पृ. २२१
911 वही, पृ. २२१
912 वही, पृ. २३६

१. **वर्णात्मक**

२. **ध्वन्यात्मक**

१. **वर्णात्मक शब्द –** वर्णात्मक शब्द अकारादि या संस्कृत भाषादि रूप है, जिसकी उत्पति आत्मा और मन के संयोग से स्मृति की सहायता तथा वर्ण के उच्चारण की इच्छा से होती है।[913]

२. **ध्वन्यात्मक –** ध्वन्यात्मक शब्द की उत्पत्ति भेरी और दण्ड के संयोग तथा भेरी और आकाश के संयोग, इन दोनों से होती है।[914]

सुख – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार अनुकूल स्वभाव को सुख कहते हैं। **अनुग्रहलक्षणं सुखम्।**[915] अर्थात् माला आदि अभीष्ट विषयों का सान्निध्य होने पर उन इष्ट विषयों का ज्ञान, उनके साथ त्वक्, घ्राणादि इन्द्रियों के सन्निकर्ष तथा धर्म के सह चरित, आत्मा व मन के संयोग से सुख की उत्पत्ति होती है।[916] भूतकालीन विषयों के स्मरण से सुख उत्पन्न होता है।

प्रशस्तपाद के अनुसार यह ध्यातव्य है कि आत्मज्ञानी विद्वान् पुरूषों की आत्मा को जो विषय तथा उसका स्मरण, उसकी इच्छा, तथा उस प्रिय विषय में मनोरथ इत्यादि के न रहने पर भी जो सुख आत्मा में प्रकट होता है, वह आत्मज्ञान रूप विद्या, जितेन्द्रियता, शरीर निर्वाह से अधिक विषयों की इच्छा न होना, रूप सन्तोष, तथा संसार से निवृत्ति कराने वाले उत्कृष्ट धर्म विशेषों से होता है। वैशेषिक-दर्शन में यह वास्तविक सुख कहलाता है।[917]

दुःख – सुख के विरोधी होने से सुख के अनन्तर दुःख नामक गुण का भाष्यकार वर्णन करते हैं कि पीड़ा स्वभाव वाला दुःख नामक गुण कहलाता है। **उपघातलक्षणं दुःखम्।**[918] दुःख को और अधिक स्पष्ट करते हुए प्रशस्तपाद बतलाते हैं कि विष इत्यादि अनभिप्रेत विषयों के समीप होने पर उनकी प्राप्ति तथा उनके साथ चक्षु आदि इन्द्रियों के संयोग आदि संन्निकर्ष होने से अधर्म, काल, आदि निमित्त कारणों की अपेक्षा करने वाले आत्मा तथा मन के संयोग रूप असमवायि कारण से आत्मा रूप समवायि

---

[913] प. ध. सं., पृ. २३७

[914] वही, पृ. २३७

[915] वही, पृ. २११

[916] वही, पृ. २११

[917] वही, पृ. २१२

[918] वही, पृ. २१३

कारण में अमर्ष अर्थात् असहनशीलता, उपघात अर्थात् दुःख का अनुभव तथा दीनता आदि कार्यों का उत्पादक दुःख नामक गुण होता है।[919]

इच्छा – स्वार्थ अर्थात् अपने लिए अथवा दूसरे के लिए न प्राप्त हुए वस्तु की अभिलाषा इच्छा गुण कहलाता है। **स्वार्थं परार्थं वाऽप्राप्तप्रार्थनेच्छा।**[920] यह आत्मा तथा मन के संयोग से सुखादि की अपेक्षा करने वाले अथवा स्मरण की अपेक्षा करने वाले हेतुओं से उत्पन्न होती है।[921] पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार ने काम, अभिलाषा, राग, संकल्प, कारूण्य, वैराग्य, उपधा, भाव आदि को इच्छा का भेद माना है।[922] वैशेषिक-दर्शन के अनुसार क्रिया के भेद से इच्छा के भेद भी होते हैं जो अधोलिखित हैं -

काम – विषय भोग की इच्छा काम है। **मैथुनेच्छा कामः।**[923]

अभिलाषा – भोजन की इच्छा अभिलाषा है। **अभ्यवहारेच्छाऽभिलाषः।**[924]

राग – पुनः पुनः विषय के सम्बन्ध की इच्छा राग है।[925]

संकल्प – अप्राप्त को प्राप्त करने की इच्छा संकल्प है।[926]

कारूण्य – स्वार्थ की इच्छा न कर दूसरे के दुःख के नाश करने की इच्छा कारूण्य है।[927]

वैराग्य – दोष के दर्शन से विषयों के त्याग की इच्छा वैराग्य है।[928]

उपधा – दूसरे को ठगने की इच्छा उपधा है।[929]

भाव – अन्तःकरण में गुप्त इच्छा भाव है।[930]

---

919 प. ध. सं., पृ. २१३
920 वही, पृ. २१३
921 वही, पृ. २१४
922 वही, पृ. २१४
923 वही, पृ. २१४
924 वही, पृ. २१४
925 वही, पृ. २१४
926 वही, पृ. २१४
927 वही, पृ. २१४
928 प. ध. सं., पृ. २१४
929 वही, पृ. २१४
930 वही, पृ. २१४

द्वेष – प्रज्वलन रूप द्वेष है अर्थात् जिसके रहते हुए प्राणी अपने को जलता हुआ सा अनुभव करे, वह द्वेष है। **प्रज्वलनात्मको द्वेषः।**[931] यह द्वेष आत्मा तथा मन के संयोग की अपेक्षा करने वाले से उत्पन्न होता है। यह प्रयत्न, स्मरण, धर्म तथा अधर्म का कारण है।[932] क्रोध, द्रोह, मन्यु, अमर्ष व अक्षमा ये द्वेष के भेद हैं।[933]

प्रयत्न – प्रशस्तपाद की मान्यता के अनुसार प्रयत्न, संरम्भ, उत्साह तीनों पर्यायवाची हैं। **प्रयत्नः संरम्भ उत्साह इति पर्यायाः। स द्विविधो जीवनपूर्वकः इच्छाद्वेषपूर्वकश्च।**[934] प्रयत्न के दो भेद हैं –

१. जीवनपूर्वक
२. इच्छाद्वेषपूर्वक[935]

१. **जीवनपूर्वक –** प्रशस्तपाद के अनुसार प्राणियों की सुषुप्तावस्था में प्राणवायु, अपानवायु आदि शरीरान्तर्वर्ती वायु समूह को उचित रूप से प्रेरित करने वाला एवं अन्तःकरण मन को दूसरी इन्द्रियों से सम्बद्ध करने वाला प्रयत्न ही जीवन पूर्वक प्रयत्न है।[936]

२. **इच्छाद्वेषपूर्वक –** यह दूसरे प्रकार का प्रयत्न हितों की प्राप्ति एवं अहितों का परिहार इन दोनों का कारण है। यह इच्छा या द्वेष से सह चरित आत्मा व मन के संयोग से उत्पन्न होता है। इस प्रयत्न में हित का साधन करने वाली वस्तुओं के ग्रहण का इच्छा जनित प्रयत्न कारण है तथा दुःख के कारणों को हटाने में द्वेष से उत्पन्न प्रयत्न कारण है।[937]

धर्म – प्रशस्तपाद के अनुसार 'धर्म' पुरुष का गुण है। वह अपने कर्त्ता जीव के प्रिय, हित और मोक्ष का कारण है एवं अतीन्द्रिय है। **धर्मः पुरुषगुणः। कर्तुः प्रियहितमोक्षहेतुः।**[938] अन्तिम सुख एवं तत्त्व ज्ञान दोनों से उसका नाश होता है। पुरूष और अन्तःकरण के संयोग और संकल्प इन दोनों से उसकी उत्पत्ति होती है। वर्णों और आश्रम वासियों के लिए विहित कर्म उसके साधन हैं। वेद

931 यस्मिन् सति प्रज्वलितमिवात्मानं मन्यते स द्वेषः।- वही, पृ. २१४

932 वही, पृ. २१५

933 वही, पृ. २१५

934 वही, पृ. २१६

935 वही, पृ. २१६

936 वही, पृ. २१६

937 प. ध. सं., पृ. २१०

938 वही, पृ. २२५

और धर्मशास्त्रादि ग्रन्थों में वर्णों और आश्रम वासियों के साधारण धर्मों और विशेष धर्मों के साधन के लिए कहे गए द्रव्य, गुण और कर्म भी इसके कारण हैं।[939]

प्रशस्तपाद धर्म की उत्पत्ति पुरूष एवं अन्तःकरण के संयोग रूप असमवायिकारण से होती है तथा कपट आदि दोषों से रहित संकल्प उसका निमित्त कारण है।[940] अन्त में चारों आश्रमों के कर्त्तव्यों का वर्णन किया गया है।

अधर्म – अधर्म भी आत्मा का गुण है। तथा अधर्माचरण करने वाले कर्त्ता के दुःख तथा सुख के साधनों का कारण है। **अधर्मोऽप्यात्मगुणः।**[941] वह अतीन्द्रिय है, एवं अन्तिम दुःख तथा तत्त्वज्ञान इन दोनों से उसका नाश होता है। निषिद्ध एवं धर्म साधन के विरोधी हिंसा, असत्य, अस्तेय आदि इसके साधन हैं। शास्त्रों में अनुष्ठान के लिए विहित कर्मों का न करना एवं प्रमाद ये दोनों भी अधर्म के हेतु हैं। इन सब हेतुओं तथा कर्त्ता के दुष्ट अभिप्राय की सहायता से आत्मा और मन के संयोग द्वारा अधर्म की उत्पत्ति होती है।[942]

संस्कार – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार ने संस्कार को त्रिविध रूपों में स्वीकार किया है–

१. **वेग**
२. **भावना**
३. **स्थितिस्थापक**[943]

१. **वेग –** वेग नामक संस्कार पाँच मूर्त द्रव्यों पृथिवी, जल, तेज, वायु और मन में पाया जाता है। इन पाँचों द्रव्यों में भी वह वेग विशेष कारण की अपेक्षा करने वाली क्रिया से उत्पन्न होता है, तथा किसी नियमित दिशा में ही क्रिया का कारण है। स्पर्श से युक्त द्रव्यों का विशेष प्रकार का संयोग उसका विनाशक है। कहीं–कहीं वह अपने आश्रयद्रव्य के समवायि कारण में रहने वाले वेग से भी उत्पन्न होता है। **तत्र वेगो मूर्तिमत्सु पञ्चसु द्रव्येषु निमित्तविशेषापेक्षात् कर्मणो जायते नियतदिक् क्रियाप्रबन्धहेतुः स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविशेषविरोधी क्वचित्कारणगुणपूर्वक्रमेणोत्पद्यते।**[944]

---

939 वही, पृ. २२५

940 वही, पृ. २२५

941 वही, पृ. २२५

942 वही, पृ. २३३

943 प. ध. सं., पृ. २२१

944 वही, पृ. २२१

२. **भावना –** प्रशस्तपाद भावना के विषय में कहते हैं कि पहले देखे हुए, सुने हुए अथवा अनुमान के द्वारा ज्ञात अर्थों की स्मृति और प्रत्यभिज्ञा का कारणीभूत संस्कार ही भावना है।[945]

३. **स्थितिस्थापक –** दृढ अवयवों के सन्निवेश से विशिष्ट तथा बहुत समय तक स्थिर रहने वाले, स्पर्शवान् द्रव्य पदार्थों में जो संस्कार अन्यथा किए हुए अर्थात् पूर्वावस्था से भिन्न अवस्था में प्राप्त किए हुए अपने आश्रय द्रव्य पदार्थ को यथावस्थित अर्थात् पूर्वावस्था में ला देता है। यह स्थितिस्थापक गुण कहलाता है। कहने का अभिप्राय यह है कि यह स्पर्शवान् द्रव्यों को जो मुड़े हुए प्रतीत होते हैं उन्हें पुनः सीधा कर देता है। यह धनुष, शाखा, श्रृङ्ग, अस्थि, सूत्र आदि वस्तुओं में लक्षित होता है।[946]

बुद्धि – पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार बुद्धि, उपलब्धि, ज्ञान, प्रत्यय पर्यायवाची है।[947] न्यायसूत्र में भी बुद्धि के पर्यायवाची उपलब्धि, ज्ञान, प्रत्यय ही माने गए हैं। **बुद्धिरुपलब्धिर्ज्ञानं प्रत्यय इति पर्यायाः।**[948] पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार बुद्धि अनेक प्रकार की है, क्योंकि इसके अनन्त विषय हैं और यह प्रत्येक विषय में स्वतन्त्र रूप से सम्बद्ध रहती हैं।[949] अनेक विषय होने से बुद्धि के भी अनेक प्रकार है किन्तु पदार्थधर्मसङ्ग्रह में बुद्धि के मुख्य रूप से दो भेद स्वीकार किए गए हैं –

१. **विद्या**

२. **अविद्या**

अविद्या – प्रशस्तपाद ने प्रथमतः अविद्या के चार प्रकार बताए हैं –

१. **संशय**

२. **विपर्यय**

३. **अनध्यवसाय**

४. **स्वप्न**[950]

१. **संशय –** जिन दो वस्तुओं के साधारण धर्म पहले से ज्ञात होते हैं, उन दोनों के केवल साधारण धर्मरूप सादृश्य के ज्ञान एवं पश्चात् दोनों के असाधारण धर्मों के स्मरण तथा अधर्म, इन तीनों

---

945 वही, पृ. २२२

946 वही, पृ. २२४

947 प. ध. सं., पृ. १३६

948 न्यायसूत्र, १/१/१५

949 प. ध. सं., पृ. १३६

950 वही, पृ. १३७

हेतुओं से यह अमुक वस्तु है या इसके भिन्न? इस प्रकार दो विरूद्ध विषयों का ज्ञान संशय है।[951] प्रशस्तपाद के अनुसार संशय दो प्रकार का है - १. अन्तः संशय, २. बहि संशय।

२. **विपर्यय –** जिन दो विभिन्न वस्तुओं के असाधारण धर्म ज्ञात हैं, उन दोनों में से एक वस्तु में दूसरी वस्तु का ज्ञान ही विपर्यय है।[952] विपर्यय तीन प्रकार का है –

१. प्रत्यक्ष विषयक विपर्यय
२. अनुमानविषयक विपर्यय
३. अन्य विषयक विपर्यय

३ **अनध्यवसाय –** पहले से ज्ञात अथवा अज्ञात किसी अन्य विषय में मग्न पुरूष का 'यह क्या हैं' इस प्रकार का आलोचन ज्ञान ही प्रत्यक्ष के द्वारा ज्ञात होने वाले विषय का अनध्यवसाय है।[953]

४ **स्वप्न –** पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार स्वप्न नामक अविद्या का निरूपण करते हुए कहते हैं कि चक्षु आदि बाह्य इन्द्रियों का व्यापार नहीं होने पर भी निश्चल मन को मै चक्षु से देख रहा हूँ, कर्ण से सुन रहा हूँ, आदि ज्ञान का अनुभव होता है उसे स्वप्न नामक अविद्या कहते हैं।[954]

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार विद्या के भी चार भेद हैं –

१. प्रत्यक्ष
२. अनुमिति
३. स्मृति
४. आर्ष[955]

१. **प्रत्यक्ष –** पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार जो ज्ञान किसी न किसी ज्ञानेन्द्रिय को प्राप्त कर उत्पन्न होता है, वह प्रत्यक्ष कहा जाता है।[956] प्रशस्तपाद ने प्रत्यक्ष के दो भेद स्वीकार किए है –

---

951 वही, पृ. १४०

952 वही, पृ. १४३

953 प. ध. सं., पृ. १४४

954 वही, पृ. १५०

955 वही, पृ. १५३

956 वही, पृ. १५३

१. निर्विकल्पक

२. सविकल्पक

२ **अनुमिति –** लिङ्ग अथवा साधक हेतु के दर्शन या ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान अनुमान कहलाता है। लिङ्ग को दो श्लोकों में परिभाषित किया गया है –

यदनुमेयेनसम्बद्धं प्रसिद्धं च तदन्विते।

तदभावे च नास्त्येव तल्लिङ्गमनुमापकम् ॥

विपरीतमतो यत् स्यादेकेन द्वितीयेन वा।

विरूद्धसिद्धसन्दिग्धमलिङ्गं काश्यपोऽब्रवीत् ॥[957]

अनुमान के दो भेद स्वीकार किए गए हैं –

१. दृष्ट

२. सामान्यतोदृष्ट[958]

३.स्मृति – स्मृति यथार्थ ज्ञान का एक भेद है तथा लिङ्ग के दर्शन एवं इच्छा, स्मृति आदि उद्बोधकों से सहचरित, आत्मा और मन के विशेष प्रकार के संयोग और संस्कार इन दोनों से उत्पन्न होती है। यह स्मृति प्रत्यक्ष, अनुमिति एवं शाब्दबोध के द्वारा ज्ञात विषयों की होती है, अतः अतीतविषयक होती है।[959]

४. आर्षज्ञान – आगम का निर्माण करने वाले महर्षियों को उनके विशेष प्रकार के पुण्य से आगम ग्रन्थों में कहे हुए या न कहे हुए भूत, भविष्य, वर्तमान अर्थात् तीनों कालों में से किसी में भी रहने वाले अतीन्द्रिय धर्मादिविषयक और उनके स्वरूप का परिचायक जो प्रातिभ ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे आर्ष कहते हैं।[960]

आर्ष ज्ञान प्रायः देवताओं और महर्षियों को ही होता है। कभी-कभी यह लौकिक व्यक्तियों को भी होता है यथा कोई कन्या कहती है कि 'मेरा मन कहता है कि कल मेरे भैया आएँगें।[961]

---

957 प. ध. सं., पृ. १६२

958 वही, पृ. १६९

959 वही, पृ. २०७

960 वही, पृ. २०८-०९

961 वही, पृ. २०९

सर्वदर्शनसङ्ग्रह – माधवाचार्य नौ द्रव्य तथा उसके लक्षण देने के बाद द्वितीय पदार्थ गुण के विषय में कहते हैं कि ये चौबीस हैं[962] –

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छा द्वेषप्रयत्नाश्च कण्ठोक्ताः सप्तदश, चशब्दसमुच्चिताः गुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारादृष्ट शब्दाः सप्तैवेत्येवं चतुर्विंशतिर्गुणाः।[963]

सर्वदर्शनसङ्ग्रहकार द्वारा द्रव्यों के लक्षण में जाति द्वारा लक्षण दिया गया है उसी प्रकार गुणों के लक्षण में भी जाति का प्रयोग किया गया है। उदाहरण - रूपत्व जाति वह है जो नील से समवेत हो और गुणत्व के द्वारा व्याप्त होती है, वह रूप गुण है।[964]

सर्वदर्शनकौमुदी – दामोदर शास्त्री के अनुसार **"जातिमत्त्वेसति कर्मान्यत्वे च सति कर्मवदवृत्तिपदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वं गुणत्वम् इति गुण लक्षणम्।"**[965] अर्थात् जातिमान् होने पर, कर्म में न होने पर, कर्म के समान वृत्ति वाला होने पर, पदार्थ का विभाजक होने पर तथा उपाधि से युक्त होने पर 'गुणत्व' जाति वाला गुण है।[966] सर्वदर्शनकौमुदीकार के गुण के लक्षण में कई पारिभाषिक शब्द प्रयुक्त किए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं –

१. **जातिमत्त्वे सति –** जाति से युक्त होने पर अर्थात् जिस पदार्थ में जाति अर्थात् गुणत्व जाति रहती है, वह गुण है। वैशेषिक-दर्शन के अनुसार गुण में सत्ता नामक जाती रहती है।[967]
२. **कर्मान्यत्वे च सति –** कर्म में न रहने पर अर्थात् गुण कर्म में नहीं रहता है क्योंकि कर्म और द्रव्य में रहने से इस लक्षण में अतिव्याप्ति हो जायेगी अतः व्याप्ति रोकने के लिए **'कर्मान्यत्वे च सति'** कहा गया है।[968] **कर्मान्यत्वे च सति** अर्थात् कर्म में न रहने पर का एक अर्थ यह है कि

---

[962] स. द. सं., औलूक्यदर्शन, पृ. ३५७

[963] स. द. सं., पृ. ३५७, रूपरसगन्धस्पर्श संख्या परिमाणानि पृथक्त्वं संयोगविभागौ, परत्वापरत्वे बुद्धयः सुखदुःखे इच्छाद्वेषौ प्रयत्नाश्च गुणाः।- वैशेषिकसूत्र १/१/५

[964] स. द. सं., औलूक्यदर्शन, पृ. ३५७

[965] स. द. कौ., पृ. ६५

[966] वही, पृ. ६५

[967] वही, पृ. ६५

[968] वही, पृ. ६५

यह रूपादि चौबीस गुणों में ही रूपत्वादि सामान्य जाति रहती है कर्म में अर्थात् आकुंचन, प्रसारण, गमन आदि में नहीं रहती है।[969]

३. **पदार्थविभाजकोपाधिमत्त्वम् –** गुण पदार्थों के विभाजक इस उपाधि से युक्त है क्योंकि सामान्य और विशेष गुणों के आधार पर ही सात पदार्थ न्याय-वैशेषिक स्वीकार करता है। यह द्रव्य है क्योंकि इसमें द्रव्य के सामान्य और विशेष गुण रहते हैं। यह कर्म है इसमें कर्म के सामान्य और विशेष गुण रहते हैं।[970]

सर्वदर्शनकौमुदी में गुण का एक अन्य लक्षण भी दिया गया है कि **"यो हि पदार्थो द्रव्यकर्मभिन्नः सन् द्रव्यमात्र एव तिष्ठति स एव गुणपदार्थ इति"** अर्थात् जो द्रव्य और कर्म से भिन्न होते हुए भी केवल द्रव्य में ही रहता है वह गुण है।[971] वैशेषिक-दर्शन के अनुसार धर्मी में धर्म रहता है अर्थात् द्रव्य धर्मी है तथा गुण धर्म है इसलिए धर्मी रूप द्रव्य में गुण रूप पदार्थ रहता है।

गुणों की संख्या और उनके नाम - दामोदर शास्त्री ने सर्वदर्शनकौमुदी में चौबीस गुण स्वीकार किए हैं[972] –

रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नगुरुत्वद्रवत्वस्नेहसंस्कारादृष्टशब्दभेदात्।[973]

यहाँ पर धर्म, अधर्म इन दोनों गुणों के स्थान पर अदृष्ट शब्द का प्रयोग किया गया है क्योंकि धर्म और अधर्म का फल दिखलायी नहीं पड़ता है, वैशेषिक-दर्शन में अदृष्ट फल प्रदाता ईश्वर को स्वीकार किया गया है।[974]

१. **रूप -** चक्षुरिन्द्रिय से जिसका ग्रहण किया जाता है वह रूप है। **चक्षुरिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणो रूपम्।**[975]

---

969 स. द. कौ., पृ. ६५

970 वही, पृ. ६५

971 वही, पृ. ६५

972 गुणाश्चतुर्विंशतिः।- वही, पृ. ६६

973 वही, पृ. ६६

974 वही, पृ. ६६

975 स. द. कौ., पृ. ६६

२. **रस-** रसनेन्द्रिय से जिसका ग्रहण किया जाता है वह रस है। **रसनेन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणो रसः।**[976]

३. **गन्ध –** घ्राणेन्द्रिय से जिसका ग्रहण किया जाता है वह गन्ध है। **घ्राणेन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणो गन्धः।**[977]

४. **स्पर्श-** त्वगिन्द्रिय से केवल जिसका ग्रहण किया जाता है वह स्पर्श है।**त्वगिन्द्रियमात्रग्राह्यो गुणः स्पर्शः।**[978]

५. **संख्या –** 'एक' 'दो' इत्यादि का असाधारण कारण संख्या है।[979]

६. **परिमाण –** 'ह्रस्व' 'दीर्घ' इत्यादि का असाधारण कारण परिमाण नामक गुण है। **ह्रस्वो दीर्घश्च इत्यादिव्यवहारासाधारणकारणगुणः परिमाणम्।**[980]

७. **पृथकत्व –** 'यह इससे पृथक् है' इत्यादि कारणों का असाधारण कारण पृथकत्व गुण है। **अयमस्मात्पृथक् इत्याकारकव्यवहारासाधारण गुणः पृथकत्वम्।**[981]

८. **संयोग –** एक वस्तु में एक या अधिक वस्तुओं का मिलना संयोग गुण है। **एकस्मिन् वस्तुन्येकस्य ततोऽधिकस्य व वस्तुनो मिलनं संयोगः।**[982]

९. **विभाग –** संयोग नाशक गुण विभाग है। **संयोगनाशकोगुणोविभागः।**[983]

१०. **परत्व –** पर व्यवहार का असाधारण कारण परत्व नामक गुण है। **परव्यवहारासाधारणनिमित्तकारणगुणः परत्वम्।**[984]

११. **अपरत्व –** अपर व्यवहार का असाधारण कारण अपरत्व नामक गुण है। **अपरव्यवहारासाधारणनिमित्तकारणगुणः अपरत्वम्**[985] परत्व अपरत्व दिक्काल कृत भेद से दो प्रकार का होता है। दूरस्थ पदार्थों में दिक्कृत परत्व होता है निकटस्थ पदार्थों में दिक्कृत अपरत्व होता है। ज्येष्ठ में काल कृत परत्व होता है। कनिष्ठ में काल कृत अपरत्व होता है। इस

---

976 वही, पृ. ६६

977 वही, पृ. ६६

978 वही, पृ. ६७

979 वही, पृ. ६७

980 वही, पृ. ६७

981 वही, पृ. ६७

982 वही, पृ. ६७

983 वही, पृ. ६७

984 वही, पृ. ६७

985 स. द. कौ.,पृ. ६७

कारण से दो पदार्थों में जिस पदार्थ में अधिक पदार्थों का अथवा कालों का संयोग रहेगा वह पदार्थ उस पदार्थ की अपेक्षा से परत्व है। जिस पदार्थ में जिस पदार्थ की अपेक्षा से अल्प पदार्थों का अथवा कालों का संयोग रहेगा वह पदार्थ उस पदार्थ की अपेक्षा से अपरत्व होगा।[986]

बुद्धि – आहार–व्यवहार आदि सभी व्यवहारों का असाधारण कारण बुद्धि नामक गुण है। **आहार व्यवहारादिसर्वविधव्यवहारासाधारणकारणगुणो बुद्धिः।**[987] बुद्धि को ही ज्ञान कहते हैं।

१२. **सुख –** आत्मा के अनुकूल गुण सुख है। **आत्मनोऽनुकूलगुणः सुखम्।**[988]

१३. **दुःख –** आत्मा के प्रतिकूल गुण दुःख है। **आत्मनः प्रतिकूलगुणो दुःखम्।**[989]

१४. **इच्छा –** प्रवृत्ति के प्रति साक्षाद् अनुकूल गुण इच्छा है। **प्रवृत्ति प्रति साक्षादनुकूलगुण इच्छा।**[990]

१५. **द्वेष –** निवृत्ति के प्रति साक्षाद् अनुकूल गुण द्वेष है। **निवृत्तिंप्रति साक्षादनुकूलगुणो द्वेषः।**[991]

१६. **प्रयत्न –** कार्य करने के अनुकूल यत्न को प्रयत्न कहते हैं। **कृतिः कार्यानुकूलयत्नभेदः प्रयत्नः।**[992]

१७. **गुरुत्व –** प्रथम प्रयत्न का असमवायि कारण गुरुत्व है। **आद्यपतनसमवायिकारणगुणो गुरुत्वम्।**[993]

१८. **द्रवत्व –** प्रथम स्यन्दन अर्थात् बहने का असमवायि कारण द्रवत्व है। **आद्यस्यन्दनासमवायिकारणगुणो द्रवत्वम्।**[994] पदार्थों में पाये जाने वाली तरलता ही द्रवत्व है।

१९. **स्नेह –** सत्तु, मिट्टी आदि पदार्थों के पिण्डीभाव का असाधारण कारण स्नेह नामक गुण है। **सत्तुमृदादिपदार्थानांपिण्डीभावासाधारणकारणगुणः स्नेहः।**[995]

---

[986] वही, पृ. ६७

[987] वही, पृ. ६७

[988] वही, पृ. ६८

[989] वही, पृ. ६७

[990] वही, पृ. ६८

[991] स. द. कौ., पृ. ६८

[992] वही, पृ. ६८

[993] वही, पृ. ६८

[994] वही, पृ. ६८

[995] वही, पृ. ६८

२०. **संस्कार –** सामान्य और आत्मा के विशेष गुण वृत्ति वाला, गुणत्व की व्याप्त जाति वाला संस्कार है।[996] यहाँ सामान्य शब्द से अभिप्राय वेग और स्थिति स्थापक से है। 'आत्मविशेष' शब्द से बुध्यादि नौ गुणों का ग्रहण किया गया है। आत्मा का विशेष गुण भावना है। संस्कार के तीन भेद हैं[997]–

१. वेग

२. भावना

३. स्थितिस्थापक

१. **वेग –** क्रिया से उत्पन्न संस्कार वेग है। **क्रियाजन्यसंस्कारो वेगाख्यसंस्कारः**।[998]

२. **भावना –** अनुभव से उत्पन्न संस्कार भावना है।[999]

३. **स्थितिस्थापक –** किसी वस्तु का खींचे जाने के बाद पुनः उसी स्थिति में वापस आ जाना स्थितिस्थापक है।[1000]

२१. **अदृष्ट** शब्द से धर्म और अधर्म गुण का ग्रहण होता है। वेद तथा धर्मशास्त्रोक्त पुण्य-पाप आदि कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न संस्कार विशेष को अदृष्ट कहते हैं। **वेदादिधर्मशास्त्रोक्तपापपुण्यकर्मानुष्ठानजन्यसंस्कारविशेषोऽदृष्टम्।**[1001] यह अदृष्ट आत्मा में फल प्रदान करने तक रहता है।

२२. **धर्म –** वेदादि धर्मशास्त्रों में विहित कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न गुण धर्म है।[1002]

२३. **अधर्म -** वेदादि धर्मशास्त्रों में निषिद्ध कर्मों के अनुष्ठान से उत्पन्न गुण अधर्म है।[1003]

२४. **शब्द –** श्रवणेन्द्रिय से उत्पन्न ज्ञान का विषय शब्द गुण कहलाता है।[1004]

---

996 वही, पृ. ६८

997 वही, पृ. ६८

998 वही, पृ. ६८

999 स. द. कौ., पृ. ६८

1000 वही, पृ. ६८

1001 वही, पृ. ६८

1002 वही, पृ. ६८

1003 वही, पृ. ६८

1004 वही, पृ. ६८

सर्वमतससङ्ग्रह - सर्वमतससङ्ग्रहकार ने गुण का लक्षण किया है – **'सामान्यवानसमवायिकारणमस्पन्दात्मा गुणः'।**[1005] अर्थात् गुण सामान्य (जाति) से युक्त है, असमवायिकारण है और कर्म रूप नही है।

गुण के लक्षण में 'सामान्यवान्" पद के ग्रहण से सामान्य, विशेष और समवाय पदार्थ में लक्षण की अतिव्याप्ति नही होती, क्योंकि उनमें जाति अर्थात् सामान्य नही रहता है।

'असमवायिकारण' पद के उपादान से द्रव्य में लक्षण अतिव्याप्त नहीं होता, क्योंकि गुण समवायिकारण होता है। 'अस्पन्दात्मा' पद लक्षण की 'कर्म' से व्यावृत्ति करता है। स्पन्द का अर्थ क्रिया है। स्पन्दात्मा अर्थात् कर्मस्वरूप। जो कर्मस्वरूप नही है, वह अस्पन्दात्मा अर्थात् कर्म भिन्न है।

गुण के भेद – गुण चौबीस हैं[1006] **रूपरसगन्धस्पर्शसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्व गुरुत्वद्रवत्व स्नेहबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्न धर्माधर्मसंस्कारशब्दभेदाच्चतुर्विंशतिधा भिद्यते।**[1007]

गुण द्रव्य पर आश्रित रहते हैं। किस द्रव्य में कौन कौन से गुण होते हैं, यह द्रव्य प्रकरण में वर्णित किया जा चुका है। सर्वमतसङ्ग्रहकार ने गुणों का नामोल्लेख मात्र किया है, उनके स्वरूपादि को स्पष्ट नही किया है।

यहाँ यह ध्यातव्य है कि आचार्य कणाद ने सत्रह गुणों का ही निर्देश किया है। सर्वमतसङ्ग्रहकार को चौबीस गुण मान्य हैं। ग्रन्थकार ने गुण के लक्षण में केशवमिश्र का अक्षरशः अनुसरण किया है। **सामान्यवत् असमवायिकारणं अस्पन्दात्मा गुणः।** [1008]

इसमें वैशेषिक-दर्शन के पदार्थ द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व, सामान्य, विशेष, समवाय आदि के लक्षण पर विचार किया गया है।

द्वादशदर्शनसोपानावलि – द्वादशदर्शनसोपानावलिकार कहते हैं कि गुणत्व जाति से युक्त गुण हैं।[1009] अर्थात् **गुणत्वजातिमान् गुणः।**[1010]

1005 स. म. सं.,पृ.२३

1006 वैशेषिक सूत्र १/१/६

1007 स. म. सं., पृ. २३

1008 त. भा., पृ. २१९

1009 द्वा. द. सो., पृ. ११८

1010 वही, पृ. ११९

गुणों की संख्या – श्रीपाद शास्त्री हसूरकर ने भी पच्चीस गुण स्वीकार किए हैं -

रूपरसगन्धस्पर्शशब्दसंख्यापरिमाणपृथक्त्वसंयोगविभागपरत्वापरत्वगुरुत्वद्रवत्वस्नेहबुद्धिसुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नधर्माधर्मसंस्काराररूपाः।[1011]

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप – इसमें वैशेषिक के नाम का आधार प्रमुख ग्रन्थ तथा उनकी टीकाएँ, वैशेषिक सूत्रों के समय का वर्णन प्राप्त होता है। गुण की चर्चा यहाँ प्राप्त नहीं होती है।[1012]

लघुवृत्ति – मणिभद्र सूरि ने षड्दर्शनसमुच्चय के सिद्धान्त का ही अनुसरण किया है और कहा है कि गुण चौबीस है।[1013] वैशेषिक-दर्शन में संस्कार के तीन भेद होते हैं –

१. वेग
२. भावना
३. स्थितिस्थापक

इन तीनों में संस्कारत्व जाती है अतः ये सभी संस्कार नामक गुण के भेद हैं।[1014]

शौर्य, औदार्य, आदि गुण पृथक् नहीं है इनका चौबीस गुणों में ही अन्तर्भाव हो जाता है[1015] –

शौर्य – प्रयत्न

औदार्य – बुद्धि

कारूण्य – इच्छा

दाक्षिण्य – बुद्धि[1016]

तर्करहस्यदीपिका - स्पर्श आदि गुणों में गुणत्व जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है, अतः ये सभी गुण हैं। गुण द्रव्याश्रित, निष्क्रिय तथा निर्गुण है। तर्करहस्यदीपिका में गुण के २५ भेद हैं[1017] -

---

1011 द्वा. द. सो., पृ. ११८

1012 प्र. भि. प्र., पृ. ४१-४२

1013 लघुवृत्ति, पृ. ५४

1014 वही, पृ. ५४

1015 वही, पृ. ५४

1016 न्यायकन्दली, पृ. २७-२८

1017 त. र. दी., पृ. ४१२

स्पर्शरसरूपगन्धाः शब्दः संख्या विभागसंयोगौ।

परिमाणं च पृथक्त्वं तथा परत्वापरत्वे च।।

बुद्धिः सुखदुःखेच्छाधर्माधर्मप्रयत्नसंस्काराः।

द्वेषः स्नेहगुरुत्वे द्रवत्ववेगौ गुणा एते ॥[1018]

तर्करहस्यदीपिकाकार ने पच्चीस गुणों[1019] का त्रिविध विभाजन स्वीकार किया हैं -

१. **मूर्तद्रव्य -** स्पर्श, रस, गन्ध, रूप, परत्व, अपरत्व, गुरूत्व, द्रवत्व, स्नेह और वेग।

२. **अमूर्तद्रव्य -** बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, भावना, द्वेष, और शब्द।

३. **मूर्तामूर्तद्रव्य -** सङ्ख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग।[1020]

मूर्तद्रव्य

१. **स्पर्श –** स्पर्शेन्द्रिय से जिस गुण का ग्रहण होता है वह स्पर्श है। यह पृथिवी, जल, तेज, वायु में रहता है।[1021]

२. **रस -** रसनेन्द्रिय से ग्राह्य गुण को रस कहते हैं। यह दो द्रव्यों अर्थात् पृथिवी तथा जल में रहता है।[1022]

३. **रूप -** चक्षुरेन्द्रिय से ग्राह्य गुण रूप है। यह पृथिवी, जल तेज में रहता है। यह रूप जलीय परमाणुओं में और तैजसीय परमाणुओं में नित्य है। पार्थिव परमाणुओं का रूप अग्नि के संयोग से नष्ट हो जाता है।[1023] सभी कार्यों में कारण के रूप से रूप नामक गुण उत्पन्न होता है। जब द्वयणुकादि कार्य उत्पन्न हो जाते हैं, उसके बाद उसमें रूप उत्पन्न होता है अर्थात् पहले द्वयणुकादि कार्य उत्पन्न होते हैं और बाद में उसमें रूप उत्पन्न होता है क्योंकि रूपादि गुण हैं गुण विना द्रव्य के आश्रय के उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। कार्य रूप के विनाश में आश्रय का विनाश

1018 त. र. दी., पृ. ४१२

1019 गुणस्य पञ्चविंशतिविधत्वमेव। वही, पृ. ४१२

1020 वही, ४१८

1021 स्पर्शस्त्वगिन्द्रियग्राह्यः पृथिव्युदकज्वलनपवनवृत्तिः। वही, पृ. ४१२

1022 वही, पृ. ४१२

1023 चक्षुर्ग्राह्यं रूपं पृथिव्युदकज्वलनवृत्ति, तच्च रूपं जलपरमाणुषु तेजःपरमाणुषु च नित्यं, पार्थिवपरमाणुरूपस्य त्वग्निसंयोगो विनाशकः, वही, पृ. ४१२

कारण है। इसलिए पहले कार्य द्रव्य का नाश होता है, उसके बाद रूप का विनाश होता है। यह प्रक्रिया अत्यन्त शीघ्र घटित होने से क्रम का ग्रहण नहीं हो पाता है।[1024]

४. **गन्ध –** जिस गुण का ग्रहण घ्राणेन्द्रिय से होता है उसे गन्ध कहते हैं। यह केवल पृथिवी में रहता है।[1025]

५. **स्पर्श -** जिस गुण का ग्रहण त्वगिन्द्रिय से होता है वह गुण स्पर्श है ।[1026]

६. **परत्व अपरत्व -** यह "पर अर्थात् दूर या ज्येष्ठ है" तथा यह "अपर अर्थात् नजदीक या लघु है" इस प्रकार के परापर अभिधान शब्द प्रयोग में तथा परापर ज्ञान में असाधारण कारण क्रमशः परत्व और अपरत्व हैं।[1027] परत्व और अपरत्व इन दोनों गुणों के दिक्कृत और कालकृत भेद होते हैं -

दिक्कृत परत्व अपरत्व - दिक्कृत परत्व और अपरत्व के अनुसार जब कोई द्रष्टा व्यक्ति एक ही दिशा में दो पुरूषों को क्रम से खड़े हुए देखता है, तो समीपवर्ती पुरूष की अपेक्षा से दूरवर्ती पुरूष को पर अर्थात् अधिक दिशा के प्रदेशों का संयोग होने पर दूर समझता है अर्थात् उस दूरवर्ती पुरूष में परत्व उत्पन्न होता है तथा दूरवर्ती पुरूष की अपेक्षा से समीपवर्ती पुरूष को अपर अर्थात् कम दिशा के प्रदेशों का संयोग होने से अपर नजदीक समझता है। अर्थात् समीपवर्ती पुरूष में अपरत्व उत्पन्न होता है। इसलिए क्रमशः दूरवर्ती और निकटवर्ती पदार्थ में पर और अपर दिशा के प्रदेशों का संयोग होने से परत्व और अपरत्व गुणों की उत्पत्ति होती है और इस कारण से "यह हमसे दूर है" और "यह हमसे नजदीक है" ऐसा दूर-समीप का व्यवहार होता है।[1028]

कालकृत परत्व अपरत्व - कालकृत परत्व और अपरत्व दिशा या देश में वर्तमान रहते हुए युवा और स्थविर में देखते हैं कि स्थविर युवा की अपेक्षा से चिरकालीन है तथा स्थविर में पर अधिक काल का संयोग होने से परत्व ज्येष्ठत्व उत्पन्न होता है तथा स्थविर की अपेक्षा से अल्पकालीन लघु युवा में अपर कम काल का संयोग होने से अपरत्व कनिष्ठत्व उत्पन्न होता है।[1029]

1024 त. र. दी., पृ. ४१२

1025 गन्धो घ्राणग्राह्यः पृथिवीवृत्तिः। वही, पृ. ४१२

1026 वही, ,पृ. ४१३

1027 इदं परमिदमपरमिति यतोऽभिधानप्रत्ययौ भवतः, तद्यथाक्रमं परत्वमपरत्वं च। वही, पृ. ४१५

1028 त. र. दी., पृ. ४१२

1029 वही, पृ. ४१७

७. **स्नेह –** जल का विशेष गुण स्नेह है। यह आटा आदि चूर्ण पदार्थों को पिण्डीभूत करने में तथा पदार्थों को स्वच्छ करने में कारण बनता है।[1030] यह गुरूत्व के समान नित्य और अनित्य है। परमाणुओं का स्नेह नित्य है तथा कार्यद्रव्यों का स्नेह अनित्य है।

८. **गुरूत्व –** गुरूत्व का अर्थ भारीपन होता है। यह पानी और पृथ्वी की पतन क्रिया का कारण है।[1031] यह अतीन्द्रिय है। जिस तरह से जल आदि परमाणुओं में रूपादि नित्य और कार्यद्रव्य अनित्य हैं। उसी तरह से गुरूत्व भी परमाणुओं में नित्य और कार्यद्रव्य में अनित्य है।[1032]

९. **वेग –** तर्करहस्यदीपिका में संस्कार गुण का वर्णन करते हुए भावना और स्थितिस्थापक का उल्लेख किया है। वेग को संस्कार नहीं माना है। अतः पृथक् से वर्णन करने से तर्करहस्यदीपिका में पच्चीस गुण स्वीकार किए गए हैं।[1033] कहा गया हैंकि –

वेगः पृथिव्यप्तेजोवायुमनःसु मूर्तिमद्द्रव्येषु प्रयत्नाभिघातविशेषापेक्षात्कर्मणः समुत्पद्यते, नियत् दिक्क्रियाकार्यप्रबन्धहेतुः स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविरोधी च। तत्र शरीरादिप्रयत्नाविर्भूतकर्मोत्पन्नवेगवशादिषोरपान्तरालेऽपातः, स च नियतदिक्क्रियाकार्यसम्बन्धोन्नीयमानसद्भावः।[1034]

पृथ्वी, जल, वायु, मन, इन मूर्त द्रव्यों में प्रयत्न और अभिघात विशेष से क्रिया होती है तथा क्रिया से वेग उत्पन्न होता है। यह वेग नियत दिशा में क्रिया करने में कारण बनता है। वेग के कारण फेंका हुआ पत्थर नियत दिशा में ही जाता है।[1035] यह स्पर्श गुण वाले पृथ्वी आदि मूर्त पदार्थों के संयोग का विरोधी है, क्योंकि स्पर्श गुण वाले पृथ्वी आदि मूर्त पदार्थों से टकराने से वेग रुक के नष्ट हो जाता है।

१०. **द्रवत्व –** स्यन्दन का अर्थ बहना होता है। स्यन्दन क्रिया का असाधारण कारण द्रवत्व है। यह द्रवत्व पृथ्वी, जल और तेज में रहता है।[1036] द्रवत्व के दो प्रकार हैं –

1030 स्नेहोऽपां विशेषगुणः संग्रहमृदादिहेतुः। वही, पृ. ४१७

1031 वही, पृ. ४१७

1032 वही, पृ. ४१७

1033 वही, पृ. ४१७

1034 त. र. दी., पृ. ४१७

1035 वेगः पृथिव्यप्तेजोवायुमनःसु मूर्तिमद्द्रव्येषु प्रयत्नाभिघातविशेषापेक्षात्कर्मणः समुत्पद्यते, नियतदिक्क्रियाकार्यप्रबन्धहेतुः स्पर्शवद्द्रव्यसंयोगविरोधी च। वही, पृ. ४१७

1036 वही, पृ. ४१७

(१) साहसिक - जल साहसिक द्रव्य है।[1037]

(२) नैमित्तिक - पृथ्वी और अग्नि में अग्नि के संयोग से उत्पन्न नैमित्तिक द्रवत्व है, यथा घी, सुवर्ण, सीसा आदि में अग्निसंयोग से द्रवत्व उत्पन्न होता है।[1038]

अमूर्तद्रव्य -

१. **शब्द -** श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य गुण शब्द है।[1039] यह आकाश में रहता है और क्षणिक है।[1040]

२. **बुद्धि-** बुद्धि को ज्ञान भी कहा जाता है। गुणरत्नसूरि के अनुसार बुद्धि का स्वरूप निम्नलिखित है -

बुद्धिर्ज्ञानं ज्ञानान्तरग्राह्यम्। सा द्विविधा विद्याविद्या च। तत्राविद्या चतुर्विधा संशयविपर्ययानध्यवसायस्वप्नलक्षणा। विद्यापि चतुर्विधा प्रत्यक्षलैङ्गिकस्मृत्यार्षलक्षणा। प्रत्यक्षलैङ्गिके प्रमाणाधिकारे व्याख्यास्येते। अतीतविषया स्मृतिः। सा च गृहीताग्राहित्वान्न प्रमाणम्। ऋषीणां व्यासादीनामतीतादिष्वतीन्द्रियेष्वर्थेषु धर्मादिषु यत्प्रातिभं तदार्षम्। तच्च प्रस्तारेणार्षीणां, कदाचिदेव तु लौकिकानां, यथा कन्यका ब्रवीति 'श्वो मे भ्राता आगन्तेति हृदयं मे कथयति इति आर्षं च प्रत्यक्षविशेषः।[1041]

ज्ञान अनुव्यवसाय के द्वारा गृहीत होता है।[1042] वह बुद्धि दो प्रकार की है -

(१) विद्या

(२) अविद्या[1043]

अविद्या - अविद्या पुनः चार प्रकार की होती हैं –

(१) संशय

(२) विपर्यय

1037 वही, पृ. ४१३

1038 वही, पृ. ४१३

1039 वही, पृ. ४१३

1040 शब्दः श्रोत्रेन्द्रियग्राह्यो गगनवृत्तिः क्षणिकश्च। वही, पृ. ४१३

1041 त. र. दी., पृ. ४१५-१६

1042 वही, पृ. ४१३

1043 बुद्धिर्ज्ञानं ज्ञानान्तरग्राह्यम्। सा द्विविधा – विद्याविद्या च। वही, पृ. ४१५

(३) अनध्यवसाय

(४) स्वप्न[1044]

विद्या - विद्या के भी चार प्रकार हैं -

(१) प्रत्यक्ष

(२) लैङ्गिक

(३) स्मृति

(४) आर्ष[1045]

स्मृति - स्मृति अतीतविषयक होती है। अर्थात् अतीत पदार्थों को जानने वाली स्मृति होती है। वह गृहीतग्राही होने से प्रमाण नही है[1046] अर्थात् अनुभव के द्वारा गृहीत पदार्थ को जानने वाली होने से स्मृति प्रमाण नही है।

आर्ष - व्यासादि ऋषियों को अतीतादि अतीन्द्रिय पदार्थों के विषय में तथा धर्म-अधर्म आदि के विषय में इन्द्रियों की सहायता के बिना जो ज्ञान होता है, वह आर्षज्ञान कहा जाता है। **ऋषीणां व्यासादीनामतीतादिष्वतीन्द्रियेष्वर्थेषु धर्मादिषु यत्प्रातिभं तदार्षम्।** [1047] वह ज्ञान प्रायः ऋषियों को होता है। कभी कभी लौकिक पुरूषों को भी होता है यथा - कोई कन्या कहती है मेरा हृदय कहता है कि "कल मेरा भाई अवश्य आयेगा, यह आर्ष ज्ञान है।

४. **सुख** – स्वानुकूल विषय को सुख कहा जाता है। **अनुग्रहलक्षणं सुखम्।** [1048]
५. **दुःख** - जिससे आत्मा को आघात हो, धक्का लगे वह दुःख कहा जाता है।[1049] यह दुःख अमर्ष, दुःखानुभव, मन मलिनता तथा निस्तेजता का कारण बनता है।

1044 वही, पृ. ४१५

1045 त. र. दी., पृ. ४१५

1046 वही, पृ. ४१५

1047 वही, पृ.४१६

1048 वही, पृ.४१६

1049 वही, पृ.४१६

६. **इच्छा-** स्व या पर के लिए अप्राप्त पदार्थ को प्राप्त करने की प्रार्थना को "इच्छा" कहा जाता है। **स्वार्थं परार्थं चाप्राप्तप्रार्थनमिच्छा।** [1050] काम, अभिलाषा, राग, संकल्प, कारूण्य, वैराग्य, छलने की इच्छा, गूढ़भाव इत्यादि इच्छा के भेद है।[1051]

७. **अदृष्ट -** कर्त्ताको कृत कर्मों का फल देने वाला, आत्मा और मन के संयोग से उत्पन्न होने वाला, स्वकार्य विरोधी, धर्म और अधर्म रूप दो भेद वाला, अपने कार्यभूत सुख दुःखादि फल से ही जिसका विनाश होता है, उस आत्मा के गुण को अदृष्ट कहा जाता है। **कर्तृफलदायात्मगुण आत्ममनःसंयोगजः स्वकार्यविरोधी धर्माधर्मरूपतया भेदवान् परोक्षोऽदृष्टाख्यो गुणः।**[1052]

अदृष्ट के दो भेद हैं –

१. **धर्म -** धर्म पुरुष का गुण है। कर्त्ता के प्रिय, हित और मोक्ष में कारण बनता है। यह अतीन्द्रिय है।[1053] अन्तिम सुख संविज्ञान विरोधी है अर्थात् अन्तिम सुख का यथार्थ ज्ञान होने से वह विनाश को प्राप्त होता है। अन्तिम सुख ही तत्त्वज्ञान के द्वारा धर्म का नाश करता है। जहाँ तक अन्तिम सुख है, वहाँ तक धर्म रहता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ तक तत्त्वज्ञान की पूर्णता नहीं होती है, वहाँ तक धर्म का कार्य सुखपूर्वक रहता है। तत्त्वज्ञान होने के बाद भी प्रारब्ध कर्मों के फल रूप अन्तिम सुख तक धर्म रहता है। अन्तिम सुख को उत्पन्न करने के बाद तत्त्वज्ञान से धर्म का नाश होता है।[1054]

वह धर्म पुरूष और अन्तःकरण के संयोग से, विशुद्ध विचारों के द्वारा, श्रुति-स्मृति विहित वर्णाश्रमधर्म का पालन करने से उत्पन्न होता है। उसके साधन सामान्यरूप से श्रुति-स्मृतियों मे बताये गये अहिंसादि है, विशेषरूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि के पूजन, अध्ययन, शस्त्रधारण आदि अनेक प्रकार के होते हैं।[1055]

२. **अधर्म -** अधर्म भी आत्मा का गुण है। कर्त्ता के अहित और प्रत्यपाय का यही कारण है, यह अतीन्द्रिय है, अन्त्यदुःख संविज्ञान विरोधी है अर्थात् अन्तिम दुःख के सम्यग्ज्ञान से इसका

1050 वही, पृ. ४१६

1051 वही, पृ.४१६

1052 त. र. दी., पृ. ४१६

1053 वही, पृ.४१६

1054 वही, पृ.४१६

1055 वही, पृ.४१६

विनाश होता है।[1056] अर्थात् तत्त्वज्ञान के अनन्तर प्रारब्ध कर्म के फल रूप अन्तिम दुःख को उत्पन्न करके तत्त्वज्ञान के द्वारा अधर्म का नाश होता है।

प्रयत्न - कार्य करने के परिश्रम को उत्साह कहते हैं।[1057] यह प्रयत्न सुषुप्ति अवस्था में श्वासोश्वास का प्रेरक है। अर्थात् वह प्रयत्न शयनावस्था में श्वासोश्वास लेने में प्राण वायु का तथा दूषित वायु निकालने में अपान वायु का प्रेरक बनता है। जाग्रत अवस्था में अन्तःकरण को इन्द्रियों के साथ संयोग कराता है। हित की प्राप्ति और अहित के परिहार के लिए उद्यम करवाता है तथा शरीर को धारण करने में भी सहायक होता है। **प्रयत्न उत्साहः, स च सुप्तावस्थायां प्राणापानप्रेरकःप्रबोध कालेऽन्तःकरणस्येन्द्रियान्तरप्राप्तिहेतुर्हिताहितप्राप्त**

परिहारोद्यमः शरीरविधारकश्च। [1058]

१. **द्वेष -** द्वेष प्रज्वलनात्मक है।[1059] द्वेष की विद्यमानता से आत्मा में क्रोध प्रज्वलित होता है। अतः द्वेष होने पर आत्मा को क्रोध से प्रज्वलित माना गया है। द्रोह, क्रोध, अहंकार, अक्षमा, असहिष्णुता आदि द्वेष के ही भेद हैं।[1060]

२. **संस्कार –** आचार्य गुण रत्न सूरि के अनुसार के दो भेद हैं[1061] –

(१) **भावना -** भावना नामक आत्मा का गुण ज्ञान से उत्पन्न होता है और ज्ञान का कारण है। अनुभव आदि ज्ञान से उत्पन्न होने वाला तथा स्मृति, प्रत्यभिज्ञान आदि ज्ञान को उत्पन्न करने वाला भावना नाम का संस्कार है। **भावनाख्य आत्मगुणो ज्ञानजो ज्ञानहेतुश्च दृष्टानुभूतश्रुतेष्वर्थेषु स्मृतिप्रत्यभिज्ञानकार्योन्नीयमानसद्भावः।** [1062] इस संस्कार का अस्तित्व साक्षात् देखे हुए, अनुभव किये हुए या सुने हुए पदार्थों का स्मरण, प्रत्यभिज्ञान आदि से सिद्ध होता है। इस संस्कार के बिना स्मरण नहीं हो सकता है।[1063]

[1056] वही, पृ. ४१६

[1057] त. र. दी., पृ. ४१६

[1058] वही, पृ.४१६

[1059] वही, पृ.४१७

[1060] वही, पृ.४१७

[1061] वही, पृ.४१७

[1062] वही, पृ. ४१७

[1063] त. र. दी., पृ.४१७

(२) **स्थितिस्थापक -** स्थितिस्थापक संस्कार मूर्तिमान् पदार्थों का गुण है।[1064] जो घन अवयव के सन्निवेश से विशिष्ट अपने आश्रय को अर्थात् घन अवयव वाली कालान्तर स्थायी वस्तु को दूसरी अवस्था में ले जाने पर प्रयत्न से पूर्वावस्था में पुनः स्थापन करता है, उसे स्थितिस्थापक कहते हैं। **मूर्तिमदद्रव्यगुणः स च घनावयवसंनिवेशविशिष्टं स्वमाश्रयं कालान्तरस्थायिनमन्यथाव्यवस्थितमपि प्रयत्नतः पूर्ववद्यथावस्थितं स्थापयतीति स्थितिस्थापक उच्यते।**[1065] यथा – बहुत समय से मोड़ कर रखे हुए ताड़-पत्र को खोलने पर भी पुनः मुड़ जाता है, तथा धनुष को खींच कर तीर छोड़ने के बाद धनुष पुनः मूल स्थिति में आ जाता है।[1066]

कुछ आचार्यों ने संस्कार के त्रिविध भेद स्वीकार किये है। (१) वेग, (२) भावना, (३) स्थितिस्थापक। उनके मतानुसार वेग संस्कार का ही भेद है। स्वतन्त्र गुण नहीं है। इसलिए उनके मत में चौबीस ही गुण है। शौर्य, औदार्य, कारूण्य, दाक्षिण्य, उन्नति आदि गुणों का इस प्रयत्न, बुद्धि आदि गुणों में ही अन्तर्भाव हो जाने से चौबीस से अधिक गुण नही हैं।

मूर्तामूर्तद्रव्य -

सङ्ख्या - एक, दो, तीन आदि व्यवहार में कारण भूत एकत्व, द्वित्व आदि सङ्ख्या है। **संख्या तु एकादिव्यवहारहेतुरेकत्वादिलक्षणा।** [1067] वह सङ्ख्या एक द्रव्य में तथा अनेक द्रव्यों में भी रहती है। एकत्व सङ्ख्या एक द्रव्य में रहती है। द्वित्वादि सङ्ख्या अनेक द्रव्यों में रहती है। एक द्रव्य में रहने वाली एकत्व सङ्ख्या जलादि के परमाणुओं में तथा कार्य द्रव्य में रहने वाले रूपादि गुणों की तरह नित्य भी होती है और अनित्य भी होती है। परमाणु में नित्य और कार्य द्रव्य में अनित्य होती है। कार्य द्रव्य की एकत्व सङ्ख्या कारण की एकत्व सङ्ख्या से उत्पन्न होती है।[1068]

अनेक द्रव्यों में रहने वाली द्वित्वादि सङ्ख्या अनेक पदार्थों के एकत्व का विषय करने वाली अपेक्षा बुद्धि से उत्पन्न होती है। वह द्वित्वादि सङ्ख्या अपेक्षा बुद्धि के नाश से नाश होती है और कभी आधारभूत द्रव्य के नाश से नाश होती है। अभिप्राय यह है कि अनेक द्रव्यों में रहने वाली द्वित्वादि सङ्ख्या अपेक्षा बुद्धि से उत्पन्न होती है तथा उसका नाश भी अपेक्षा बुद्धि के नाश से होता है।[1069] दो या तीन पदार्थों को देखकर “यह एक, यह एक और यह एक” ऐसी अनेक पदार्थों के एकत्व को

[1064] वही, पृ.४१७

[1065] वही, पृ.४१६

[1066] वही, पृ. ४१६

[1067] वही, पृ. ४१३

[1068] त. र. दी., पृ. ४१३

[1069] वही, पृ. ४१३

विषय करने वाली अपेक्षा बुद्धि उत्पन्न होती है। वह अपेक्षा बुद्धि से उन पदार्थों में द्वित्वादि सङ्ख्या उत्पन्न होती है। जब वह अपेक्षाबुद्धि नष्ट होती है, तब उस सङ्ख्या का भी नाश होता है।[1070]

संयोग – अप्राप्ति पूर्विका प्राप्ति को संयोग कहा जाता है[1071] अर्थात् जो पहले अलग-अलग थे, तथा बाद में उनका एक हो जाना, उसे संयोग कहा जाता है। **अप्राप्तिपूर्विका च प्राप्तिः सयोगः।**[1072]

विभाग - विभाग प्राप्ति पूर्विका अप्राप्ति रूप होता है, अर्थात् जो पहले संयुक्त हो और बाद में पृथक् हो जाय, उसे विभाग कहते हैं। **प्राप्तिपूर्विका ह्यप्राप्तिर्विभागः।**[1073] यह विभाग और संयोग पदार्थों में क्रमशः "विभक्त अर्थात् अलग-अलग होना" और संयुक्त अर्थात् इकट्ठा होना" इन दोनों व्यवहारों का कारण है।

यह संयोग और विभाग दो में से एक पदार्थ में क्रिया होने से या दोनों पदार्थों में क्रिया होने से होता है। अर्थात् जिन दो पदार्थों का संयोग या विभाग होने वाला है, उसमें कभी दो में से एक पदार्थ में ही क्रिया होती है और कभी-कभी दोनों पदार्थों में क्रिया होती है। यथा - पक्षी का उड़कर वृक्ष की शाखा के ऊपर बैठना और उड़ना, यहाँ पर पक्षी का वृक्ष के साथ का संयोग और उन दोनों का विभाग हुआ। उसमें क्रिया केवल पक्षी में होती है। अतः यह सिद्ध होता है कि संयोग और विभाग दो पदार्थों में क्रिया से उत्पन्न होते हैं अथवा एक पदार्थ की क्रिया से उत्पन्न होते हैं।[1074]

परिमाण - लघु आदि परिमाण के व्यवहार में असाधारण कारण परिमाण नामक गुण है।[1075] परिमाण चार प्रकार का होता हैं –

(१) महत् – बड़ा

(२) अणु – छोटा

(३) दीर्घ – लम्बा

[1070] वही, पृ. ४१४

[1071] वही, पृ. ४१४

[1072] वही, पृ. ४१४

[1073] वही, पृ. ४१३

[1074] त. र. दी., पृ. ४१३

[1075] वही, पृ. ४१३

(४) ह्रस्व – छोटा। **परिमाणव्यवहारव्यवहारकारणं परिमाणम्। तच्चतुर्विधं, महदणु दीर्घं ह्रस्वं च।**[1076]

इनमें महत्परिमाण भी दो प्रकार का है –

(१) नित्य - आकाश, काल, दिशा और आत्माओं में सर्वोत्कृष्ट नित्य परममहत् परिमाण है।[1077]

(२) अनित्य - द्वयणुक, त्र्यणुक आदि द्रव्यों में अनित्य महत्परिमाण है।[1078]

अणुपरिमाण भी दो प्रकार का हैं –

१. **नित्य अणुपरिमाण -** परमाणु और मन में नित्य अणु परिमाण होता है।[1079] वैशेषिक-दर्शन में इसे "पारिमाण्डल्य" कहते हैं।
२. **अनित्य अणुपरिमाण -** अनित्य अणु परिमाण मात्र द्वयणुक में ही होता है।[1080]

बेर, आंवला और बिल्व फल आदि में तथा बिल्वफल, आंवला और बेर आदि में क्रमशः महत् और अणुत्व का व्यवहार होता है। जबकि आंवला आदि में उभय का व्यवहार होता है। अर्थात् बेर, आंवला और बिल्व फल में बेर की अपेक्षा से आंवला में महत् होता है, बिल्वफल की अपेक्षा से आंवला में अणुत्व होता है। इसलिए मध्यम महत्परिमाण वाली उन-उन वस्तुओं में छोटे-बड़े का जो व्यवहार होता है, वह गौण रूप तथा अनियत होता है।[1081]

मध्यम महत्परिमाण वाले गन्ने में समित यज्ञ में उपयोग लकड़ी की अपेक्षा से दीर्घत्व का और बांस की अपेक्षा से ह्रस्वत्व का व्यवहार होता है। यह विभाग भी गौण रूप तथा अनियत होता है।

पृथक्त्व – परस्पर संयुक्त द्रव्य जिससे पृथक्-पृथक् दृष्टिगत् होते हैं तथा "ये दोनों पृथक्-पृथक् हैं" यह अपोद्धार व्यवहार का कारण पृथक्त्व गुण है। **संयुक्तमपि द्रवं यद्वशादत्रेदं पृथगित्यपोध्रियते, तदपोद्धारव्यवहारकारणं पृथक्त्वम्।** [1082]

[1076] वही, पृ. ४१४

[1077] वही, पृ. ४१४

[1078] वही, पृ. ४१४

[1079] वही, पृ. ४१४

[1080] त. र. दी., पृ. ४१४

[1081] वही, पृ. ४१४

[1082] वही, पृ. ४१५

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् – यहाँ कहा गया है कि समवायि कारण से समवेत होने पर असमवायि कारण से भिन्न साक्षात् व्यापक सत्ता वाला गुणत्व है।[1083] अर्थात् **"समवायिकारणासमवेतत्वे सति असमवायिकारणभिन्नसमवेतत्वेन साक्षात् व्यापकसत्ताका या सा गुणत्वेन कथ्यते।**[1084]

द्रव्य, गुण, कर्म में सत्ता नामक जाति रहती है तथा साक्षात् रूप से द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व में व्याप्त है।[1085] यदि इस लक्षण में 'साक्षात् व्यापकसत्ताका' यह पद नहीं दिया जाता तो यह लक्षण ज्ञान में अतिव्याप्त हो जाता है क्योंकि समवायि कारण जो द्रव्य है वह ज्ञान में समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता है। इसलिए समवायि कारण से असमवेत ज्ञान है।[1086] लक्षण में 'असमवायिकारणभिन्नसमवेतत्व' यह कर्म में अतिव्याप्ति रोकने के लिए दिया गया है।

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि – प्रस्तुत ग्रन्थानुसार पच्चीस गुण हैं।[1087] संस्कार के तीन भेद हैं – वेग, भावना, स्थितिस्थापक।[1088] संस्कारत्व जाति रहने से इनमें एकत्व है। शौर्य, औदार्य आदि गुणों का इनमें ही अन्तर्भाव हो जाता है।[1089]

लघुषड्दर्शनसमुच्चय – इसमें जैन, न्याय, बौद्ध, कणाद, जैमिनि, साङ्ख्य-दर्शन का अतिसंक्षेप में कथन प्राप्त होता है अतः सात पदार्थ में गुण का कथन किया गया है लेकिन गुण का लक्षण तथा भेदादि का वर्णन प्राप्त नहीं होता है।[1090]

षड्दर्शनसमुच्चय – गुण पच्चीस स्वीकार किए गए हैं – स्पर्श, रस, रूप, गन्ध, शब्द, संख्या, विभाग, संयोग, परिमाण, पृथक्त्व, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, धर्म, अधर्म, प्रयत्न, संस्कार, द्वेष, स्नेह, गुरुत्व, द्रवत्व, वेग।[1091]

षड्दर्शननिर्णय – मेरूतुंगाचार्य ने केवल आत्मा के नौ विशेष गुणों की चर्चा करते हुए कहते हैं कि बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये गुण आत्मा के हैं। वैशेषिक-दर्शन की

1083 द्वा. द. स., पृ. २२

1084 वही, पृ. २३

1085 वही, पृ. २२

1086 द्वा. द. स., पृ. २२

1087 षड्दर्शनसमुच्चयवचूर्णि, पृ. २९५

1088 वही, पृ. २९५

1089 वही, पृ. २९६

1090 ल.ष.द. स., पृ. ३०१

1091 वही, पृ. ३१२

मान्यता है कि आत्मा द्रव्य है। द्रव्य को धर्मी कहते हैं। बुद्धि, सुख, दुःखादि नौ गुण है। गुणों को धर्म कहा जाता है। धर्म का आधार धर्मी है अतः धर्मरूप नौ गुण आत्मा रूपी धर्मी में रहते है। जब आत्मा से धर्म रूप गुणों का उच्छेद हो जाता है तो मोक्ष की प्राप्ति होती है।[1092]

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक – चिरन्तन मुनि ने सर्वसिद्धान्तप्रवेशक में गुणों का निरूपण पृथक् रूप से करते हुए कहते हैं कि रूप, रस, गन्ध, स्पर्श विशेष गुण है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व ये सामान्य गुण हैं।[1093]

बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार ये आत्मगुण है। गुरुत्व गुण पृथिवी और उदक् अर्थात् जल में रहता है। द्रवत्व पृथिवी और अग्नि में रहता है। स्नेह जल मूर्त द्रव्यों में रहता है। शब्द आकाश का गुण है।[1094]

सर्वसिद्धान्तप्रवेशकार कहते हैं कि गुणत्व जाति से युक्त गुण है अर्थात् जिसमें गुण समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह गुण है। अन्य गुणों का लक्षण जाति के आधार पर करते हुए कहते हैं कि रूपत्व जाति से युक्त रूप है। रसत्व जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहता है वह रस है।[1095]

षड्दर्शनपरिक्रम – इसमें भी वैशेषिक दर्शनोक्त चौबीस ही गुण स्वीकार किए गए हैं –

स्पर्शो रूपं गन्धः सङ्ख्याऽथ परिमाणकम्।

पृथक्त्वमथ योगः विभागोऽथ परत्रकम्।

अपरत्वं बुद्धिसौख्ये दुःखेच्छा द्वेष-यत्नकौ।

धर्मा-धर्मौ च संस्कारा गुरुत्वं द्रव इत्यपि ॥

स्नेहः शब्दो गुणा एवं विंशतिश्चतुरन्विता ॥[1096]

1092 षड्दर्शननिर्णय, पृ.३२४

1093 स. सि. प्र., पृ. ३६३

1094 वही, पृ. ३६३

1095 वही, पृ. ३६३

1096 ष. द. प., पृ. ३९४

॥ कर्म विचार ॥

कर्म विचार - गुण की तरह कर्म भी विभिन्न अर्थों से युक्त है। विभिन्न शास्त्रों में इसके विभिन्न अर्थ किये गये हैं – व्याकरण के अनुसार द्वितीय कारक को कर्म कहा गया है।[1097] अन्य वैयाकरणों के अनुसार कारण-व्यापार का विषय कर्म है।[1098] सर्वदर्शनसङ्ग्रह में फल की इच्छा रखकर, मनुष्यों द्वारा किया जाने वाला धर्माधर्मात्मक कार्य, कर्म है। **क्रियते फलार्थिभिरिति कर्म धर्माधर्मात्मकं बीजाङ्कुरवत्प्रवाहरूपेणानादि।**[1099] गीता में त्रिविध कर्म का उल्लेख है- सात्त्विक, राजस एवं तामस।[1100] मीमांसकों ने भी कर्म को तीन प्रकार का माना है नित्य, काम्य एवं नैमित्तिक।[1101] वेदान्त में सञ्चित एवं प्रारब्ध दो कर्म बताये गए हैं।[1102] किन्तु न्याय वैशेषिक-दर्शन में उपर्युक्त सारी मान्यताओं से भिन्न कर्म एक पृथक् द्रव्य है। यह कर्म द्रव्य की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता ही नहीं, द्रव्य का धर्म भी है। भादुड़ी ने कर्म के विषय में कहा है कि द्रव्यों में परिवर्तन अथवा गति का यह साक्षात् कारण ही वैशेषिक-दर्शन में कर्म पदार्थ है।[1103] सङ्ग्रह-ग्रन्थों में कर्म का स्वरूप निम्नलिखित है –

षड्दर्शनसमुच्चय – आचार्य हरिभद्रसूरि ने कर्म का लक्षण न देते गुए कर्म के पाँच भेद स्वीकार किए है –

उत्क्षेपावक्षेपावाकुञ्चनकं प्रसारणं गमनम्। पञ्चविधं कर्म --------॥

१. उत्क्षेपण
२. अपक्षेपण
३. आकुञ्चन
४. प्रसारण
५. गमन

1097 कर्तुरीप्सिततमं कर्म। अष्टाध्यायी, १/४/४९

1098 शशधरादयस्तु कारणव्यापारविषयः कर्मेत्याहुः।- न्या. को., पृ. २०८

1099 स. ध. सं. पृ. ३४५

1100 भ. गी. १८ / ७-९

1101 श्लोकवार्तिक,पृ. ११०

1102 वेदान्तपरिभाषा, पृ. ४०१

1103 Bhaduri, S.N.V.M., p. 134

उत्क्षेपावक्षेपाकुञ्चनकं प्रसारणं गमनम्।[1104]

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह – शङ्कराचार्य कहते हैं कि कर्म पाँच प्रकार का हैं **कर्म च पञ्चधा।**[1105] –

.... कर्म च पञ्चधा।

प्रसाराकुञ्चनोत्क्षेपा गत्यवक्षेपणे इति ॥

१. **उत्क्षेपण**
२. **अपक्षेपण**
३. **आकुञ्चन**
४. **प्रसारण**
५. **गमन**[1106]

शङ्कराचार्य की इस कृति में वैशेषिक मत के सन्दर्भ में कर्म समीक्षा के विषय में अल्प विवेचन अर्थात् कर्म के पाँच भेदों का नाम ही प्राप्त होता है।

पदार्थधर्मसङ्ग्रह – वैशेषिक के सात पदार्थों में कर्म तृतीय पदार्थ है। पदार्थधर्मसङ्ग्रह के अनुसार कर्म के पाँच भेद हैं –

१. **उत्क्षेपण**
२. **अपक्षेपण**
३. **आकुञ्चन**
४. **प्रसारण**
५. **गमन**[1107]

इन उत्क्षेपण, अवक्षेपण आदि कर्म के भेदों में कर्मत्व जाति समवाय सम्बन्ध से रहती है। पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार कर्म के भेद का साधर्म्य-वैधर्म्य का निरूपण करते हुए कहते हैं कि कर्म एक समय में एक द्रव्य में रहता है, यह क्षणिक अर्थात् त्रिक्षणवृत्ति वाला है, मूर्त द्रव्यों में रहता है, गुण रहित है, गुरुत्व, द्रवत्व, प्रयत्न तथा संयोग से उत्पन्न होता है, अपने क्रिया के कार्य उत्तरसंयोग से नष्ट होता है, संयोग तथा विभाग का किसी दूसरे की अपेक्षा के विना कारण होता है, द्रव्य आदि का केवल

[1104] ष. द. स., पृ. ५४

[1105] स. सि. सं., पृ. २१

[1106] वही, पृ. २२

[1107] प. ध. सं.,पृ. २४०

असमवायी कारण होता है, अपने अर्थात् क्रिया के अथवा क्रियाभिन्न दूसरे के आधार में समवाय सम्बन्ध से उत्पन्न कार्य को आरम्भ करता है, समान जातीय कर्म को उत्पन्न नहीं करता है, तथा न ही यह द्रव्य को आरम्भ करता है, यह कर्म का साधर्म्य है।[1108]

प्रशस्तपाद की यह विशेषता है कि पदार्थों का लक्षण तथा भेद आदि को प्रस्तुत करने से पहले उनके साधर्म्य-वैधर्म्य का वर्णन करते हैं उसी क्रम में यहाँ कर्म के वैधर्म्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि प्रत्येक उत्क्षेपण आदि में नियत उत्क्षेपणत्व आदि जाति से सम्बन्धित होना और विशेष दिशा में कार्य के संयोग-विभाग को उत्पन्न करना आदि कर्म का वैधर्म्य हैं।[1109] कर्म के पाँच भेदों का वर्णन निम्न लिखित है –

१. **उत्क्षेपण –** पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार कहते हैं कि उत्क्षेपणादि कर्मों में से जो कर्म शरीर के हस्त-पाद आदि अवयवों में तथा उनमें संयुक्त मूसलादि द्रव्यों में भी ऊर्ध्वदेश अर्थात् ऊपर में वर्तमान दिशा के प्रदेशों के साथ संयोग को उत्पन्न करता है, तथा अधोदेश अर्थात् नीचे में वर्तमान दिशा के प्रदेशों के साथ विभक्त होने का कारण होता है , गुरुत्व, प्रयत्न तथा संयोग रूप कारणों से उत्पन्न कर्म को उत्क्षेपण क्रिया कहते हैं।[1110]
२. **अपक्षेपण –** उत्क्षेपण कर्म के विपरीत अर्थात् शरीर के अवयव तथा उसमें संयुक्त मूसलादि द्रव्यों में भी अधोदेश में संयोग तथा उर्ध्वदेश में विभाग को उत्पन्न करने वाला कर्म अपक्षेपण हैं।[1111]
३. **आकुञ्चन –** आकुञ्चन का अर्थ सिकोड़ना या सकुचित करना है। ऋजु अर्थात् सीधे द्रव्य के अग्रिम अवयवों का उनके स्थानों से विभाग तथा मूल स्थानों से संयोग जिस कर्म से होता है अर्थात् अवयवी कुटिल अर्थात् टेढा हो जाता है वह आकुञ्चन है।[1112]
४. **प्रसारण –** प्रसारण का अर्थ है फैलना। आकुञ्चन के विपरीत संयोग और विभाग होने पर जिस कर्म से अवयवी सीधा अर्थात् ऋजु हो जाता है वह प्रसारण है।[1113]

[1108] प. ध. सं., पृ. २४१

[1109] वही, पृ. २४७

[1110] वही, पृ. २४३

[1111] वही, पृ. २४४

[1112] प. ध. सं., पृ. २४४

[1113] वही, पृ. २४४

५. **गमन –** जो किसी नियत दिक् प्रदेश में न होने वाले संयोग और विभाग का कारण होता है वह गमन है।[1114]

सत्प्रत्यय, असत्प्रत्यय, अप्रत्यय – उत्क्षेपण आदि पाँच प्रकार का कर्म जब शरीर के अवयवों में तथा उनसे सम्बद्ध मूसल आदि में होता है उसको सत्प्रत्यय तथा अप्रयत्नपूर्वक असत्प्रत्यय होता है।[1115] जब शरीर के अवयवों तथा उनसे सम्बद्धों से भिन्न में होता है उसको अप्रत्यय कहते हैं।[1116] वैशेषिक-दर्शन के अनुसार प्रयत्न आत्मा का गुण है। वह उसमें कारण नहीं होता है।

सर्वदर्शनकौमुदी – दामोदर शास्त्री कर्म का लक्षण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि – **शून्यत्वे सति संयोगभिन्नत्वे च सति संयोग विभागासाधारणनिमित्तकारणत्वं कर्मत्वमिति कर्मलक्षणम्।**[1117]

१. एक समय में एक द्रव्य में रहने वाला अर्थात् एक साथ एक से अधिक द्रव्यों में कर्म नहीं रह सकता है।[1118]
२. कर्म में गुण नहीं रहते हैं।[1119]
३. अपने कार्य अर्थात् संयोग से कर्म का नाश हो जाता है।[1120]
४. कर्म संयोग- विभाग की उत्पत्ति में किसी अन्य कारण की अपेक्षा नहीं रखता है।[1121]
५. वैशेषिक-दर्शन के अनुसार कर्म असमवायी कारण ही होता है, वह कभी भी निमित्त या समवायी कारण नहीं होता है।[1122]

दामोदर शास्त्री के अनुसार – **अत्र प्रथम विशेषणमात्रोपादाने आकाशादावतिव्याप्तिवारणाय द्वितीयविशेषणोपादानम्। आकाशादि व्यापकद्रव्यष्वतिव्याप्तिवारणाय गुणशून्यपदोपादानम्। कुत्राप्यविद्यमानानामाकाशादिद्रव्याणामेकाधिकद्रव्यावृत्तित्वेऽपि तेषां गुणवत्तया गुणशून्यत्वाभावान्न तत्रातिव्याप्तिः। यत्र गुणो नैव तिष्ठेत् स एव गुणशून्यो निर्गुणो वा। रूपरसादिगुणानां युगपदेकाधिकद्रव्येष्वविद्यमानत्वेन 'गुणो गुणो नैव तिष्ठेत्' इति नियमादाय तेषां च गुणशून्यतया तेष्वतिव्याप्तेस्तद्वारणाय तृतीयविशेषणदानम्। तेषां संयोगादिकारणत्वाभावान्न**

1114 वही, पृ. २४४

1115 वही, पृ. २१९ श्रीनिवास, प्रशस्तपादभाष्य

1116 वही, पृ. २१९

1117 स. द. कौ.,पृ. ७०

1118 वही,पृ. ७०

1119 वही, पृ. ७०

1120 स. द. कौ., पृ. ७०

1121 वही, पृ. ७०

1122 वही, पृ. ७०

तत्रातिव्याप्तिः। यत् किमपि कारणान्तरमनपेक्ष्यैव यः कारणं भवेत्स एवासाधारणकारणम्। अदृष्टस्य जन्यवस्तुमात्रं प्रति कारणतया संयोगविभागौ प्रत्यपि तस्य कारणत्वसम्भवात्स्पन्दनात्मक कर्माभावे संयोग विभागाद्यसम्भवत्वेन तत्र कारणान्तरसापेक्षतया तस्यादृष्टस्यासाधारणकारणत्वाभावात्तत्र नातिव्याप्तिः। हस्तपुस्तकसंयोगादावतिव्याप्तिवारणाय संयोगभिन्नपदोपादानम्। संयोगात्मक गुणस्योभयपदार्थवृत्तित्वेन तत्र संयोगित्वसत्त्वान्नातिव्याप्तिः। घटपटादावतिव्याप्तिवारणाय विशेष्यांशस्योपादानम्। तत्र तथा विधकारणत्वाभावान्नातिव्याप्तिः।[1123]

कर्म के पाँच भेद हैं –

१. **उत्क्षेपण**
२. **अपक्षेपण**
३. **आकुञ्चन**
४. **प्रसारण**
५. **गमन**

   १. **उत्क्षेप –** जिस द्रव्य का ऊर्ध्व देश से संयोग तथा अधोभाग से विभाग होता है वह उत्क्षेप है।[1124]

   २. **अवक्षेपण –** नीचे के प्रदेश से संयोग तथा ऊपर से विभाग अपक्षेपण है।[1125]

   ३. **आकुञ्चन –** शरीर के निकट संयोग का हेतु आकुञ्चन है।[1126]

   ४. **प्रसारण –** शरीर से विभाग अर्थात् दूर होने को प्रसारण कहते हैं।[1127]

   ५. **गमन –** जिस कर्म के द्वारा जीव एक स्थान से दूसरे स्थान को प्राप्त होता है वह गमन है। येन **कर्मणा जीवा एकस्थानतोऽपरस्थानं प्राप्नुयुस्तदेव गमनम्।**[1128]

सर्वमतसङ्ग्रह - कर्म, संयोग और विभाग का असमवायिकारण है और कर्मत्व सामान्य से युक्त है अर्थात् **संयोगविभागयोरसमवायिकारणजातीयं कर्म।**[1129] गुण के समान कर्म भी द्रव्य पर आश्रित रहने

1123 वही, पृ. ७०-७१

1124 स. द. कौ., पृ. ७१

1125 वही, पृ. ७१

1126 वही, पृ. ७१

1127 वही, पृ. ७१

1128 वही, पृ. ७१

1129 वही, पृ. २३

वाला धर्म है, किन्तु गुण से भिन्न है। कर्म पाँच प्रकार का है – (१) उत्क्षेपण (२) अवक्षेपण (३) आकुञ्चन (४) प्रसारण (५) गमन।[1130]

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् – आचार्य सीताराम हेब्बार कहते हैं कि जो नित्य पदार्थों में समवाय सम्बन्ध से नहीं रहता है, किन्तु व्यापक सत्ता वाली जाति है अर्थात् जो उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन में रहने वाली कर्मत्व जाति है वह कर्म है।[1131]

या नित्यपदार्थे समवायसम्बन्धेन न तिष्ठति, एवं साक्षात् व्यापकसत्ताका या जातिः तत्कर्मत्वमित्युच्यते। नित्यद्रव्येषु आकाश परमाण्वादिषु समवायसम्बन्धेन उक्तलक्षणं तिष्ठतीति अतिव्याप्ति दोषपरिहाराय नित्यासमवेतत्वमिति पदं दत्तम्। एवमेव जलादिपरमाणुषु वर्तमानाः यः रूपादिगुणः एवं परमात्मनि वर्तमानं नित्यज्ञानं एतेषु गुणत्वजातिः समवायसम्बन्धेन तिष्ठति। एतत्परिहाराय नित्यासमवेतत्वमिति विशेषणम्। यतः कर्म कस्यापि द्रव्यस्य नित्यं न भवति। अतः कर्मत्वजातिः नित्यासमवेता सती साक्षात् व्यापकसत्ताका भवति।[1132] अर्थात् आकाश, काल, दिक् नित्य परमाणु आदि द्रव्यों में अतिव्याप्ति रोकने के लक्षण में 'नित्यासमवेतत्वम्' पद का प्रयोग किया गया है। पृथिवी, जल, तेज, वायु के परमाणुओं में वर्तमान जो रूपादि गुण है तथा परमात्मा में वर्तमान नित्य ज्ञान नामक गुण है इनमें समवाय सम्बन्ध से गुणत्व जाति रहती है अतः अतिव्याप्ति वारण के लिए 'नित्यासमवेतत्वम्' पद का प्रयोग किया है।[1133] यहाँ पर केवल कर्मत्व के लक्षण पर विचार किया गया है उसके भेदों की चर्चा नहीं की गई है।

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक – कर्मत्व जाति जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहती है वह चिरन्तनाचार्य के अनुसार कर्म है। **कर्मत्वयोगात् कर्म।**[1134] कर्म पाँच प्रकार के हैं –

१. उत्क्षेपण
२. अपक्षेपण
३. आकुञ्चन
४. प्रसारण

1130 स. म. सं., पृ.२३

1131 द्वा. द. स., पृ. २४

1132 वही, प. २४

1133 वही, पृ. २४

1134 स. सि. प्र., पृ. ३६३

५. गमन[1135]

नमन, उन्नमन, स्यन्दन, भ्रमण ये सभी गमन के अन्तर्गत आते हैं।[1136]

सर्वदर्शनसङ्ग्रह – यहाँ पर कर्म का लक्षण नहीं दिया गया है। कर्म के पाँच भेद हैं–

१. उत्क्षेपण
२. अपक्षेपण
३. आकुञ्चन
४. प्रसारण
५. गमन

कर्म पञ्चविधम्। उत्क्षेपणापक्षेपणाकुञ्चनप्रसारणगमनभेदात्।[1137] माधवाचार्य के अनुसार भ्रमण अर्थात् घूमना, रेचन अर्थात् खाली करना आदि क्रियाओं का गमन में अन्तर्भाव किया गया है।[1138] भाषा परिच्छेद में इस विषय को और अधिक स्पष्ट किया गया है कि घूमना, खाली करना, प्रवाहित होना, ऊपर की ओर जलना तिरछा चलना आदि क्रियाओं का गमन में ही अन्तर्भाव हो जाता हैं।–

भ्रमणं रेचनं स्यन्दनोर्ध्वज्वलनमेव च।

तिर्यग्गमनमप्यत्र गमनादेव लभ्यते ॥[1139]

पाँच प्रकार के कर्मों के भेदों का अर्थ अधोलिखित है -

१. **उत्क्षेपण** – ऊपर की ओर फेंकना
२. **अपक्षेपण** – नीचे फेंकना
३. **आकुञ्चन** – वस्तुओं का वक्र होना या वस्तु के अवयवों का निकटतर आ जाना।
४. **प्रसारण** – वस्तुओं का सीधा हो जाना या उनके अवयवों का दूर हो जाना।
५. **गमन** – चार कर्मों से अतिरिक्त सभी कर्म गमन में आ जाते हैं।[1140]

1135 स. सि. प्र., पृ. ३६३

1136 वही, पृ. ३६३

1137 स. द. सं., औलूक्यदर्शन, पृ. ३५८

1138 वही, पृ. ३५८

1139 वही, पृ. ३५८

1140 स. द. सं., पृ. ३५९

माधवाचार्य ने अपनी शैली के अनुसार यहाँ पर भी केवल उत्क्षेपण का लक्षण दिया है। ऊर्ध्व स्थानों के साथ संयोग के असमवायि कारण अर्थात् कर्म विशेष से समवेत तथा कर्मत्व के द्वारा व्याप्त जाति को उत्क्षेपण कहते हैं।[1141]

लघुवृत्ति – पाँच कर्म के भेदों के विषय में कहते हैं कि यह सिद्ध है कि कर्म पाँच प्रकार का है। रेचन तथा स्यन्दन आदि क्रियाओं का ग्रहण भ्रमण में हो जाता है।[1142]

तर्करहस्यदीपिका - आचार्य गुणरत्नसूरि के मत में कर्म के पाँच भेद हैं - उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण, गमन।

१. **उत्क्षेपण** – ऊपर की ओर फेंकना। मूसल आदि को ऊपर की ओर ले जाने की क्रिया को उत्क्षेपण कहा जाता है। **ऊर्ध्वं क्षेपणं मुशलादेरूर्ध्वं नयनमुत्क्षेपणं कर्म।**[1143]

२.**अवक्षेपण-** नीचे ले जाना। नीचे की ओर ले जाने की क्रिया को अवक्षेपण कहा जाता है।[1144]

३.**आकुञ्चन-** सीधी ऊंगली आदि द्रव्यों की कुटिलता में कारण भूत क्रिया आकुञ्चन है अर्थात् सीधी उंगली आदि को टेढ़ी करने वाली क्रिया को आकुञ्चन कहते हैं।[1145]

४.**प्रसारण -** जिसके द्वारा वक्र अवयव सरल हो जाता है, उस क्रिया को प्रसारण कहा जाता है।[1146]

५.**गमन -** अनियत दिशा और देशों से संयोग और विभाग में कारण भूत क्रिया को गमन कहा जाता है अर्थात् किसी भी दिशा में तिरछा आदि रूप से होने वाली सभी क्रियाएं गमन है।[1147]

लक्षण में प्रयुक्त अनियत शब्द से भ्रमण, पतन, स्यन्दन, रेचन आदि का भी गमन में अन्तर्भाव हो जाता है। **अनियतग्रहणेन भ्रमणपतनस्यन्दनरेचनादीनामपि गमन एवान्तर्भावो विभावनीयः।**[1148] उत्क्षेपण में नियत रूप से ऊपर के आकाश प्रदेशों से संयोग और नीचे के आकाश प्रदेशों से विभाग होता है। अवक्षेपण क्रिया में ऊपर के प्रदेशों से विभाग और नीचे के प्रदेशों से संयोग होता है। आकुञ्चन में वस्तु

1141 वही, पृ. ३५९

1142 लघुवृत्ति, पृ. ५४

1143 त. र. दी., पृ. ४१९

1144 वही, पृ. ४१९

1145 वही, पृ. ४१९

1146 वही, पृ. ४१९

1147 त. र. दी., पृ. ४१९

1148 वही, पृ. ४१९

के मूल प्रारम्भ के अपने ही प्रदेशों में संयोग होके अन्य आकाश प्रदेशों से विभाग होता है। प्रसारण में मूल प्रदेशों से विभाग तथा अग्रभाग के आकाश प्रदेशों से संयोग होता है। जबकि गमन में अनियत दिशाओं में सभी ओर के आकाश प्रदेशों से संयोग-विभाग होता है। पाँच प्रकार के कर्म क्रियारूप है।

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि – यह अत्यन्त संक्षेप में षड्दर्शनसमुच्चय के श्लोकों की व्याख्या प्रस्तुत करती है तथा कठिन स्थलों पर भी इसमें अल्प प्रकाश डाला गया है। कर्म के विषय में कहते हैं कि कर्म के पाँच भेद हैं। भ्रमण, रेचन तथा स्यन्दन आदि का गमन में ही अन्तर्भाव हो जाता है।[1149]

लघुषड्दर्शनसमुच्चय, राजशेखरकृत षड्दर्शनसमुच्चय, षड्दर्शननिर्णय, षड्दर्शनपरिक्रम, प्रत्यभिज्ञाप्रदीप – इन सभी ग्रन्थों में केवल पाँच भेदों का नाम मात्र उल्लेख प्राप्त होता है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में गुण के सन्दर्भ में सर्वप्रथम गुणत्व जाति या सामान्य की सिद्धि की गयी है। चौबीस गुणों का पृथक् से स्वरूप स्पष्ट किया गया है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों के अनुसार कर्म द्रव्य एवं गुण से भिन्न एक पृथक् पदार्थ स्वीकार किया गया है। कर्म के अन्तर्गत भौतिक एवं मानसिक सभी प्रकार की क्रियाओं का समावेश है।

[1149] षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि, पृ. २९५

पञ्चम-अध्याय

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव निरूपण

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य निरूपण

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में विशेष निरूपण

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में समवाय निरूपण

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अभाव निरूपण

पञ्चम-अध्याय

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य, विशेष, समवाय एवं अभाव निरूपण

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य निरूपण

संसार की वस्तुओं में भिन्नता होते हुए भी कुछ समानता है। यथा राम, कृष्ण, सीता, राधा आदि में भिन्नता होते हुए भी उन्हें मनुष्य कहा जाता है। इसी प्रकार संसार की सभी गायें, बकरियाँ आदि में भी भेद होते हुए भी इन्हें एक नाम से पुकारा जाता है। वैशेषिक-दर्शन के अनुसार इस अनुभूति का आधार सामान्य या जाति है। यह वह पदार्थ है जिसके कारण एक ही प्रकार के विभिन्न प्राणियों में समानता का बोध होता है तथा उन्हें एक जाति के अन्दर रखा जाता है। सामान्य को जाति भी कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह वह जातिगत लक्षण है जो एक वर्ग की सभी अलग-अलग वस्तुओं में निहित होता है। किसी भी वर्ग की पृथक् पृथक् इकाईयाँ आ जा सकती हैं किन्तु सम्पूर्ण वर्ग का जातिगत गुण सदैव बना रहता है।

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** हरिभद्रसूरि सामान्य के दो भेद बतलाते हैं – `**द्वे तु सामान्येतत्र परं सत्ताख्यं द्रवत्वाद्यपरम्'**[1150]

1. **पर –** पर सामान्य को सत्ता कहते हैं।[1151]
2. **अपर –** अपर सामान्य द्रव्यत्वादि हैं।[1152]

- **पदार्थधर्मसङ्ग्रह –** वैशेषिक-दर्शन के सात पदार्थों में सामान्य चतुर्थ पदार्थ है।

  पदार्थधर्मसङ्ग्रह में सामान्य इस प्रकार है – 'वह सामान्य अपने सम्पूर्ण आश्रयों में वर्तमान एक स्वरूप तथा एक, दो अथवा बहुत सी वस्तुओं में एक आकार की बुद्धि का कारण है, अपने एक ही स्वरूप से, अपने सभी आश्रयों में बराबर रहता हुआ, 'अनुवृत्तिप्रत्यय' का अर्थात् अपने आश्रयरूप विभिन्न व्यक्तियों में एक आकार की बुद्धि का कारण है।'

  'स्वविषयसर्वगतमभिन्नात्मकमनेकवृत्तिएकद्विबहुष्वात्मस्वरूपानुगम प्रत्ययकारि

[1150] ष. द. स. , पृ.५४

[1151] तत्र परं सत्तारण्यम्। - वही, पृ.५४

[1152] द्रव्यत्वाद्य। - वही, पृ.५४

स्वरूपाभेदेनाधारेषु प्रबन्धेन वर्त्तमानमनुवृत्तिप्रत्ययकारणम्।'[1153] प्रशस्तपाद प्रदत्त सामान्य के इस लक्षण में कुछ पारिभाषिक शब्द प्रयोग किये गये हैं जो अधोलिखित हैं –

१. **अनेकवृत्ति –** अनेकवृत्ति का अर्थ है कि किसी वर्ग के सभी व्यक्तियों में अनुगत रहना अर्थात् समवाय सम्बन्ध विद्यमान रहना है।[1154]

२. **अनुवृत्तिप्रत्यय –** अनुवृत्ति प्रत्यय का अर्थ समानता है। वैशेषिक-दर्शन यह मानता है कि द्रव्य, गुण और कर्म में समानरूप से एक सामान्य 'सत्ता' रहती है, जिससे 'द्रव्य सत्','गुणाः सत्', 'कर्म सत्' अनुवृत्ति प्रत्यय है।[1155]

प्रशस्तपाद के इस लक्षण में 'अनेक वस्तुओं में समान प्रतीति के कारण को' सामान्य कहा है परन्तु उनका यह लक्षण अव्याप्त है, क्योंकि सामान्य के बिना भी अनेक वस्तुओं में अनुवृत्ति प्रतीति होती है अतः न्यायवार्तिककार कहते हैं कि समान प्रत्यय की उत्पत्ति का हेतु ही जाति है, ऐसा नही हो सकता, क्योंकि जाति के बिना भी समान प्रत्ययों की उत्पत्ति होती ही है **– 'तत्समानप्रत्ययोत्पत्तिकारणं जातिरिति जातौ नियमो न, समानप्रत्ययोत्पत्तौ जातिमन्वन्तरेणापि दृष्टत्वात्**[1156] वाचस्पति मिश्र के अनुसार भी सामान्य का लक्षण व्यक्ति एवं आकृति से भेदक मात्र स्वीकार किया जा सकता है, पूर्ण नही कहा जा सकता है - **व्यक्त्याकृतिभ्यां भेदकत्वमात्रेण चैतल्लक्षणं न तु सर्वथा वेदितव्यम्।**[1157]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के मत में सामान्य का विभाजन द्विविध है –

१. पर सामान्य

२. अपर सामान्य[1158]

परसामान्य - वैशेषिक-दर्शन में पर सामान्य को सत्ता कहते हैं। वैशेषिक सूत्रों के अनुसार पर सामान्य केवल अनुवृत्ति प्रत्यय का ही कारण है।[1159] यह व्यावृत्ति प्रत्यय का कारण नही है। यह कभी भी विशेष नही बनता है। पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार सत्ता का ज्ञान प्रत्यक्षप्रमाण से होता है, लेकिन कुछ

[1153] प.ध.सं., पृ.२७६

[1154] शर्मा, चन्द्रधर, भारतीय दर्शन : आलोचन और अनुशीलन, पृ. १६७

[1155] भारतीय दर्शन, नन्दकिशोर देवराज, पृ.३३३,

[1156] न्या.वा., पृ.३३६

[1157] न्या.वा.ता.टी. पृ.४९५

[1158] प.ध.सं., पृ.२७६

[1159] वै.सू.१/२/४

लोग अनुमान से भी मानते हैं – जिस प्रकार नीलचर्म, नीलवस्त्र और नील कम्बलों में परस्पर विभिन्नता रहते हुए भी नीले रंग के सम्बन्ध से उनमें से प्रत्येक में 'यह नील है' इस एकाकार की प्रतीति होती है, उसी प्रकार परस्पर विभिन्न द्रव्यों, गुणों और कर्मों में से प्रत्येक में 'यह सत् है' इस एकाकार की प्रतीति होती है, उसे सत्ता कहते हैं। इस सत्ता जाति के सम्बन्ध से 'यह सत् है' इत्यादि आकारों के अनुवृत्ति प्रत्यय ही हो सकते हैं, व्यावृत्ति प्रत्यय नहीं।अतः सत्ता सामान्य ही है विशेष नही।

द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्वादि जातियाँ अनुवृत्ति प्रत्यय और व्यावृत्ति प्रत्यय दोनों के ही कारण हैं, अतः वे सामान्य और विशेष दोनों ही हैं, यथा द्रव्यत्व जाति सभी द्रव्यों में 'यह द्रव्य है', इस अनुवृत्ति प्रत्यय का कारण है, अतः सामान्य है। इसी प्रकार वह द्रव्यत्व जाति द्रव्य में ही 'यह गुण और कर्म से भिन्न है' क्योंकि इसमें द्रव्यत्व है। इस व्यावृत्ति प्रत्यय का भी कारण है, अतः विशेष भी है। ऐसे ही 'गुणत्व' जाति सभी गुणों में 'यह गुण है' इस प्रकार की अनुवृत्ति-प्रतीति का कारण है, अतः सामान्य है एवं द्रव्य, गुण, कर्म इन दोनों से ही भिन्न है क्योकि वह गुण है, इस व्यावृत्ति बुद्धि का भी कारण है, अतः विशेष भी है। इसी प्रकार परस्पर विभिन्न उत्क्षेपण क्रियाओं में 'ये कर्म है' इस समान आकार की प्रतीति होने से सामान्य तथा उन्हीं कर्मों में द्रव्य तथा गुण की व्यावृत्ति बुद्धि होने से विशेष भी हैं किन्तु सत्ता केवल सामान्य ही है।[1160]

अपर सामान्य – वैशेषिक-दर्शन में द्रवत्व, गुणत्व, कर्मत्व जातियाँ अपर हैं। ये अनुवृत्ति प्रत्यय के हेतु होने से सामान्य तथा व्यावृत्ति प्रत्यय का हेतु होने से विशेष हैं – **"द्रव्यत्वाद्यपरम्, अल्पविषयत्वात्। तच्च व्यावृत्तेरपि हेतुत्वात् सामान्यं सद्विशेषाख्यामपि लभते।"**[1161]

यथा 'द्रव्यत्व' परस्पर विभिन्न पृथिवी आदि द्रव्यों में से प्रत्येक द्रव्य में 'यह द्रव्य है' इस एकाकार की प्रतीति होने के कारण सामान्य है एवं उन्हीं नौ द्रव्यों में से प्रत्येक में 'यह गुण और कर्म से भिन्न है' इस व्यावृत्ति बुद्धि का हेतु होने से विशेष भी है। गुणत्व की रूपादि चौबीस गुणों में से प्रत्येक में 'यह गुण तथा कर्म से भिन्न है' इस व्यावृत्तिबुद्धि का हेतु होने से विशेष भी है। गुणत्व भी रूपादि चौबीस गुणों में से प्रत्येक में 'यह गुण है' इस एकाकार की प्रतीति होने के कारण सामान्य है एवं उन्हीं नौ द्रव्यों में से यह रूपादि द्रव्य और कर्म से भिन्न है इस व्यावृत्ति बुद्धि का कारण होने से विशेष भी है। कर्मत्व जाति भी उत्क्षेपणादि विभिन्न क्रियाओं में से प्रत्येक में यह क्रिया है। इस अनुवृत्ति प्रत्यय का

[1160] न्या.क., पृ.७४५-४६

[1161] प.ध.सं.,पृ.५

कारण होने से सामान्य तथा उत्क्षेपणादि क्रियाओं में से प्रत्येक में यह द्रव्य और गुण से भिन्न है, इस व्यावृत्तिबुद्धि का हेतु होने से विशेष भी है। प्राणियों में रहने वाले और अप्राणियों में रहने वाले पृथिवीत्व, रूपत्व, उत्क्षेपणत्व, गोत्व, घटत्व, पटत्व आदि अपर सामान्यों में भी अनुवृत्तिप्रत्ययजनकत्व हेतु होने से सामान्य और व्यावृत्तिप्रत्ययजनकत्व हेतु से विशेषत्व सिद्ध होता है - एवं **"पृथिवीत्वरूपत्वोत्क्षेपणत्वगोत्वघटत्वादीनामपि प्राण्यप्राणिगतानामनुवृत्ति-व्यावृत्तिहेतुत्वात् सामान्यविशेषभावः सिद्धः।"**[1162] प्रशस्तपाद ने भी सामान्य के दो ही भेद स्वीकार किये हैं।

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** शङ्कराचार्य ने सामान्य को दो प्रकार का बतलाया है –

परश्चापरमित्यत्र सामान्यं द्विविधं मतम्।

परं सत्तादि सामान्यं द्रव्यत्वाद्यपरं मतम् ॥

परस्परविवेकोऽत्र द्रव्याणां यैस्तु गम्यते।[1163]

१. पर सामान्य

२. अपर सामान्य[1164]

१. **पर सामान्य -** पर सामान्य को सत्ता कहते हैं। यह द्रव्य, गुण, कर्म में रहती है।

२. **अपर सामान्य –** द्रव्यत्वादि अपर सामान्य हैं।

द्रव्य, गुण, पर्याय में जो सत्व है, वह सत्ता ही पर सामान्य है। सत् अनुवृत्ति अर्थात् भिन्न-भिन्न वस्तुओं की एकाकार प्रतीति का हेतु होने से यह सामान्य ही है।

अतः कहा गया है कि द्रव्य, गुण पर्याय में जो व्यापक सत् है, वह सत्-सत्ता अपर सामान्य है, उसी प्रकार द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व अपर सामान्य हैं, यथा द्रव्यों में द्रव्यत्व, गुणों में गुणत्व एवं कर्नों में कर्मत्व अपर सामान्य है।

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** वैशेषिक-दर्शन के अनुसार आधार के बाद आधेय पदार्थ आते हैं। द्रव्य, गुण, कर्म तीनों ही सामान्य के लिए आधार हैं, इसलिए वे सामान्य की अपेक्षा प्रधान हैं।

[1162] प.ध.सं.,पृ.२७७

[1163] स. सि. सं., पृ.२२

[1164] स. सि. सं., पृ.२२

सामान्य इन तीनों के अन्त में आता है अर्थात् पदार्थों के क्रमिक गणना में चतुर्थ स्थान पर आता है।[1165]

'सामान्यं तु प्रध्वंसप्रतियोगीत्वरहितमनेकसमवेतम्' अर्थात् जो प्रध्वंश अर्थात् विनाश का प्रतियोगी न हो तथा अनेक पदार्थों में समवेत हो उसे सामान्य कहते हैं।[1166]

अभिप्राय यह है कि सामान्य का विनाश नही होता है। जिस वस्तु की जाति मानी जाती है, उसके पदार्थों के नष्ट होने पर भी जाति यथापूर्व स्थित रहती है। उसका विनाश नही होता है। यथा भारतीयों के मरने पर भी भारतीयता यथावत् रहती है, घट के नष्ट होने पर भी घटत्व रहता है।[1167]

जाति अथवा सामान्य की स्थिति समवाय सम्बन्ध से अनेक पदार्थों में रहती है, एक पदार्थ में नही। केवल अविनाशी होने से तो दिक्, काल आदि में भी अतिव्याप्ति हो जाती है। अतः इन्हें व्यावृत्त करने के लिए ही 'अनेकसमवेत' विशेषण का प्रयोग किया गया है।[1168] दिक्, काल अनेक पदार्थों में नहीं रहते जबकि घटत्व संसार के सारे घटों में एक ही साथ रहता है।

माधवाचार्य के अनुसार सामान्य दो प्रकार का होता है – **'सामान्यं द्विविधं परमपरं च । परं सत्ता द्रव्यगुणसमवेता। अपरं द्रव्यत्वादि।'**[1169]

१. पर
२. अपर

१. **पर –** पर सामान्य तो सत्ता है। यह द्रव्य और गुण से समवेत है।[1170]
२. **अपर –** अपर सामान्य द्रव्यत्वादि हैं। **अपरं द्रव्यत्वादि।**[1171]

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** नित्य होना, अनेकों में रहना तथा समवाय सम्बन्ध से रहना सामान्य है।[1172]

[1165] पश्चात्तत्त्रितयात्रितस्य सामान्यस्य। - स. द. सं., औलूक्य-दर्शन, पृ.३५०

[1166] सामान्यं तु प्रध्वंसप्रतियोगित्वरहितमनेकसमवेतम्। - वही, पृ.३५०

[1167] वही, पृ.३५१

[1168] स. द. सं., पृ.३५९

[1169] स. द. सं., पृ.३५२

[1170] वही, पृ.३५९

[1171] वही, पृ.३५९

[1172] नित्यत्वे सति अनेकसमवेतत्वं सामान्यमिति। - स. द. कौ, पृ.७५

"नित्यत्वे सति अनेकसमवेतत्वं सामान्यत्वमिति सामान्यलक्षणम्।"[1173]

यहाँ 'अनेक समवेतत्व' पद से अनेक पदार्थों में समवाय सम्बन्ध से रहना है। संयोगादि गुणों में अतिव्याप्ति वारणार्थ 'नित्य' पद का प्रयोग किया गया है क्योंकि संयोग सम्बन्ध अनित्य होता है। वैशेषिक-दर्शन के अनुसार यह एक गुण है।

सामान्य के लक्षण में यदि 'अनेकों में रहना' यह अंश हटा दिया जाए तो यह लक्षण आकाश के परिमाण में अतिव्याप्त हो जाएगा, क्योंकि आकाश का परिमाण नित्य आकाश द्रव्य का गुण होने से स्वयं भी नित्य है और वह अपने आश्रय में समवाय सम्बन्ध से ही रहता है। किन्तु 'अनेकों में रहना' आकाश परिमाण के विषय में ठीक नही बैठती, क्योंकि आकाश केवल एक ही है, अनेक नही। अतः 'अनेकों में रहना' यह सामान्य के लक्षण का अनिवार्य अङ्ग है।[1174]

दामोदर शास्त्री के अनुसार सामान्य के लक्षण में प्रयुक्त तीसरा 'समवाय सम्बन्ध से रहना' यह लक्षण अत्यन्ताभाव में अतिव्याप्त होकर चला जाएगा, क्योंकि वैशेषिक-दर्शन के अनुसार अत्यन्ताभाव नित्य भी है तथा वह अनेक वस्तुओं में रहता भी है परन्तु केवल इतना ही अन्तर है कि अत्यन्ताभाव अपने आश्रय द्रव्यों में समवाय सम्बन्ध से नही रहता है वरन् स्वरूप सम्बन्ध से रहता है। इसलिए सामान्य के सन्दर्भ में 'समवाय सम्बन्ध से रहना' यह जोड़ दिया गया क्योंकि सामान्य अपने आश्रय द्रव्यों में समवाय सम्बन्ध से ही रहता है।[1175] सामान्य द्रव्य, गुण तथा कर्म इन तीन पदार्थों में रहता है तथा उसे 'जाति' भी कहा जाता है।[1176] सर्वदर्शन कौमुदी में भी सामान्य पदार्थ के दो भेद किए गए हैं –

१. पर
२. अपर[1177]

'पर' का अर्थ है बड़ी अर्थात् अधिक स्थलों पर रहने वाली तथा 'अपर' का अर्थ छोटी अर्थात् कम स्थलों पर रहने वाली जाति है। कहा गया है कि –

"सामान्यं द्विविधम्, परापरभेदात्। तत्राल्पदेशवृत्तित्वं परत्वं, बहुदेशवृत्तित्वं चापरत्वम्। तेन सामान्या जातिः परा जातिः विशेषाजातिश्चापरा जातिः, तेन प्राणिरूपा जातिः प्राणिमात्रेषु

[1173] वही, पृ. ७५

[1174] स. द. कौ, पृ.७४

[1175] वही, पृ.७६

[1176] 'एतत्सामान्यं 'जातिरित्यपि कथयन्ति'। - वही, पृ.७६

[1177] स. द. कौ.,पृ.७६

समवायसम्बन्धेन विद्यमानतया साधारणजातित्वेन परा जातिः, मनुष्यत्वपशुत्वादयश्च मनुष्यविशेषेषु पशुविशेषेषु च विद्यमानतया विशेषजातित्वेनापरा जातिः। सा जातिः द्रव्यगुणकर्मस्वेव त्रिषु वर्तते न तदितरपदार्थेषु। घटत्वपृथिवीत्वयोर्मध्ये केवलघटमात्रे विद्यमानस्य घटत्वस्याल्पदेशवृत्तित्वमादाय क्षितित्वापेक्षयाऽपरजातित्वम्। पार्थिवपदार्थमात्रवृत्तिक्षितित्वस्य बहुदेशवृत्तित्वमादाय घटत्वापेक्षया पराजातित्वमवधेयम्। एतद्भिन्नाऽपरा सत्ताख्या जातिरस्ति, तस्या द्रव्यगुणकर्मसु त्रिष्वेव विद्यमानत्वेन तस्या बहुदेशवृत्तित्वमादाय द्रव्यत्वगुणत्वकर्मत्वापेक्षया पराजातित्वमवगन्तव्यम्।"[1178]

पर सामान्य – अल्प देश में रहने वाली जाति परत्व है परन्तु ध्यातव्य यह है कि पर सामान्य का यह लक्षण समुचित प्रतीत नही होता, क्योंकि पर सामान्य अल्पदेश में नही रहता वरन् अधिक देश में रहता है। **तत्राल्पदेशवृत्तित्वं परत्वम्।**[1179]

अपर सामान्य – अधिक देश में रहने वाली जाति अपर सामान्य है। यहाँ लक्षण में यह प्रतीत होता है कि पर-अपर सामान्य के दोनों लक्षण परस्पर परिवर्तित हो गए हैं – **'बहुदेशवृत्तित्वं चापरत्वम्।'**[1180]

- **सर्वमतसङ्ग्रह -** सामान्य, नित्य एवं अनेकानुगत होता है - **नित्यमनेकवृत्ति सामान्यम्**[1181] उदाहरणार्थ – अनेक मनुष्यों में रहने वाली मनुष्यत्व जाति एक एवं नित्य है। सामान्य का आधार भिन्न-भिन्न वस्तुओं के अनुवृत्ति अर्थात् एकाकार प्रतीति है। वह द्रव्य, गुण एवं कर्म में रहने वाला नित्य एक एवं अनेकवृत्ति होता है। इसके दो भेद हैं –

तद् द्विविधं परमपरं च। परं सत्ता , अधिकवृत्तित्वात्। अपरं द्रव्यत्वादि, न्यूनवृत्तित्वात्।[1182]

१. पर सामान्य
२. अपर सामान्य [1183]

1178 स. द. कौ, पृ. ७६

1179 वही, पृ.७६

1180 वही, पृ.७६

1181 वही, पृ. २३

1182 वही, प. २२

1183 वही, पृ. २३

पर सामान्य सत्ता है, क्योंकि यह अधिक व्यापक है। यह अनुगत प्रतीति का हेतु होने से सामान्य ही है, विशेष कदापि नही।

अपर सामान्य द्रव्यत्वादि है। ये अल्पदेश वृत्ति होने के कारण अपर सामान्य है। ये भेद बुद्धि का हेतु होने से सामान्य होते हुए भी विशेष होते हैं।

- **द्वादशदर्शनसोपानावलि -** आचार्य श्रीपादशास्त्री हसूरकर ने सामान्य के प्राचीन लक्षण को ही प्रस्तुत किया है कि नित्य, एक, अनेकों में रहने वाला सामान्य है।[1184] सामान्य के लक्षण में मुख्य रूप से तीन बातें समाविष्ट हैं –

  १. नित्य होना (नित्यम्)

  २. अनेकों में रहना (अनेकानुगतम्)

  ३. समवाय सम्बन्ध से रहना (समवेतत्त्वम्)

इनमें से किसी एक के बिना भी 'सामान्य' का लक्षण दूषित हो जाता है। इसे ऐसे समझा जा सकता है -

१. यदि इसका लक्षण केवल 'अनेकों में रहना' तथा समवाय सम्बन्ध से रहना करें तो यह लक्षण संयोग नामक गुण में चला जायेगा, किन्तु नित्य कहने से यह सम्भावना निर्मूल हो जाती है क्योंकि संयोग अनित्य है।

२. यदि केवल 'नित्य' तथा 'समवाय सम्बन्ध से रहना' इसकी परिभाषा करें तो यह लक्षण आकाश परिमाण में चला जाता है। 'अनेकों में रहना' यह प्रयोग में लाने से आकाश परिमाण की शङ्का दूर हो जाती है क्योंकि आकाश परिमाण केवल आकाश में ही होता है।

३. यदि केवल 'नित्य' एवं 'अनेकों में रहना' स्वीकार करें तो यह लक्षण अत्यन्ताभाव में चला जाता है। इसी शङ्का के समाधानार्थ समवाय समबन्ध से रहना कहा गया। अत्यन्ताभाव अपने आधार में समवाय सम्बन्ध से नही रहता है।

इस प्रकार उक्त तीनों लक्षण ही सामान्य का निर्दुष्ट लक्षण है।

सामान्य के विषय में अन्य तथ्यों का स्पष्टीकरण करते हुए कहते हैं कि – **एकं वा द्वौ वा घटौ वीक्ष्य सर्वेषां घटानां ज्ञानं भवति। बालकश्च ज्ञातघटो नूतनं घटमानेतुं समाज्ञप्त आपणं गत्वा तमानयति। तथा च कतिपयव्यक्तिदर्शनेन यत् सर्वासां घटादिव्यक्तिनां ज्ञानं ज्ञायते तत्किमनुमानात्मकमथवा**

[1184] नित्यमेकमनेकानुगतमिति सामान्यम्। - द्वा. द. सो., पृ.११८

प्रत्यक्षं? यदि परोक्षमनुमानादिस्वरूपं तदा निःसंदिग्धता न स्यात। किं च कः खलु अतीतानागतघटेषु वर्तते हेतुर्यः खलु तेषामनुमानं कारयेत्। तस्मात् सर्वेषु घटेषु घटत्वं नाम पदार्थ विशेषः कल्पनीयः। तेन साकं सन्निकर्षे सर्वेषां घटानां ज्ञानं ज्ञायते। सोऽयमलौकिकः संनिकर्ष इति शास्त्रे निगद्यते। अपि च द्रव्यगुणकर्मसु सदिति अनुगतप्रत्ययो भवति। तथैवाभावेऽसदिति प्रत्ययो ज्ञायते। तत्र सत्तापदार्थः कः? यदि व्यक्तिविशेषरूपस्तदा सर्वत्र तस्यानुगतप्रत्ययो न स्यात्। नाप्यर्थक्रियाकारित्वं सत्ता पदार्थः। तस्य व्यक्तिविशेषरूपतया सर्वत्रानुगतप्रत्ययस्यानुपत्तेः। तस्मात् सत्ता नाम सामान्यं जात्यपरपर्यायं पदार्थान्तरं स्वीक्रियते। इदं सत्तासामान्यं परं। तच्च त्रिषु द्रव्यगुणकर्मसु समवायसम्बन्धेन तिष्ठति। ननु सामान्यादिष्वपि सदिति व्यवहारस्य सत्त्वात्तत्रापि सत्तायाः सत्त्वापत्तिः। न चेष्टापत्तिः। तथा सति तत्र सत्ताऽन्या स्यादित्यनवस्था। किं च समवाये सत्तायाः सत्त्वे समवायान्तरं सम्बन्धत्वेन कल्पनीयं स्यात्। सत्यं। भावत्वं साक्षाद्वा परम्परासम्बन्धेन वा सत्तावत्त्वं। तत्र द्रव्यगुणकर्मसु साक्षात्समवायसम्बन्धेन सत्ता तिष्ठति, सामान्यसमवायविशेषु स्वाश्रयाश्रितत्वरूपपरंपरासम्बन्धेन। तथा चानया रीत्या सामान्यादिषु सत्तावत्वं सिध्येदिति चेन्न – आरोपे सति निमित्तं न तु निमित्तमस्तीत्यारोपः।

अभावस्य च नास्तीति प्रतीतिसिद्धत्वेन सत्तावत्त्वं कथमपि तत्रारोपयितुमशक्यं। इदं च सामान्यमपरं परं च घटत्वादिकं पृथिवीत्वादिकं सत्ता च। ननु घटत्वस्य त्वया नित्यत्वं वक्तव्यं। तथा च तत् घटोत्पत्तेः पूर्वं क्वासीत्। नापि घटे समुत्पन्ने घटान्तरादागत्य नूतने घटेऽतिष्ठत्। न च घटत्वेन सहैवोत्पन्नं। नापि घटे नष्टे नष्टं। तस्मादसमंजसैषा सामान्यस्य जातिरूपस्य कल्पना। तदुक्तं –

न याति न च तत्रासीन्न चोत्पन्नं न चांशवत्।
जहाति पूर्वं नाधारं। अहो व्यसनसंततिः ॥

उच्यते सर्वेषु घटेषु घट इत्यनुगतप्रतीत्युपपादनाय घटत्वं नाम। सकलघटवृत्तिः कश्चन पदार्थः स्वीकरणीयः। स च यदि घटवदुत्पादविनाशशाली तदा नाभीष्टं सिध्यति। तथा च भक्षितेऽपि लशुने न शान्तो व्याधिरिति न्यायानुसरणं। अतस्तस्य नित्यत्वं वक्तव्यं।

नित्ये च तस्मिन् सर्वघटवृत्तित्वं स्वीकरणीयं। तथैवानागततातीतघटवृत्तित्वमपि। न चैतदसंभवि। यथा हि अतीतानां दण्डादिनां कारणत्वमनागतानामपि यथैव घटादीनां कार्यत्वं, तथैवातीतनागतघटादिषु घटत्वस्य सम्बन्धकल्पने बाधकाभावात्। किं च कुत्र घटपदवाच्यत्वं। व्यक्ताविति चेत्तत्किं वर्तमानायां किंवाऽतीतायामनागतायां च? सर्वत्रेति चेत्कस्या एकस्या व्यक्तेः कालत्रयसम्बन्धस्याभावात्। न हि कालत्रयसम्बन्धं विहाय नित्यत्वं नाम पदार्थान्तरं। तस्मात् घटपदवाच्यत्वं सर्वेषु घटेषु वर्तमानं कंचन धर्मविशेषमधिकृत्य वक्तव्यं। स च धर्म एव घटत्वं। तत्रातीतानागत घटव्यक्तिषु घटत्वस्य सम्बन्धः कथं स्यादिति शंकां कुर्वता मानवेन प्रथमत इदं वक्तव्यं यदतीतानागतादघटव्यक्तिनां घटपदवाच्यत्वं कथमिति। तस्मादगत्याऽस्मत्सिद्धान्तमनुसृत्य घटत्वं परिकल्प्य तत्रैव वाच्यत्वं स्वीकृत्योपपादनया। अतो न यातीत्यादिप्रजल्पनमज्ञानकल्पितमिति न तन्निराकरणे विशेषादरः क्रियते।

यत्तु केषांचित घटावच्छिना ब्रह्मसत्तैव घटत्वमिति व्याख्यानं तत्तु केषांचित घटावच्छिन्ना ब्रह्मसत्तैव घटत्वमिति व्याख्यानं तत्तु न्यायसिद्धान्तप्रतिकूलत्वादनादरणीयं। न हि ब्रह्मसत्ता वेदान्तिभिरिव नैय्यायिकैरपि स्वीक्रियते। ये तु मृत्तिका सामान्यं घटो विशेष इति परिकल्प्य सर्वेषां पदार्थानां सामान्यविशेषात्मकत्वं स्वीकुर्वन्ति। वदन्ति च निर्विशेषं न सामान्यं, निःसामान्यो न विशेष इति। तदपि नोचितं। न हि मृत्तिका नाम किमपि स्वतन्त्रं तत्त्वं नापि घटो नाम। किन्तु सामान्यविशेषपदाभ्यां कार्यकारणभावमेव समुदाहरन्ति। न स स्वातंत्र्येण कश्चन पदार्थ इति सर्वं सूक्ष्मया दृष्ट्या समवधारणीयम्।[1185]

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** सामान्य का लक्षण करते हुए सीताराम हेब्बार कहते हैं कि – **'नित्यत्वे सति अनेकेषु समवायसम्बन्धेन वर्तमानत्वं सामान्यवत्त्वमिति'**[1186] **यथा गोत्वादयः।**[1187]

  यहाँ पर भी सामान्य पदार्थ के दो भेद स्वीकार किए गए हैं – पर व अपर। द्रव्य, गुण, कर्म में रहने वाली जाति पर सामान्य है। इसको सत्ता भी कहते हैं।[1188] द्रव्यत्वादि अल्पदेश में रहने वाली जाति अपर सामान्य है।[1189]

- **लघुवृत्ति –** लघुवृत्ति षड्दर्शनसमुच्चय की कारिकाओं पर लिखित प्राचीनतम टीका है। इसके लेखक मणिभद्र सत्ता को महासामान्य कहते हैं क्योंकि द्रव्यत्वादि की अपेक्षा से इसका विषय अधिक होता है।[1190]

  अपर सामान्य द्रव्यत्वादि है। इसको सामान्य विशेष कहते हैं, क्योंकि द्रव्यत्व नौ द्रव्यों में रहता है इसलिए सामान्य है तथा गुण और कर्म से द्रव्यत्व की व्यावृत्ति अर्थात् पृथक्करण करता है। अतः विशेष कहलाता है।[1191]

1185 द्वा. द. सो., पृ. १२०

1186 द्वा. द. स., पृ.२४

1187 यहाँ 'गौत्वादयः' पाठ मिलता है।

1188 वही,पृ.२४

1189 वही,पृ.२४

1190 लघुवृत्ति, पृ.५४

1191 वही, पृ.५४

द्रव्यत्वादि की अपेक्षा से पृथिवीत्व आदि अपर हैं तथा पृथिवीत्व की अपेक्षा से घटत्वादि अपर हैं अर्थात् द्रव्यत्व पर सामान्य है, पृथिवीत्व की अपेक्षा से तथा पृथिवीत्व घटत्व की अपेक्षा से परापर सामान्य है।[1192]

चौबीस गुणों में रहने वाली जाति गुणत्व है यह सामान्य कहलाती है तथा द्रव्य एवं कर्म से व्यावृत्त कराती है अतः विशेष है। गुणत्व पर सामान्य है, रूपत्व की अपेक्षा से तथा रूपत्व अपर सामान्य है, गुणत्व की अपेक्षा से। रूपत्व पर सामान्य है, नीलत्व की अपेक्षा से तथा नीलत्व अपर सामान्य है, रूपत्व की अपेक्षा से।[1193]

पाँच कर्मों के भेदों में रहने वाली कर्मत्व जाति है। इसे सामान्य कहते हैं। द्रव्य एवं गुण से व्यावृत्ति के कारण विशेष कहते हैं।[1194] इससे ज्ञात होता है कि आचार्य मणिभद्र ने सामान्य के तीन भेद स्वीकार किए हैं –

- पर सामान्य
- अपर सामान्य
- परापरसामान्य

  जबकि षड्दर्शनसमुच्चयकार पर एवं अपर दो ही भेद मानते हैं।

- **षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि –** यह षड्दर्शनसमुच्चय के प्रत्येक श्लोक पर टीका प्रस्तुत करती है। सामान्य का कथन लघुवृत्ति के अनुरूप ही प्राप्त होता है।[1195] अतः पुनरावृत्ति के भय से पुनः कथन नही किया गया है।
- **तर्करहस्यदीपिका –** यहाँ सामान्य दो प्रकार का है –
- पर
- अपर
- **पर सामान्य -** पर सामान्य को सत्ता हैं - **परापरयोर्मध्ये परं सामान्यं सत्ताख्यम्।**[1196] 'यह सत् है' 'यह सत् है' इस प्रकार का अनुगताकारक ज्ञान का जो कारण है, उसको सत्ता सामान्य कहा जाता है **इदं सदिदं सदित्यनुगताकारज्ञानकारणं सत्तासामान्यमित्यर्थः।**[1197] अर्थात् सत्ता,

---

[1192] वही, पृ.५४

[1193] लघुवृत्ति, पृ.५४

[1194] वही, पृ.५४

[1195] ष. द. स. अ., पृ.२९५

[1196] त. र. दी., पृ. ४२०

[1197] वही, पृ. ४२०

'यह सत् है', 'यह सत् है यह सत् है' इस सद् रूप से अनुगत ज्ञान की उत्पत्ति में कारण बनता है तथा वही सत्ता द्रव्य, गुण और कर्म इन तीन पदार्थों में "सत्,सत्, सत्" इस प्रकार की अनुवृत्ति करके अनुगतज्ञान का कारण बनती है। इसलिए वह सामान्य है, अर्थात् सत्ता मात्र सामान्य रूप है, विशेष रूप नहीं है।

- **अपर सामान्य -** द्रवत्व, गुणत्व, कर्मत्व अपर सामान्य हैं- **द्रवत्वं गुणत्वं कर्मत्वं चापरं सामान्यम्**[1198] उसमें नौ द्रव्यों में "यह द्रव्य है, यह द्रव्य है" इस प्रकार जो बुद्धि होती है, उसमें कारण द्रव्यत्व, अपर सामान्य है। इस प्रकार रूपादि सभी गुणों में "यह गुण है, यह गुण है" इस प्रकार बुद्धि को करने वाला गुणत्व अपर सामान्य है। पांचो कर्मों में "यह कर्म है, यह कर्म है" इस प्रकार बुद्धि में कारण कर्मत्व अपर सामान्य है। वे द्रव्यत्वादि अपने आश्रय द्रव्यादि में अनुगताकारक ज्ञान के कारण होने से सामान्य है और अपने आश्रय के विजातीय गुणादि से व्यावृत्ति होने से अर्थात् व्यावृत्ति ज्ञान का कारण होने से विशेष भी कहा जाता है। इसलिए अपर सामान्य अपेक्षा से उभय रूप होने से सामान्य और विशेष दोनों संज्ञा को प्राप्त करता है। अपेक्षा का भेद होने से एक में ही सामान्य और विशेष का व्यपदेश विरोधी नहीं है। इस प्रकार पृथ्वीत्व, स्पर्शत्व, उत्क्षेपणत्व, गोत्व, घटत्व आदि भी अनुगताकारक ज्ञान के तथा व्यावृत्ति ज्ञान के कारण होने से सामान्य और विशेष दोनों तरह से सिद्ध है। सत्ता के सम्बन्ध से समवाय से सत् माना गया है, वह मात्र द्रव्य, गुण और कर्म में ही स्वीकार किया गया है। अर्थात् द्रव्य, गुण और कर्म ये तीन ही पदार्थ सत्ता के समवाय से सत् माने जाते हैं, परन्तु आकाशादि में नहीं। आकाश काल और दिशा में स्वरूपात्मक अस्तित्व माना गया है। आकाश में जाति नहीं मानी जाती है, क्योंकि आकाश आदि एक-एक ही है **- एकमात्रव्यक्तिवृत्तिस्तु न जातिः**[1199] उदयनाचार्य ने कहा है कि, "व्यक्ति का अभेद, तुल्यत्व, संकर, अनवस्था, रूपहानि और असम्बन्ध ये छः जाति-बाधक हैं" **व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथाऽनवस्थितिः।**[1200]

(१) **व्यक्ति का अभेद :** व्यक्ति का अभेद। व्यक्ति का अकेलापन जाति में बाधक है। क्योंकि सामान्य तो अनेक व्यक्तियों में रहता है, आकाश में व्यक्ति का अभेद होने से अर्थात् आकाश

1198 त. र. दी., पृ. ४२०

1199 शास्त्री, धर्मेन्द्रनाथ, न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, पृ. २५

1200 व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं सङ्करोऽथाऽनवस्थितिः।
रूपहानिरसम्बन्धो जातिबाधकसङ्ग्रहः ॥ तर्करहस्यदीपिका में उद्धृत, पृ. ४२१

एक होने से उसमें आकाशत्व जाति नहीं मानी जाती है।[1201] काल आदि में भी एक होने से कालत्वादि भी जाति नहीं मानी जाती है।

(२) **तुल्यत्व :** पृथ्वी में पृथ्वीत्व जाति होने पर भी यदि उसमें भूमित्व को जाति कहा जायें तो तुल्यत्व जाति बाधक दोष आयेगा।[1202] अर्थात् पृथ्वी में पृथ्वीत्व और भूमित्व नाम की समानार्थक दो जातियां नहीं रहती हैं। क्योंकि दोनों एक ही हैं। तथा वे दोनों समानार्थक हैं, इसलिए पृथ्वीत्व से तुल्यता होने से भूमित्व अतिरिक्त जाति नहीं बनती है।

(३)**संकर :** अभाव के साथ समानाधिकरण हो, ऐसे दो धर्म किसी एक स्थान में रह जाना, यह सांकर्यदोष है।[1203] यह दोष जाति का बाधक है। परमाणुत्व को जाति मानने से उसका पृथ्वीत्व, जलत्व, अग्नित्व, वायुत्व इन सभी के साथ सांकर्य होता है। इसलिए परमाणुत्व जाति नहीं है। मात्र एक धर्मविशेष है।

(४)**अनवस्था :** सामान्य में जाति मानने में मूल का क्षय करने वाला अनवस्था दोष आता है।[1204] इस अनवस्था नाम के जाति बाधक के कारण सामान्य में जाति नहीं मानी जाती है। यह अनवस्था मूलतः सामान्य पदार्थ का लोप कर डालती है। इसलिए उसको मूलक्षतिकारि कहा जाता है।

(५)**रूपहानि :** यदि विशेष में जाति मान ले तो विशेष के स्वरूप की हानि होगी। **'विशेषेषु यदि सामान्यं स्वीक्रियते, तदा विशेषस्य रूपहानिः।'** [1205] जिसे जाति मानने से उस पदार्थ के स्वरूप की हानि हो जाती हो तो वह धर्म जाति नहीं बन सकता। इसलिए यदि विशेष पदार्थ में जाति मानेंगे, तो वह स्वतः व्यावृत्त नहीं हो सकेगा। परन्तु जाति के द्वारा व्यावृत्त होगा। उससे विशेष के "स्वतः व्यावर्तक" स्वरूप की हानि हो जायेगी। इसलिए विशेष पदार्थ में जाति नहीं मानी जाती है।

(६)**असम्बन्ध:** यदि समवाय में जाति मानेंगे तो सम्बन्ध का अभाव मानना पड़ेगा।[1206] सत्ता अन्य पदार्थों में समवाय सम्बन्ध से रहती है। तो सत्ता किस सम्बन्ध से समवाय में रहेगी?

1201 एकमनेकवर्ति सामान्यम्। आकाशे व्यक्तेरभेदान्न जातित्वम्। त. र. दी., पृ. ४२१

1202 पृथिवीत्वे जातौ यदि भूमित्वमुच्यते, तदा तुल्यत्वम्। वही, पृ. ४२१

1203 परमाणुषु जातित्वेऽङ्गीकृते पार्थिवाप्यतैजसवायवीयत्वयोगात्सङ्करः। वही, पृ. ४२१

1204 सामान्ये यदि सामान्यमङ्गीक्रियते, तदा मूलक्षितिकारिणी अनवस्थितिः। वही, पृ. ४२१

1205 वही, पृ. ४२२

1206 यदि समवाये जातित्वमङ्गीक्रियते, तदा सम्बन्धाभावः। केन हि सम्बन्धेन तत्र सत्ता संबध्यते। समवायान्तराभावादिति। त. र. दी., पृ. ४२२

क्योंकि दूसरे समवाय का अभाव है। समवाय तो एक ही है। इसलिए दूसरे समवाय का अभाव होने से अर्थात् समवाय एक ही होने से सम्बन्धाभाव के कारण समवाय में जाति स्वीकार नहीं की जा सकती है।

कुछ आचार्यों ने तीन प्रकार के सामान्य स्वीकार किये हैं –

- महासामान्य
- सत्तासामान्य
- सामान्यविशेष

महासामान्य छः पदार्थों में रहता है। इन छः पदार्थों में ही पदार्थत्व जाति रहती है।[1207] सत्तासामान्य द्रव्य, गुण और कर्म इन तीन पदार्थों में 'सत् सत्' बुद्धि उत्पन्न करता है।[1208] द्रव्यत्व आदि सामान्यविशेष सामान्य हैं।[1209]

कुछ आचार्य कहते हैं कि सत्ता, 'द्रव्य, गुण और कर्म' इन तीन पदार्थों में 'सत्, सत्' का ज्ञान कराती है इसलिए वह सत्तारूप महासामान्य है। द्रव्यत्वादि सामान्यरूप है। पृथ्वीत्वादि सामान्यविशेष रूप हैं। द्रव्य, गुण और कर्म से सत्ता आदि के लक्षण भिन्न होने से सत्ता आदि द्रव्यादि से भिन्न पदार्थ हैं। सत्ता आदि स्वतन्त्र पदार्थ के रूप में सिद्ध होते हैं।

- **षड्दर्शनसमुच्चय राजशेखर कृत –** इसमें वैशेषिक-दर्शन को पाशुपत दर्शन कहा गया है।[1210] राजशेखर भी सामान्य के दो भेद बतलाते हैं –

तत्र परं सत्ताख्यं द्रव्यत्वाद्यपरमथ विशेषस्तु

निश्चयतो नित्यद्रव्यवृत्तिरन्त्यो विनिर्दिष्टः ॥[1211]

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** सामान्य के विषय में चिरन्तनाचार्य कहते हैं कि सामान्य दो प्रकार का हैं – पर सामान्य और अपर सामान्य। द्रव्य, गुण पर्याय में जो सत्व है, वह सत्ता ही पर सामान्य है। द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्व अपर सामान्य हैं। कहा गया है कि –

1207 महासामान्यं षट्स्वपि पदार्थेषु पदार्थत्वबुद्धिकारि। वही, पृ. ४२२

1208 सत्तासामान्यं त्रिपदार्थसद्बुद्धिविधायि। वही, पृ. ४२२

1209 सामान्यविशेषसामान्यं तु द्रव्यत्वादि। वही, पृ. ४२२

1210 अथ वैशेषिकं ब्रूमः, पाशुपतान्यनामकम्। त. र. दी., पृ. ३१२

1211 षड्दर्शनसमुच्चय, पृ.३१२

सामान्यं द्विविधं परमपरं च। तत्र परं सत्ता द्रव्य गुण कर्मसु 'सत्-सत्' इत्यनुवृत्तिप्रत्ययकारणत्वात् सामान्यमेव। यत उक्तम् – "सदिति यतो द्रव्य गुण कर्मसु सा सत्ता। तथाऽपरं द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादि। तत्र द्रव्यत्वं द्रव्यष्वेव। गुणत्वं गुणेष्वेव। कर्मत्वं कर्मस्वेव।[1212]

➢ **षड्दर्शनपरिक्रम -** षड्दर्शनपरिक्रम के अनुसार भी सामान्य के दो ही भेद हैं –

१. पर सामान्य

२. अपर सामान्य

सामान्यं भवति द्वेधा परं चैवाऽपरं तथा।[1213]

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में विशेष निरूपण

विशेष का अर्थ विश्लेषक अर्थात् भेदक धर्म है। सभी नित्य धर्मों में एक भेदक धर्म माना गया है, जिसके कारण उनमें भेद की प्रतीति हुआ करती है, वही विशेष नामक पदार्थ है। विशेष व्यक्ति की पृथकता को दर्शाता है। सामान्य जहाँ समष्टिगत होता है, वहीं विशेष व्यष्टिगत होता है।

सामान्यतया एक जाति के दो द्रव्यों में भेद कर पाना अत्यन्त कठिन होता है। प्रत्येक निरवयव नित्य द्रव्य विशेष के कारण ही एक दूसरे से भिन्न होता है। इसलिये इस विशेष की सत्ता मानी जाती है। इस सन्दर्भ में एक प्रश्न उत्पन्न होता है कि विशेष पदार्थ को स्वीकार करने की क्यों आवश्यकता पड़ी? इसके उत्तर में वैशेषिकों का कहना है कि नित्य द्रव्यों की परस्पर भिन्नता सिद्ध करने के लिये इसकी आवश्यकता पड़ी। वैशेषिक का प्रत्येक तत्त्व अन्य तत्वों से किसी न किसी रूप में भिन्न अवश्य है। यह भिन्नता किसी कारण पर आश्रित होनी चाहिए। सारे अनित्य द्रव्यों की पारस्परिक भिन्नता उनके अवयवों, गुणों तथा कर्म आदि की भिन्नता के कारण है। अतः अनित्य द्रव्यों की पारस्परिक भिन्नता के लिए विशेष की कोई आवश्यकता नही है। परन्तु नित्य द्रव्यों विशेषतः परमाणुओं में पारस्परिक भिन्नता का निर्धारण किसी बाह्य आधार पर सम्भव नही है। इसलिए इन नित्य द्रव्यों में एक-एक विशेष की सत्ता मानी जाती है।

डा. राधाकृष्णन के शब्दों में द्रव्यों को एक समान होना चाहिए क्योंकि वे सभी द्रव्य हैं। उन्हें एक दूसरे से भिन्न भी होना चाहिए क्योंकि पृथक्-पृथक् द्रव्य हैं। जब हम किसी गुण को अनेक पदार्थों में निहित पाते हैं तो उसे हम सामान्य कहते हैं, किन्तु जब हम उस गुण को इन पदार्थों से अन्य पदार्थों

[1212] वही, पृ. ३६४

[1213] षड्दर्शनपरिक्रम, पृ. ३९५

को पृथक् करने वाला पाते हैं तो हम उसे विशेष कहते हैं।[1214] यह विशेष नित्य द्रव्य की वह विशिष्टता है जिसके द्वारा वह अन्य नित्य द्रव्यों से पृथक् पहचाना जाता है।

- **षड्दर्शनसमुच्चय –** जैनाचार्य हरिभद्रसूरि के अनुसार विशेष नामक पदार्थ निश्चित रूप में नित्य द्रव्यों में रहने वाला और अन्त्य अर्थात् प्रत्येक तत्त्व का सबसे अन्त में व्यावर्तक कहा गया है।[1215] **"विशेषस्तु निश्चयतो नित्यद्रव्यवृत्तिरन्त्यः।**[1216]
- **पदार्थधर्मसङ्ग्रह –** वैशेषिक-दर्शन का पाँचवाँ पदार्थ विशेष है जो इस दर्शन में एक विशेष अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। जागतिक पदार्थों में भेद, उनके अवयव संस्थान के भेद से, उनके गुण-भेद से और कर्म-भेद से स्पष्ट प्रतीत होता है, किन्तु जिन नित्य द्रव्यों में किसी प्रकार भेद करना सम्भव नही हो, उन द्रव्यों में भेद करने के लिए 'विशेष' नामक पदार्थ की कल्पना की गई है। यह सामान्य के ठीक विपरीत है। यह पदार्थ इस दर्शन की मौलिक कल्पना है। अतः इसी आधार पर इस सम्प्रदाय का नाम वैशेषिक पड़ा है।[1217]

  पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार के अनुसार नित्य द्रव्यों में रहने वाले ही अन्त्य विशेष हैं तथा वे अत्यन्त व्यावृत्तिबुद्धि का हेतु होने से केवल विशेष ही होते हैं – **"नित्यद्रव्यवृत्तयो ह्यन्त्या विशेषाः। ते च खल्वत्यन्तव्यावृत्तिहेतुत्वाद्विशेषा एव।"**[1218]

  विशेष के स्वरूप को और भी स्पष्ट करते हुए प्रशस्तपाद कहते हैं कि अन्त में रहने वाले ही अन्त्य कहे जाते हैं तथा अपने आश्रयद्रव्य को अन्य सभी वस्तुओं से पृथक् करने के कारण ये विशेष कहलाते हैं।[1219]

  पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार विशेष की सिद्धि करते हुए कहते हैं कि सभी प्रकार के परमाणु एवं आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन ये द्रव्य उत्पत्ति व विनाश से रहित हैं, अतः इन सबमें विशेष की सत्ता माननी ही पड़ती है क्योंकि इनमें से प्रत्येक को अपने सजातीयों और

1214 भारतीय दर्शन, पृ. १८०

1215 ष. द. स., पृ. ५४

1216 वही, पृ. ४२०

1217 The term `Vishesha' yields the adjectival form `Vaisheshika', after which Kannada's system became known, since the inclusion of individuators constituted a unique feature of the school –Individuators, Potter, E,P,Vol.II,p.142

1218 प. ध. सं., पृ.५

1219 अन्तेषु भव अन्त्याः स्वाश्रयविशेषकत्वाद्विशेषाः। - वही, पृ.२

विजातीयों से भिन्न रूप में समझाने वाला या अत्यन्त व्यावृत्ति बुद्धि का कोई दूसरा कारण नही है।[1220]

इस युक्ति में दिये गये हेतु तथा साध्य की व्याप्ति सिद्धि के लिए प्रशस्तपाद यह दृष्टान्त भी देते हैं कि जिस प्रकार हम साधारण जनों को 'गो' में 'अश्व' से कुछ सादृश्य के रहते हुए भी विशेष आकृति, विशेष गुण, विशेष प्रकार की क्रिया एवं अवयवों के विशेष प्रकार के संयोगों के कारण यह व्यावृत्ति प्रतीति होती है कि 'यह गौ है, अश्व नही, क्योंकि विशेष प्रकार का शुक्ल है' 'यह विशेष प्रकार से दौड़ता है' अथवा 'इसका कद बहुत बड़ा है ' आदि।[1221]

हम साधारण जनों से उत्कृष्ट योगियों को अपने अलौकिक योग-बल से नित्य परमाणुओं में समान आकृति, गुण तथा क्रिया होने पर भी 'यह परमाणु उस परमाणु से भिन्न है' इस प्रकार के व्यावृत्ति की प्रतीति जिस कारण से होती है, वही विशेष है तथा विभिन्न कालों अथवा देशों में रहने वाले परमाणुओं में भी 'यह वही है' इस प्रकार की प्रत्यभिज्ञा योगियों को जिन हेतुओं से होती है, वे अन्त्यों में रहने वाले विशेष ही हैं।[1222]

पूर्वपक्षियों की शङ्का उठाते हुए प्रशस्तपाद कहते हैं कि योग से उत्पन्न विशेष प्रकार के धर्म से ही योगियों को व्यावृत्ति की उक्त प्रतीति और प्रत्यभिज्ञा की उत्पत्ति हो सकती है , अतः विशेष को पृथक् पदार्थ मानने की क्या आवश्यकता है ? तात्पर्य यह है कि योगजधर्म के सामर्थ्य से ही जैसे योगियों को अतीन्द्रिय पदार्थों का दर्शन होता है, वैसे ही विशेष पदार्थ के बिना ज्ञानभेद तथा प्रत्यभिज्ञा भी हो जाएगी, उसके लिए विशेष नामक अतिरिक्त पदार्थ क्यों माना जाए ? **"यदि पुनरन्त्यविशेषमन्तरेण योगिनां योगजाद् धर्माद् प्रत्ययव्यावृत्तिः प्रत्यभिज्ञानं च स्यात्, ततः किं स्यात् ?"**[1223]

शङ्का का समाधान करते हुए प्रशस्तपाद कहते हैं कि 'ऐसा सम्भव नही है',क्योंकि जिस प्रकार यदि केवल योगज-धर्म के सामर्थ्य से श्वेतगुणरहित द्रव्य में 'यह श्वेत है' ऐसा ज्ञान होवे तथा अत्यन्त अदृष्ट पदार्थ में प्रत्यभिज्ञा हो तो वह मिथ्या ज्ञान ही कहलाएगा, उसी प्रकार विशेष के बिना केवल योगज धर्म की सामर्थ्य से ज्ञान-व्यावृत्ति तथा प्रत्यभिज्ञा भी सम्भव नही है अर्थात् योगियों को योगज धर्म

[1220] वही, पृ.२८४

[1221] प. ध. सं., पृ.२८४

[1222] वही, पृ.२८४

[1223] वही, पृ.२८७

की सामर्थ्य से अतीन्द्रिय पदार्थों का दर्शन हो सकता है, किन्तु बिना निमित्त के नही होता, अतः यह निमित्त विशेष पदार्थ ही है, यह सिद्ध हो जाता है।[1224]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार की स्पष्ट उक्ति है कि विशेष पदार्थ विनाश एवं आरम्भ से रहित नित्य द्रव्यों परमाणु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा एवं मन में से प्रत्येक में एक-एक रहता है तथा उनमें अत्यन्त व्यावृत्तिप्रतीति का हेतु है।[1225] यहाँ यह प्रश्न उठता है कि परस्पर समान जाति वाले परमाणुओं में भेद स्थापित करने के लिए तो विशेष जैसे व्यावर्तक पदार्थ की आवश्यकता स्पष्ट है, किन्तु आकाश, काल, दिक्, आत्मा आदि नित्य द्रव्यों में परस्पर भेदसिद्धि के लिए विशेष की सत्ता क्यों मानी जाय, जबकि ये द्रव्य तो अपने पृथक्-पृथक् गुणों एवं कार्यों के द्वारा ही एक-दूसरे से व्यावृत्त हो जाते हैं। अतः सभी नित्य द्रव्यों में परस्पर व्यावृत्ति के लिए विशेष को हेतु मानना कथमपि युक्तिपूर्ण प्रतीत नही होता। स्वयं पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार ने स्वीकार किया है कि नित्य परमाणुओं, मुक्त आत्माओं एवं अणुरूप अनन्त मनों में समान गुण एवं कार्य होने से भेदप्रतीति के लिए विशेष को मानना अनिवार्य है।[1226]

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में प्रशस्तपाद ने मानते हैं कि प्रत्येक नित्य द्रव्य में पृथक्-पृथक् एक विशेष रहता है - **प्रतिद्रव्यमेकैकशो वर्त्तमाना।**[1227] अतः इसी से सिद्ध हो जाता है कि विशेष अनेक हैं। अन्यत्र पदार्थोद्देश-प्रसङ्ग के अवसर पर उन्होंने विशेष के लिए बहुवचन का प्रयोग किया है- **“नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः।”**[1228] किरणावलीकार के अनुसार बहुवचन प्रयोग से भी विशेषों का आनत्य ही विवक्षित है।[1229]

अन्नम्भट्ट ने भी स्पष्ट कहा है कि प्रत्येक नित्य द्रव्य में पृथक्-पृथक् पाए जाने से विशेष तो अनन्त ही हैं।[1230]

1224 वही, पृ.२८७

1225 प. ध. सं., पृ.२८४

1226 वही, पृ.२८४

1227 वही, पृ.२८४

1228 वही, पृ.५

1229 ‘विशेषा’ इति बहुवचनेनानन्त्यं विवक्षितम्। - किरणा. पृ.२४

1230 नित्यद्रव्यवृत्तयो विशेषास्त्वनन्ता एव। - त.सं. पृ.६

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह –** विशेष द्रव्याश्रित होता है।[1231] विशेष नामक पदार्थ नित्य द्रव्यों के परमाणु में भेद दिखलाता है।[1232] **विशेषा इति ज्ञेयः द्रव्यमेव समाश्रिताः।**[1233]

विशेष नामक पदार्थ वैशेषिक-दर्शन की मौलिक कल्पना है। नित्य द्रव्यों में रहने वाला अन्तिम धर्म विशेष कहलाता है। नित्य द्रव्य चार प्रकार के हैं। परमाणु, मुक्तात्मा और मुक्तमन ये अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा व्यक्त नहीं होने के कारण विशेष हैं।

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** वैशेषिक-दर्शन के अनुसार विशेष और समवाय में आधार-आधेय सम्बन्ध है। समवाय आधेय है, विशेष आधार है। आधार प्रथम आता है, आधेय बाद में आता है। अतः समवाय के आधार के रूप में अवस्थित विशेष नामक पंचम पदार्थ है। **विशेषो नामान्योन्याभावविरोधिसामान्यरहितः समवेतः।** अर्थात् जो समवाय-सम्बन्ध से अवस्थित हो तथा अन्योन्याभाव का विरोध करने वाले सामान्य से रहित हो वह विशेष है।[1234] विशेष के इस लक्षण में अन्योन्याभाव एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ है कि जब एक दूसरे में एक दूसरे का अभाव होता है, घट और पट का पारस्परिक भेद अन्योन्याभाव है। परमाणुओं में जो आपस में भेद है वह भी अन्योन्याभाव है। अन्योन्याभाव का विरोध करने वाले सामान्य इसमें नहीं रहते हैं क्योंकि सामान्य से रहित होने से द्रव्य, गुण, कर्म से इसका पार्थक्य ज्ञात होता है।[1235]

  विशेष के लक्षण में अन्योन्याभाव का विरोध कहने से सामान्य की व्यावृत्ति होती है, वैशेषिक-दर्शन में सामान्य का सामान्य नहीं होता है क्योंकि सामान्य में सामान्य मानने से अनवस्था-दोष होता है।[1236] अभिप्राय यह है कि विशेषों में एक दूसरे के साथ अन्योन्याभाव रहता है, कोई विशेष समान नहीं होता कि एक जाति में उन्हें रख सकें। प्रत्येक विशेष, विशेष होता है। यदि विशेषों की जाति होने लगे, तो विशेषता उनसे छिन जायेगी तथा समानता होने लगेगी। सभी विशेष अन्योन्याभाव की प्रतीति कराते हैं। इसमें सामान्य लेने से उनके इस स्वभाव की हानि होगी, इसलिए विशेषों में सामान्य का अभाव इसी से सिद्ध होता है कि इनमें सामान्य मानने से अन्योन्याभाव की प्रतीति नहीं होगी। अतः विशेष अन्योन्याभाव का विरोध होने के

1231 विशेषा इति ज्ञेया द्रव्यमेव समाश्रिताः। स. सि. सं., पृ. २२

1232 परस्परविवेकोऽत्र द्रव्याणां यैस्तु गम्यते। वही, पृ. २२

1233 वही, पृ. ३५०

1234 वही, पृ. ३५०

1235 प. ध. सं., पृ. ३५१

1236 वही, पृ. ३५१

कारण सामान्य से रहित होता है।[1237] विशेष अनन्त प्रकार के हैं।**विशेषाणामनन्तत्वात् समवायस्य चैकत्वाद् विभागो न सम्भवति।**[1238]

- **सर्वदर्शनकौमुदी –** नित्य होते हुए, नित्य आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन के परमाणुओं में विद्यमान होने पर पृथिवी के परमाणु जल के परमाणुओं से और जल के परमाणुओं से पृथिवी के परमाणु क्रमपूर्वक सभी परमाणुओं में भेद को सिद्ध करने वाला विशेष पदार्थ है।[1239] **नित्यत्वेसति नित्येष्वाकाशकालदिगात्ममनःपरमाणुषु विद्यमानत्वे सति पार्थिवपरमाणून् जलीयादिपरमाणुभ्यो जलीयपरमाणूश्च पार्थिवादिपरमाणुभ्यः इत्थं क्रमेण सकलपरमाणून् परस्परं भेदयति स एव विशेषपदार्थः। क्षित्यप्तेजोवायुष्वेव चतुर्षु द्रव्येषु परमाणुः स्वीक्रियते। स एव परमाणुः क्षित्यादीनां चतुर्णां सूक्ष्मतमांशो नित्योऽन्यानववश्च। ईश्वरयोगिनामेव प्रत्यक्षगम्यो नेतरेषाम्।**
- पृथिवी, जल, तेज, वायु के परमाणु स्वीकार किए जाते हैं। यहाँ परमाणु का लक्षण दिया गया है -

जालान्तरगते भानौ यत्सूक्ष्मं दृश्यते रजः।
प्रथमं तत्प्रमाणं तु त्र्यसरेणुः प्रकीर्तितः ॥[1240]

जालादिच्छिद्रमार्गेषु निपतिते सति सूर्यरश्मौ तत्र परिदृश्यमानाः सूक्ष्मसूक्ष्म-कणास्त्रयसरेणवस्तेष्वेकैकस्य षष्ठभागकरणेन तत्तद्भागेष्वेकैकभागः परमाण्वाख्ययाभिहितः इति।[1241] **इन्हीं चार के परमाणुओं में विशेष प्रत्येक द्रव्य के परमाणु दूसरे द्रव्य के परमाणुओं से भेद प्रदर्शित करता है।**[1242]

- **सर्वमतसङ्ग्रह –** यहाँ विशेष नित्य द्रव्यों में समवेत होकर रहने वाला नित्य पदार्थ है, जो अत्यन्त व्यावृत्तिबुद्धि का हेतु है।[1243] विशेष केवल भेद-बुद्धि का प्रकाशक है, अतः सामान्य से भिन्न है, क्योंकि सामान्य परापर भेद से कभी तो अनुगत प्रतीति का कारण है तो कभी व्यावृत्त-प्रतीति का। किन्तु विशेष तो सर्वदा व्यावर्तक है। ये केवल नित्य द्रव्यों को एक दूसरे

1237 प. ध. सं., पृ.३५१

1238 वही, पृ. ३५९

1239 स. द. कौ.,पृ. ७६

1240 वही, पृ.७७

1241 वही, पृ.७६

1242 वही, पृ.७७

1243 नित्याश्रया अत्यन्तव्यावृत्तबुद्धिहेतवोऽनन्ता अन्त्या विशेषाः। स. म. सं., पृ.२४

से पृथक् नहीं करते हैं, अपितु स्वयं को भी परस्पर भिन्न करने के कारण स्वतोव्यावर्तक हैं। ये नित्य द्रव्यों में रहने वाले चरम भेदक धर्म विशेष हैं। नित्य द्रव्य अनन्त होने से विशेष भी अनन्त हैं।[1244]

➢ **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** यहाँ पर विशेष का लक्षण न देकर उसकी आवश्यकता एवं महत्त्व के विषय में बतलाया गया है कि घटादि पदार्थों के अवयवों का भेद करने वाला विशेष है।[1245] अर्थात् घटादि के नित्य परमाणुओं का भेदक अर्थात् एक घड़े के नित्य परमाणु दूसरे घड़े के नित्य परमाणुओं से भिन्न हैं तथा उसी घड़े के परमाणु भी दूसरे परमाणु से भिन्न हैं। यह कार्य विशेष नामक पदार्थ करता है।

यहाँ पूर्वपक्षी प्रश्न उपस्थित करते हुए कहता है कि नित्य द्रव्यों का भेद कैसे होता है? क्योंकि उनके तो नित्य होने के कारण अवयव नहीं होते हैं तथा भेद की आवश्यकता क्यों है?[1246] उत्तर देते हुए श्रीपाद शास्त्री हसूरकर कहते हैं कि जलादि के परमाणु पृथिवी के परमाणु से भिन्न हैं अतः भेद को सिद्ध करने के लिए विशेष की आवश्यकता है। विशेष स्वतः सिद्ध हैं।[1247] जीवात्माओं में भेद सिद्धि के लिए भी विशेष की आवश्यकता है।[1248]

➢ **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** आचार्य सीताराम हेब्बार विशेष का लक्षण करते हुए कहते हैं कि **'अन्योन्याभावविरोधि सामान्यभिन्नसमवेत समवायसम्बन्धेन नित्यद्रव्येषु वर्तमानत्वं विशेषवत्त्वमिति'।**[1249]

यहाँ पर न्यायसिद्धान्तमुक्तावली की जाति बाधक वाली कारिका को भी उद्धृत किया गया है –

व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं संकरोऽथानवस्थितिः।

रूपहानिरसंबंधो जातिबाधकसंग्रहः ॥[1250]

1244 टी. ग. द्वा. सं. स. का स., पृ. ८३

1245 द्वा. द. सो., पृ. १२०

1246 वही, पृ.१२०

1247 द्वा. द. सो., पृ.१२१

1248 जीवात्मनां भेदसिध्यर्थं विशेषपदार्थोऽवश्यं कल्पनीयः। वही, पृ.१२१

1249 द्वा. द. स., पृ. २४

1250 न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, पृ. ५४

➢ **लघुवृत्ति –** लघुवृत्ति विशेष को अन्त्य विशेष तथा नित्य द्रव्य वृत्ति वाला कहा गया है।[1251] आचार्य मणिभद्र ने यहाँ पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार को उद्धृत कर विशेष की व्याख्या प्रस्तुत की है – **'अन्तेषु भवा अन्त्याः, स्वाश्रयविशेषकत्वाद्विशेषाः, विनाशारम्भरहितेषु नित्यद्रव्येष्वण्वाकाश-कालदिगात्ममनःसु प्रतिद्रव्यमेकैकशो वर्त्तमाना अत्यन्त व्यावृत्तिबुद्धिहेतवः, तथास्मदादीनां गवादिष्वश्वादिभ्यस्तुल्याकृतिक्रियाऽवयवोपचयापचय विशेषसंयोगनिमित्तासम्भवाद्, येभ्यो निमित्तेभ्यः प्रत्याधारं विलक्षणोऽयं विलक्षणोऽयमिति प्रत्ययव्यावृत्तिर्देशकालविप्रकर्षदृष्टे च परमाणौ स एवायमिति च प्रत्यभिज्ञानं च भवति, तेऽन्त्या विशेषा इति, अमी च विशेषा एव, न तु द्रव्यत्वादिवत्सामान्यविशेषोभयरूपा व्यावृत्तेरेव हेतुत्वादित्यर्थः।'**[1252]

इससे यह ज्ञात होता है कि लघुवृत्ति की रचना से पूर्व पदार्थधर्मसङ्ग्रह की रचना हो चुकी थी तथा प्रकाश में आ गयी थी जिससे आचार्य मणिभद्र ने विशेष को स्पष्ट करने के लिए उद्धृत किया है।

➢ **तर्करहस्यदीपिका -** जैनाचार्य गुणरत्नसूरि के अनुसार विशेष पदार्थ की कल्पना तात्त्विक दृष्टि से ही की गयी है, घट, पट, कट आदि के व्यवहार मात्र के लिए नहीं की गई है। विशेष पदार्थ नित्य द्रव्यों में रहने वाला तथा अन्त्य है। जिनका कभी उत्पाद और विनाश नहीं होता है। उन सदा उत्पाद विनाश रहित परमाणु आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन में यह विशेष पदार्थ रहता है।

संसार के आरम्भ और अन्त में परमाणु ही दिखाई देते हैं, इसलिए उसको अन्त कहा जाता है। तर्करहस्यदीपिका के अनुसार मुक्त आत्मा तथा मुक्तात्माओं के मन ने भी संसार का अन्त किया है, इसलिए वह अन्त कहा जाता है। अन्तिम वस्तुओं में रहने वाला अन्त्य कहा जाता है अर्थात् अन्तिम अवस्था में प्राप्त परमाणु आदि में विशेष पदार्थ दिखाई देते हैं। वह विशेष पदार्थ सभी परमाणु आदि नित्य द्रव्यों में रहता है। इसलिए विशेष के लक्षण में "नित्यद्रव्यवृत्ति" और 'अन्त्य' इन दो पदों का प्रयोग किया गया है।[1253] **नित्यद्रव्येषु विनाशारम्भरहितेष्वण्वाकाशकालदिगात्ममनःसु वृत्तिर्वर्तनं यस्य स नित्यद्रव्यवृत्तिः। तथा परमाणूनां जगद्विनाशारम्भकोटिभूतत्वात् मुक्तात्मनां मुक्तमनसां च संसारपर्यन्तरूपत्वादन्तत्वम्, अन्तेषु भवोऽन्त्यो विशेषो विनिर्दिष्टः प्रोक्तः।** अर्थात् प्रत्येक

1251 अन्त्यो विशेषो नित्यद्रव्यवृत्तिरिति, स. म. सं., पृ. ५५

1252 वही, पृ.५५

1253 त. र. दी., पृ. ४२२

नित्यद्रव्य में एक ही विशेष पदार्थ रहता है, अनन्त नहीं। जब एक विशेष से ही उस नित्य द्रव्य की अन्य पदार्थों से व्यावृत्ति हो जाती हो तो अनेक विशेष की कल्पना निरर्थक है। सभी नित्य द्रव्यों में एक-एक विशेष होने से कुल विशेष अनन्त हैं। सभी नित्य द्रव्यों के आश्रय में विशेष होने पर भी एकवचन का प्रयोग जाति की अपेक्षा से किया गया है। तात्पर्य यह है कि संसार का प्रलय होने के बाद तथा संसार के प्रारम्भ में सर्वत्र परमाणु-परमाणु ही दिखाई देते हैं , इसलिए उसको "अन्त" कहा जाता है। इस तरह से मुक्त जीवों के आत्मा तथा मुक्तजीवों के मन भी संसार का अन्त कर चुके होने से अन्त कहे जाते हैं। इन सब अन्तिम वस्तुओं में भी विशेष पदार्थ व्यावृत्ति बुद्धि कराता है इसलिए यह 'अन्त्य' कहा जाता है। इस अन्तिम अवस्था में मिलने वाले परमाणु आदि में विशेष पदार्थ का कार्य उनको पृथक्-पृथक् रखना है, क्योंकि वे सभी परमाणु आदि तुल्यगुण, तुल्यक्रिया तथा तुल्याकृति आदि वाले है, इसलिए उसमें अन्य निमित्तों से व्यावृत्ति बुद्धि नहीं हो सकती है। इस कारण से यह विशेष पदार्थ सभी परमाणु आदि नित्यद्रव्यों में रहता है। कहा गया है कि - **अन्तेषु भवा अन्त्याः, स्वाश्रयस्य विशेषकत्वात् विशेषाः, विनाशारम्भरहितेषु नित्यद्रव्येष्वण्वाकाशकालदिगात्ममनःसु प्रतिद्रव्यमेकशो वर्तमाना अत्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतवः।**

भाष्यकार प्रशस्तपाद ने कहा है कि ...."विशेष अन्तिम अवस्था में रहने के कारण अन्त्य हैं। अपने आश्रयभूत द्रव्य का भेदक होने से विशेष हैं। वह विनाश और आरम्भ रहित परमाणु, आकाश, काल, दिशा, आत्मा और मन इन नित्य द्रव्यों में प्रत्येक में एक-एक करके रहता है। तथा अत्यन्त व्यावृत्त बुद्धि कराने में कारण भूत होता है।[1254] यथा गाय आदि में अश्वादि से जाति, आकृति, गुण, क्रिया विशिष्ट अवयव, घड़े में घट आदि के संयोग से विलक्षण बुद्धि होती है कि ...... "वह गाय है, सफेद है, शीघ्रगति वाली है, पुष्ट-स्कन्ध वाली है, घट देखने में बड़ा है," इस प्रकार हम लोगों से विशिष्ट ज्ञान वाले योगियों की समान आकृति, समान गुण तथा समान क्रिया वाले नित्य परमाणुओं में, मुक्तात्माओं में तथा मुक्तात्माओं के मनों में, अन्य जाति आदि व्यावर्तक निमित्त से परमाणु आदि में "यह विलक्षण है, यह विलक्षण है " ऐसी विलक्षण व्यावृत्ति बुद्धि होती है। उसको अन्त्य विशेष कहा जाता है। तथा इस विशेष पदार्थ के कारण देश-काल से "वही यह परमाणु है।" ऐसा ज्ञान होता है। प्रशस्तपाद अन्य आचार्यों के मतों को उद्धृत करते हुए कहते हैं कि "कुछ व्याख्याकार विशेष के लक्षण में यह सूत्र देते हैं **'नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः'** नित्य द्रव्य में रहने वाला अन्त्य विशेष है। **'सभी वाक्य**

[1254] तर्करहस्यदीपिका पर उद्धृत, प. ध. सं., पृ. ४२३

साधारण होते हैं।' इस न्याय से नित्य द्रव्यों में ही जिनकी वृत्ति है, उसे विशेष कहा जाता है।" सूत्र में **'नित्यद्रव्यवृत्तयः'** को अन्त्यपद की व्याख्या मानकर इसका अर्थ किया गया है कि "नित्य द्रव्य उत्पत्ति और विनाश से परे रहते हुए होने से उनको "अन्त" कहा जाता है। उस अन्त में रहने वाला अर्थात् नित्य द्रव्य में रहने वाला विशेष पदार्थ भी अन्त्य कहा जाता है," ये विशेष अत्यन्त व्यावृत्तबुद्धि कराने में कारण होने से द्रव्यादि से विलक्षण है अतः स्वतन्त्र पदार्थ हैं।

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** सर्वसिद्धान्तप्रवेशक के अनुसार नित्य द्रव्यों में रहने वाला अन्तिम धर्म विशेष कहलाता है। नित्य द्रव्य चार प्रकार के हैं - परमाणु, मुक्तात्मा और मुक्तमन। ये अत्यन्त सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा व्यक्त नहीं होने से विशेष हैं। चिरन्तनाचार्य के अनुसार - **नित्यद्रव्यवृत्तयोऽन्त्या विशेषाः। नित्यद्रव्याणि च चतुर्विधाः परमाणवो मुक्तात्मानो मुक्तमनांसि च। ते चात्यन्तव्यावृत्तिबुद्धिहेतुत्वाद् विशेषा एव।**[1255]
- **षड्दर्शनपरिक्रम –** परमाणुओं में रहने वाला विशेष है। यह नित्यद्रव्यवृत्ति वाला है। षड्दर्शनपरिक्रम में कहा गया है कि **'परमाणुषु वर्तन्ते विशेषा नित्यवृत्तयः'।**[1256]
- **षड्दर्शनसमुच्चय –** इस ग्रन्थ में कहा गया है कि नित्य द्रव्य वृत्ति वाला विशेष है।[1257]

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में समवाय निरूपण

समवाय को वैशेषिकाचार्यों ने एक स्वतन्त्र पदार्थ माना है। यह दो वस्तुओं के मध्य वर्तमान एक प्रकार का अन्तरंग अथवा घनिष्ठ सम्बन्ध है। ये दो वस्तुएं ऐसी होती हैं, जिन्हें एक दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता है। यथा तन्तु एवं पट तथा कपाल एवं घट का सम्बन्ध है। धर्मेन्द्र नाथ शास्त्री के अनुसार यदि द्रव्य, गुण आदि प्रथम पाँच पदार्थ न्यायवैशेषिक रूप ढाँचे के लिए ईंटों के समान हैं तो समवाय पदार्थ उन ईंटों को जोड़ने वाले गारे की भाँति हैं।[1258]

1255 त.र. दी., पृ. ३६४

1256 षड्दर्शनपरिक्रम, पृ. ३९५

1257 निश्चयतो नित्यद्रव्यवृत्तिरन्त्यः। वही, पृ. ३१३

1258 If the first five categories substances quailty etc. Are the bricks of the Nyaya-vaisesika structure, the mortar to unite them is provided by the sixth category Samavaya. CIR, p. 375

- **षड्दर्शनसमुच्चय -** षड्दर्शनसमुच्चय के अनुसार अयुतसिद्धों में आधार और आधेय स्वरूप भावों के ज्ञान का कारणभूत जो सम्बन्ध है, वह समवाय कहलाता है।[1259] कहा गया है कि –

य इहायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतभावानाम्।

सम्बन्ध इह प्रत्ययहेतुः स हि भवति समवायः ॥[1260]

- **पदार्थधर्मसङ्ग्रह -** पदार्थधर्मसङ्ग्रह में प्रशस्तपाद ने अन्तिम पदार्थ के रूप में समवाय को स्वीकार किया है क्योंकि उन्होंने अभाव का वर्णन नहीं किया है।

प्रशस्तपाद के अनुसार एक आश्रय एवं दूसरा आश्रित, इस प्रकार के प्रत्यय के दो अयुतसिद्धों का जो सम्बन्ध 'यह आश्रित यहाँ आश्रय में है', इस प्रकार के प्रत्यय का कारण है, वही समवाय है। तात्पर्य यह है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और विशेष इन सभी पदार्थों में से जो दो पदार्थ अथवा वस्तुएँ कार्य-कारणभावापन्न हों अथवा स्वतन्त्र ही हों किन्तु अयुत्सिद्ध हों तथा आधार-आधेय रूप हों, उन दोनों में से एक आधेय का दूसरे आधार में 'यह यहाँ है', इस प्रकार का अनुभव जिससे हो, वही सम्बन्ध रूप पदार्थ समवाय है।[1261]

अयुतसिद्ध – अयुतसिद्ध उन दो वस्तुओं को कहा जाता है जिनमें एक सदा दूसरे पर आश्रित रहती है तथा जो एक-दूसरे से पृथक् नही की जा सकती।[1262]

नित्य – प्रतियोगी और अनुयोगी रूप सम्बन्धियों के अनित्य होने पर भी समवाय संयोग की तरह अनित्य नही वरन् नित्य है, क्योंकि सत्ता की तरह उसके भी कारण दिखाई नही देते हैं। अभिप्राय यह है कि जैसे किसी भी प्रमाण से कारणों की उपलब्धि न होने से सत्ता जाति में नित्यत्व का व्यवहार होता है उसी प्रकार समवाय में भी होता है।[1263]

वैशेषिक-दर्शन में समवाय केवल एक ही है, इसका कोई भेद नही है। कणाद कहते हैं कि समवाय की एकता सत्ता जाति की एकता से व्याख्यात है।[1264]

1259 ष. द. स., पृ. ५५

1260 ष. द. स., पृ. ५५

1261 प. ध. सं., पृ.२८९

1262 वै. द. प. नि. ,पृ.५४१

1263 प. ध. सं.,पृ.२९६

1264 वैशेषिक सूत्र, ७/२/२८

वैशेषिक-दर्शन में समवाय का प्रत्यक्ष सम्भव नही है, अतः उक्त शङ्का का निराकरण करने के लिए प्रशस्तपाद यह अनुमान देते हैं कि 'जिस प्रकार इस पात्र में दही है' यह प्रतीति दधि और पात्र में संयोग सम्बन्ध होने पर ही सम्भव होती है, उसी प्रकार 'इन तन्तुओं में पट है', 'इस द्रव्य में गुण और कर्म हैं', 'द्रव्य, गुण और कर्म में सत्ता है', 'द्रव्य में द्रव्यत्व है', 'गुण में गुणत्व है', 'कर्म में कर्मत्व है', 'नित्य द्रव्यों में विशेष है' इत्यादि प्रतीतियाँ होती हैं। अतः यह अनुमान होता है कि इन प्रतीति विषयों के आधार और आधेय में भी कोई सम्बन्ध अवश्य है, वही समवाय है।[1265]

वैशेषिक-दर्शन में समवाय को नित्य सम्बन्ध कहा गया है।[1266] सम्बन्ध की परिभाषा तर्कसङ्ग्रह की न्यायबोधिनी टीका में विशिष्ट प्रतीति का नियामक होना दी गई है।[1267]

प्रशस्तपाद ने किन्हीं पूर्वपक्षी विद्वानों की यह शङ्का समाहित की है कि अपने सभी अनुयोगियों में रहने वाला समवाय एक ही माना जाए तो द्रव्य, गुण, कर्म इन तीनों में से प्रत्येक का द्रव्यत्वादि सभी विशेषों के साथ एक ही समवाय सम्बन्ध होने से द्रव्यादि में भी 'यह गुण है' अथवा 'यह कर्म है' इस प्रकार के अनियमित व्यवहार होने लगेंगे।[1268] प्रशस्तपाद इसका समाधान करते हुए कहते हैं कि समवाय को एक मानने पर भी पदार्थों में परस्पर साङ्कर्य नही होगा, क्योंकि उस एक समवाय-सम्बन्ध से ही आधार-आधेय का नियम व्यवस्थित हो जाता है। अभिप्राय यह है कि यद्यपि द्रव्यादि सभी अनुयोगियों में एक ही समवाय स्वतन्त्र रूप से रहता है, फिर भी उसी से आधार और आधेय नियमित हो जाते हैं।[1269]

पूर्वपक्षी पुनः प्रश्न करता है कि समवाय के एकत्व का यह नियम क्यों है ? तो उत्तर होगा कि 'द्रव्यत्व द्रव्यों में ही है, गुणादि में नही, 'गुणत्व गुणों में ही है ,कर्मादि में नही एवं कर्मत्व कर्मों में ही है अन्य पदार्थों में नहीं। इस प्रकार का अवधारण प्रतीतियों के अन्वय एवं व्यतिरेक से ही हो जाता है। तात्पर्य यह है कि 'द्रव्यादि सभी अनुयोगियों में एक ही समवाय है।' इसका हेतु उन सभी में 'यह यहाँ है' इस एक प्रकार की प्रतीतियों की सत्ता अथवा अन्वय ही है तथा इसी अन्वय–प्रतीति से यह सिद्ध होता है कि समवाय अपने सभी आश्रयों में एक ही है। इसी प्रकार 'गुणादि में द्रव्यत्व है' इस प्रकार की प्रतीतियों

1265 प. ध. सं.,पृ.२८९

1266 वही,पृ.२९६

1267 सम्बन्धत्वं विशिष्टप्रतीतिनियामकत्वम्। - न्या.बो., त.सं. पृ.२८९

1268 वै. द. प. नि., पृ.५४५

1269 प. ध. सं., पृ.२०३

के अभाव से ही सिद्ध होता है कि द्रव्यत्वादि समवाय सम्बन्ध से अपने द्रव्यादि आश्रयों में ही रहते हैं, गुणादि में नहीं। यथा जिस भाँति कुण्ड और दधि दोनों में एक ही संयोग के रहते हुए भी आधार कुण्ड ही होता है, दधि नही एवं आधेय दधि ही होता है, कुण्ड नही। उसी प्रकार द्रव्यत्वादि समस्त समवेत वस्तुओं का समवय एक होने पर भी कथित संयोग की तरह अभिव्यक्त करने वाले तथा अभिव्यक्त होने वाले की विभिन्न शक्तियों के कारण सभी समवेत वस्तुओं का आधार-आधेय भाव निश्चित होता है।[1270]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार ने समवाय को संयोग से भिन्न सम्बन्ध सिद्ध करने के लिए चार हेतु दिए हैं –

१. उन समवायघटित प्रतीतियों की उपपत्ति संयोग से नही हो सकती, क्योंकि यहाँ विशेष्य तथा विशेषण रूप से प्रतीत होने वाले प्रतियोगी तथा अनुयोगी अयुतसिद्ध हैं।[1271] अभिप्राय यह है कि संयोग सम्बन्ध तो युतसिद्ध वस्तुओं में ही होता है, किन्तु समवाय अयुतसिद्धों में होता है।
२. अन्यतरकर्म अथवा उभयकर्म अथवा विभाग, इन तीनों में से कोई भी समवाय सम्बन्ध के कारण नही हो सकते, अतः यह संयोग से भिन्न है अर्थात् संयोग अपने प्रतियोगी और अनुयोगी दोनों में से एक के कर्म से उत्पन्न होता है अथवा उन दोनों के कर्म से अथवा संयोग से ही, किन्तु उक्त तन्तु एवं पट में समवाय सम्बन्ध के लिए इन तीनों में से किसी की भी अपेक्षा नही होती। यह तो अपने आश्रयीभूत पदार्थों के उत्पादक कारणों की सत्ता से स्थिति-लाभ करता है। अतः इस दृष्टि से भी समवाय संयोग से भिन्न है।[1272]
३. प्रो. शशिप्रभा कुमार के अनुसार समवाय का नाश विभाग से नहीं होता है क्योंकि यह नित्य है।[1273] जबकि संयोग का नाश तो सदा विभाग से ही देखा जाता है, अतः समवाय संयोग से भिन्न है।[1274]

[1270] वही, पृ.२९३-९४

[1271] न चासौ संयोगः सम्बन्धिनामयुतसिद्धत्वात्। - वही, पृ.२९१

[1272] प. ध. सं., पृ.२९१

[1273] वै. द. प. नि., पृ.५५०

[1274] प. ध. सं., पृ.२९१

४. समवाय सम्बन्ध सदा अधिकरण तथा आधेयरूप दो वस्तुओं में ही देखा जाता है इसलिए भी यह संयोग से भिन्न है क्योंकि संयोग तो दो स्वतन्त्र वस्तुओं में भी होता है। जैसे ऊपर उठी दो उँगलियों में, किन्तु समवाय सम्बन्ध सदा आधार-आधेयभूत दो वस्तुओं में ही होता है।[1275]

पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार प्रशस्तपाद समवाय को पृथक् पदार्थ मानते हुए कहते हैं कि समवाय पाँचों पदार्थों से स्वतन्त्र पदार्थ है क्योंकि जिस प्रकार सत्ता रूपी सामान्य अथवा द्रव्यत्वादिरूप सामान्य स्वसदृश प्रतीतियों के उत्पादक होने से द्रव्यादि आश्रयों से भिन्न है, उसी प्रकार समवाय के अनुयोगी द्रव्य, गुण आदि पाँचों पदार्थों में 'इह' प्रतीतियाँ होती हैं। अतः समवाय भी द्रव्यादि पाँचों पदार्थों से भिन्न स्वतन्त्र पदार्थ है।[1276]

प्रो. कुमार इस विषय को स्पष्ट करते हुए कहती हैं कि समवाय द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य एवं विशेष पदार्थों से भिन्न है क्योंकि यह द्रव्य एवं अन्य पदार्थों का सम्बन्ध रूप है तथा यह अभाव भी नही है। इसलिए यही मानना पड़ता है कि यह एक पृथक् पदार्थ है।[1277]

प्रशस्तपाद के अनुसार समवाय अपने आश्रयों में न तो संयोग सम्बन्ध से रहता है और न ही समवाय से, अपितु स्वरूप-सम्बन्ध से रहता है।[1278] यथा – द्रव्य, गुण, कर्म में सत्ता जाति के रहने के लिए किसी दूसरे सत्ता सम्बन्ध की आवश्यकता नही होती है, उसी प्रकार एक ही स्वरूप के एवं सम्बन्धाभिन्न समवाय की सत्ता के लिए किसी दूसरे सम्बन्ध की आवश्यकता नहीं होती है, वह तो सम्बन्ध होने के कारण स्वात्मवृत्ति भाव से ही उनमें रहता है।[1279] समवायित्व पाँचों पदार्थों का साधर्म्य है, यहाँ समवायित्व का तात्पर्य समवाय सम्बन्ध से कहीं रहना है,[1280] क्योंकि द्रव्य 'कार्य' अथवा अवयवी के रूप में अपने अवयवों में समवेत होकर ही रहता है।

[1275] वही,पृ.२९१

[1276] वही, पृ.२९२

[1277] वै. द. प. नि. ,पृ.५५५

[1278] सामान्यादीनां त्रयाणां स्वात्मसत्त्वम्। प. ध. सं., पृ.६

[1279] वही,पृ.२९६

[1280] द्रव्यादीनां पञ्चानां समवायित्वम्। वही, पृ.७

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार समवाय को अपने अनुयोगियों में रहने के लिए किसी अन्य वृत्ति की आवश्यकता नहीं है, यह स्वतः ही उनमें अवस्थित रहता है, इसलिए इसे स्वतन्त्र कहा गया है।[1281] यह नित्यद्रव्यों के आश्रित रहता है। [1282]

वैशेषिक-दर्शन के अनुसार समवाय आधेय है, विशेष आधार है। आधार पहले आता है, आधेय बाद में। अतः आधार विशेष का वर्णन के पश्चात् आधेय रूप समवाय निम्नलिखित है –

समवाय से रहित सम्बन्ध को समवाय कहते हैं।[1283] अर्थात् जिस सम्बन्ध का समवाय नहीं हो वही समवाय है। तात्पर्य यह है कि जब दो पदार्थों में नित्य सम्बन्ध हो, यथा – पृथिवी और गन्ध में समवाय है। अर्थात् अब इस समवाय में कोई दूसरा समवाय नहीं होगा।[1284] समवाय एक ही प्रकार का है इसलिए इसका विभाग नहीं होता है।[1285]

- **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह** – सर्वदर्शनसङ्ग्रहानुसार द्रव्यों का गुणों के साथ समवाय सम्बन्ध होता है।[1286] अयुत सिद्धान्त के आन्तरिक एवं आधारभूत सम्बन्ध अर्थात् कार्य-कारण सम्बन्ध को समवाय कहते हैं।
- **सर्वदर्शनकौमुदी** - दामोदर शास्त्री के अनुसार नित्य सम्बन्ध समवाय है अर्थात् **'नित्यसम्बन्धत्वं समवायत्वम्'।**[1287] यह गुण-गुणी, क्रिया-क्रियावान् नित्य द्रव्यों के परमाणु-विशेष में रहने वाला सम्बन्ध ही समवाय कहलाता है।[1288]

  गुण-गुणिनो, क्रिया-क्रियावतोः नित्यद्रव्यपरमाणु विशेषयोश्च यः सम्बन्धः स समवाय सम्बन्धः। तथा सति घटेन सह कपालस्य, कपालेन सह कपालिकायाः, वस्त्रेण सह सूत्राणां, जात्या सह व्यक्तेः, गुणेन सह गुणपदार्थस्य क्रियया सह क्रियाविशिष्टपदार्थस्य विशेषपदार्थेन सह परमाणूनां च परस्परं य सम्बन्धः स एव समवाय सम्बन्धः।[1289]

1281 यद्यप्येकः समवायः सर्वत्र स्वतन्त्रः। वही, पृ.२९५

1282 आश्रितत्वञ्चान्यत्र नित्यद्रव्येभ्यः। वही, पृ.८

1283 समवायास्तु समवायरहितः सम्बन्धः। वही, पृ.३५०

1284 प. ध. सं., पृ.३५२

1285 समवायस्य चैकत्वाद् विभागो न सम्भवति।- वही, पृ.३५९

1286 सम्बन्धस्समवायस्स्यात् द्रव्याणान्तु गुणादिभिः।- स. सि. सं., पृ. २२

1287 नित्यसम्बन्धत्वं समवायत्वम्।- स. द. कौ.,पृ, ७९

1288 वही, पृ. ७९

1289 वही, पृ. ७९

अभिप्राय यह है कि घट का कपाल के साथ, जाति का व्यक्ति के साथ, गुणपदार्थ का गुण के साथ, क्रिया के साथ क्रियावान् पदार्थ का एवं विशेष पदार्थ के साथ परमाणु का परस्पर जो सम्बन्ध है वह समवाय है।[1290]

- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** गुण-गुणी, जाति-व्यक्ति, क्रिया-क्रियावान् में जो सम्बन्ध है वह समवाय है।[1291] **गुणगुणिनोः, जातिव्यक्त्योः क्रियाक्रियावतोः यः सम्बन्धः सः समवाय इति।**
- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** द्वादशदर्शनसोपानावलि में समवाय को सम्बन्ध मानकर व्याख्या की गयी है। गुण एवं गुणी, क्रिया एवं क्रियावान् में जो सम्बन्ध है, वह समवाय है[1292] क्योंकि संयोग तथा तादात्म्य सम्बन्ध वैशेषिक-दर्शन में द्रव्य का ही होता है।[1293] समवाय एक ही है।[1294]
- द्वादशदर्शनसोपानावलिकार समवाय को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि "**गुणवान् क्रियावान् घट इत्यादिविशिष्टबुद्धिर्विशेषणविशेष्यसम्बन्धविषया विशिष्टबुद्धित्वात् दण्डी पुरुष इतिविशिष्टबुद्धिवत्। यथा हि दण्डी पुरुष इतिविशिष्टबुद्धौ दण्डः पुरुषस्तयोः संयोगाख्यः सम्बन्धः इति त्रयो विषयाः, एवमेव गुणवान् घट इत्यत्र त्रयो विषया अवश्यं वक्तव्याः। तत्र गुणो घटश्चेति द्वौ प्रत्यक्षौ। सम्बन्धश्च संयोगरूपो न भवति। स च युतसिद्धयोरेव। इमौ गुणघटावयुतसिद्धौ। तस्मादनयोःसंयोगः सम्बन्धो न भवितुमर्हति। तादात्म्यं च न सम्बन्धः। स्वरूपसम्बन्धस्तु विशेषणरूपः। विशेषानां च नानात्वात् सोऽपि न भवितुमर्हति। यश्च तयोः सम्बन्धः स एव समवायो नाम।**[1295]

  ननु समवायो नाना वैको वा। नानात्वे गौरवं। एकत्वे च वायावपि रूपवत्ताप्रतीतिः प्रमा भवेत्। सत्यं। एक एव समवायः। न च वायौ रूपवत्ताप्रतीतिः प्रमा? तत्र रूपसमवायसत्त्वेऽपि रूपाभावात्। न च सम्बन्धसत्ता सम्बन्धिसत्ताव्याप्येति नियमः।[1296]
- **लघुवृत्ति –** लघुवृत्ति के अनुसार अयुतसिद्धों में आधार-आधेय भूत ज्ञान का हेतु समवाय है। समवाय की एक अन्य परिभाषा भी प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि 'प्रत्ययस्यासाधारणं कारणं

[1290] वही, पृ. ७९

[1291] द्वा. द. स., पृ. २५

[1292] द्वा. द. सो., पृ. १२१

[1293] द्रव्ययोरेव संयोगः। - प. ध. सं.,पृ. १०४

[1294] एक एव समवायः। - द्वा. द. सो., पृ. १२१

[1295] द्वा. द. सो., पृ. १२१

[1296] वही, पृ. १२१

समवायः' अर्थात् ज्ञान में जो असाधारण कारण है वह समवाय है।[1297] समवाय के लक्षण में प्रयुक्त अयुतसिद्ध एक पारिभाषिक शब्द है जिसको तर्कभाषाकार ने स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिन दोनों में से एक नष्ट न होता हुआ दूसरे पर आश्रित रहता है वह अयुतसिद्ध है – **तावेवायुतसिद्धौ द्वौ विज्ञातव्यौ ययोर्द्वयोः।**

अनश्यदेकमपराश्रितमेवावतिष्ठते ॥[1298]

- **षड्दर्शनसमुच्चय राजशेखरकृत –** राजशेखर अयुतसिद्ध को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि – **य इहायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतभावानाम्।**

  सम्बन्ध इहप्रत्ययहेतुः स च भवति समवायः ॥[1299]

- **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक –** सर्वसिद्धान्तप्रवेशक के अनुसार अयुत सिद्धान्त के आन्तरिक एवं आधारभूत सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। सर्वसिद्धान्तकार के शब्दों में – **अयुतसिद्धानामाधार्याधारभूतानां यः सम्बन्ध इहेति प्रत्ययहेतुः स समवायः।**[1300]

- **तर्करहस्यदीपिका –** षड्दर्शनसमुच्चय के व्याख्याकार जैनाचार्य गुणरत्न सूरि समवाय के स्वरूप का निरूपण करते हुए कहते हैं कि अयुतसिद्ध आधार–आधेय भूत पदार्थों के 'यह इसमें है', 'यह इसमें है' इस ज्ञान में कारण भूत सम्बन्ध समवाय कहा जाता है।[1301] धातुपाठ में पाणिनि मुनि ने यु धातु का अर्थ 'अमिश्रण' भी किया है अतः षड्दर्शनसमुच्चय के व्याख्याकार गुणरत्नसूरि ने 'अयुतसिद्धानाम्' पद का "अपृथक् सिद्धानाम्" अर्थ किया है। लोक व्यवहार में भी भेद को कहने वाले 'युत' शब्द का प्रयोग होता दिखाई देता है। 'ये दोनों भाई साथ जन्में' इसका अर्थ यह हुआ कि दोनों भाइयों की सत्ता पृथक्-पृथक् है, दोनों भिन्न-भिन्न हैं, क्योंकि संयुक्त तो दो भिन्न सत्ता वाले पदार्थ ही हो सकते हैं। एक में तो संयुक्त या युत व्यवहार दिखाई नहीं देता है अतः इसका अर्थ यह होगा कि वैशेषिक-दर्शन में अयुत सिद्ध अथवा अपृथक् सिद्ध,

---

1297 लघुवृत्ति, पृ. ५५

1298 त. भा., पृ. २७

1299 वही, पृ. ३१३

1300 सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, पृ. ३६४

1301 य इहायुतसिद्धानामाधाराधेयभूतभावानाम्।
सम्बन्ध इह प्रत्ययहेतुः स हि भवति समवायः ॥ ष. द. स., ६६

अर्थात् जो तन्तु और पट की तरह भिन्न आश्रयों में नहीं रहते हैं, ऐसे असाधारण कारण को समवाय कहते हैं।[1302]

समवाय नामक पदार्थ से ही 'तन्तुओं में पट', 'पटद्रव्य में गुण-कर्म' 'द्रव्य-गुण-कर्म में सत्ता', 'द्रव्य में द्रव्यत्व', 'गुण में गुणत्व', 'कर्म में कर्मत्व' और 'नित्यद्रव्यों में विशेष' आदि विशेष प्रत्यय उत्पन्न होते हैं अतः अवयव और अवयवी भूत द्रव्यों में, गुण और गुणी में, क्रिया और क्रियावान् में, सामान्य और सामान्यवान् में तथा विशेष और विशेषवान् पदार्थों में रहने वाला नित्य सम्बन्ध समवाय द्रव्यादि पाँच पदार्थों से पृथक् पदार्थ है। वह समवाय, एक, विभु और नित्य है।

- **षड्दर्शनपरिक्रम –** यह इसमें रहता है, इस प्रकार का नित्य सम्बन्ध समवाय है। अयुतसिद्ध आधार-आधेयभूत पदार्थों में समवाय सम्बन्ध होता है। षड्दर्शनपरिक्रमकार कहते हैं कि –

भवेदयुतसिद्धानामाधाराधेयवर्तिनाम्।

सम्बन्धः समवायाख्य इह प्रत्ययहेतुकः ॥[1303]

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अभाव निरूपण

वैशेषिक-दर्शन में सातवें एवं अन्तिम पदार्थ के रूप में अभाव का उल्लेख प्राप्त होता है। पदार्थ होने से इसमें अस्तित्व, अभिधेयत्व, ज्ञेयत्व ये तीनों गुण होते हैं। 'न भावः इति अभावः' अर्थात् किसी वस्तु का न होना अभाव है। दार्शनिक दृष्टि से किसी वस्तु का किसी विशेष काल में, किसी विशेष स्थान में अनुपस्थित अभाव है।

वैशेषिक-दर्शन के प्रारम्भिक चरण में अभाव नामक पदार्थ का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। कणाद ने प्रथम छः भाव पदार्थों का ही उल्लेख किया है।[1304] प्रशस्तपाद ने भी छः पदार्थों की ही चर्चा की है।[1305] उदयन, श्रीधर, शिवादित्य आदि परवर्ती वैशेषिकाचार्यों ने अभाव नामक सातवें पदार्थ का परिगणन किया है।

[1302] 'इह' वैशेषिकदर्शने 'अयुतसिद्धानाम्' अपृथक् सिद्धानां, तन्तुषु समवेतपटवत् पृथगाश्रयानाश्रितानामिति यावत् आधाराश्चाधेयाश्च आधाराधेया ते भवन्ति स्म। 'आधाराधेयभूताः' ते च ते भावाश्चार्थाः तेषां यः 'सम्बन्ध इह प्रत्ययहेतुः' इह तन्तुषु पटः इत्यादेः प्रत्ययस्यासाधारणं कारणं 'स हि' स एव 'भवति समवायः' सम्बन्धः। त. र. दी., पृ. ४२५

[1303] षड्दर्शनपरिक्रम, पृ. ३९५

[1304] त.सं., पृ. ५५

[1305] वही, पृ. ५५

अभाव का लक्षण करते हुए शिवादित्य ने कहा है कि अभाव वह है कि जिसका ज्ञान अपने प्रतियोगी पर निर्भर है।[1306] जबकि उदयानार्य ने इसे नञर्थक ज्ञान का विषय कहा है।[1307] अत्यन्त सरल एवं सामान्य लक्षण देते हुए विश्वनाथ ने कहा है कि द्रव्य आदि छः पदार्थों का अन्योन्याभाव ही अभाव है।[1308]

- **सर्वदर्शनसङ्ग्रह –** वैशेषिक-दर्शन में अभाव को सप्तम पदार्थ माना गया है। यह निषेधात्मक प्रमाणों से जाना जाता है। समवाय सम्बन्ध से रहित तथा समवाय से भिन्न हो वह अभाव कहलाता है।[1309] अभिप्राय यह है कि द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य और विशेष में समवाय सम्बन्ध रहता है। द्रव्यों का समवाय-सम्बन्ध अपने पर आश्रित गुणादि के साथ होता है। गुण और कर्म अपने आश्रय द्रव्य के साथ या अपने पर आश्रित सामान्य के साथ समवाय सम्बन्ध रखते हैं। सामान्य का भी अपने आश्रय स्वरूप द्रव्य, गुण और कर्म क साथ समवाय सम्बन्ध रहता है। विशेष आश्रय स्वरूप नित्य द्रव्यों के साथ समवाय सम्बन्ध रखते हैं। अनित्य द्रव्य भी अपने – अपने अवयवों से समवेत रहते हैं। समवाय का समवाय इसलिए नहीं होता कि अनवस्था दोष होगा। अतः लक्षण में **'असमवायत्वे सति'** कह कर द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय की व्यावृत्ति कर दी गई है।[1310] अभाव दो प्रकार का होता है –

१. संसर्गाभाव २. अन्योन्याभाव[1311]

संसर्ग का अर्थ सम्बन्ध होता है।[1312] संसर्ग को प्रतियोगी मानकर जो निषेध किया जाता है, उसे संसर्गाभाव कहते हैं।[1313] एक वस्तु में दूसरी वस्तु के सम्बन्ध का निषेध संसर्गाभाव है। संसर्गाभाव के तीन भेद हैं –

१. प्राग्भाव
२. प्रध्वंसाभाव

1306 प्रतियोगिज्ञानाधीनोऽभावः।- सप्तपदार्थी, पृ. ६२

1307 नञर्थप्रत्ययविषयोऽभावः।- लक्षणा. पृ. २६

1308 द्रव्यादिषट्कान्योन्याभाव इति।- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली, पृ. ६९

1309 स चासमवायत्वे सत्यसमवायः।- स. द. सं., वही, पृ. ३८१

1310 स. द. सं., पृ. ३८१

1311 वही, पृ. ३८१

1312 वही, पृ. ३८२

1313 वही, पृ. ३८२

३. अत्यन्ताभाव[1314]

१. **प्राग्भाव** – प्राग्भाव अनित्य तथा अनादि होता है। यथा – घटोत्पत्ति के पूर्व घट का अभाव।[1315]

२. **प्रध्वंसाभाव** – जिसकी उत्पत्ति होती है, किन्तु विनाश नहीं होता है अर्थात् जिसका आरम्भ हो किन्तु अन्त नहीं हो वह प्रध्वंसाभाव है।[1316] यथा – घट के फूट जाने पर अभाव का आरम्भ तो हुआ किन्तु इसका अन्त नहीं हो सकता है।

३. **अत्यन्ताभाव** – जो अपने प्रतियोगी में आश्रय ग्रहण करें वह अत्यन्ताभाव है।[1317] उदाहरण – 'भूतले घटो नास्ति' यहाँ भूतल में संयोग सम्बन्ध से घट का अभाव है। घटाभाव का प्रतियोगी घट है। अभाव भूतल में है। अतः भूतल घटाभाव का अनुयोगी है जो अत्यन्ताभाव को प्रकट करता है।

२.अन्योन्याभाव – जो अत्यन्ताभाव से पृथक् है तथा कालगत अवधि से रहित है, वह अन्योन्याभाव है।[1318] अनवधि का अर्थ नित्य है। उदा. घट पट नहीं है या घट में पट का अभाव है। यहाँ घट एवं पट का तादात्म्य नही है। यह अभाव अनादि और अनन्त है।

- **सर्वदर्शनकौमुदी** – द्रव्यादि छः पदार्थों से भिन्न अभाव है।[1319] सर्वदर्शनकौमुदीकार ने अभाव का विभाजन दो प्रकार से किया है –

१. संसर्गाभाव
२. अन्योन्याभाव[1320]

इनमें से संसर्गाभाव पुनः तीन प्रकार का कहा गया है -

१. **प्राग्भाव** – कार्य की उत्पत्ति से पूर्व रहने वाला अभाव प्राग्भाव कहलाता है।[1321] इस कपाल में घडा होगा, इन सूत्रों से पट बनेगा, आदि स्थलों पर घट पटादि के उत्पत्ति से पहले कपाल

1314 संसर्गाभावोऽपि त्रिविधः प्राक्प्रध्वंसात्यन्ताभावभेदात्।- वही, पृ. ३८२

1315 अनित्योऽनादितमः प्राग्भावः, वही, पृ. ३८१

1316 उत्पत्तिमानविनाशी प्रध्वंसा, वही, पृ. ३८१

1317 प्रतियोग्याश्रयोऽभावोऽत्यन्ताभावः।- स. द. सं., पृ. ३८१

1318 अत्यन्ताभावव्यतिरिक्तत्वे सति अनवधिरभावोऽन्योन्याभावः।– वही, पृ. ३८१

1319 स. द. कौ., पृ. ७९

1320 वही, पृ. ८०

1321 वही, पृ. ८०

में घटाभाव तथा सूत्रों में पटाभाव था, किन्तु घट पट की उत्पत्ति के अनन्तर कपाल में घटाभाव, पट की उत्पत्ति के बाद सूत्रों में पटाभाव के विनष्ट हो जाने से जो अभाव है, वह प्राग्भाव है।[1322]

२. **प्रध्वंसाभाव –** कार्य के नाश के बाद होने वाला अभाव प्रध्वंसाभाव कहलाता है।[1323]

३. **अत्यन्ताभाव –** वस्तुओं का नित्य अथवा त्रैकालिक अभाव अत्यन्ताभाव माना जाता है।[1324]

४. **अन्योन्याभाव –** परस्पर वर्तमान दो द्रव्यों में जो परस्पर अभाव प्रतीत होता है, उसे अन्योन्याभाव कहते हैं। अन्य शब्दों में एक वस्तु का दूसरी में तादात्म्य से अभाव, जैसे 'घट पट नहीं है' इसका अभिप्राय यह है कि घट और पट का तादात्म्य नहीं है अथवा ये दोनों वस्तुएं अलग-अलग हैं।[1325] इस प्रकार सर्वदर्शनकौमुदी के अनुसार अभाव भी एक वस्तुतः सत् बाह्य पदार्थ है। उसका हमें चाक्षुष प्रत्यक्ष भी होता है तथा उसके चार प्रकार गत भेद भी हैं।

- **सर्वमतसङ्ग्रह -** समवाय नित्य सम्बन्ध है।[1326] यह एक है। यह नित्य सम्बन्ध दो अयुतसिद्ध वस्तुओं में होता है। अयुतसिद्ध वे दो वस्तुएं हैं, जिनमें से एक विनश्यत् अवस्था को छोडकर सदैव दूसरे पर ही आश्रित रहती है। जैसे कि अवयव-अवयवी, गुण-गुणी, क्रिया-क्रियावान्, जाति-व्यक्ति और नित्य द्रव्य-विशेष।[1327]
- **द्वादशदर्शनसमीक्षणम् –** वैशेषिक-दर्शन में अभाव को सातवाँ पदार्थ स्वीकार किया गया है। अभाव की सिद्धि निषेधात्मक है। अभाव का लक्षण निम्नलिखित है – **'समवायसम्बन्धरहितः एवं समवायभिन्नः यः पदार्थः सः अभावः इति कथ्यते।[1328]'** अन्य भेद एवं लक्षण पूर्ववत् है।
- **द्वादशदर्शनसोपानावलि –** यहाँ अभाव को स्वतन्त्र पदार्थ स्वीकार किया गया है।[1329] पूर्वपक्षी प्रश्न करता है कि अभाव स्वतन्त्र पदार्थ नही है क्योंकि घटादि के समान उसका भान

[1322] वही, पृ. ८०

[1323] स. द. कौ., पृ. ८०

[1324] वही, पृ. ८०

[1325] वही, पृ. ८२

[1326] स. म. सं., पृ. २३

[1327] टी. ग. द्वा. सं. स. का स. अ., पृ. ८३

[1328] द्वा. द. स., पृ. ३०

[1329] द्वा. द. सो., पृ. १२१

नहीं होता है, किसी भी अधिकरण में उसकी प्रतीति नहीं होती है। अतः अभाव पदार्थ नहीं है।

उत्तर देते हुए कहते हैं कि कुछ भाव पदार्थ होते हैं तथा कुछ अभाव रूप भी पदार्थ होते हैं। अभाव भी एक अभाव रूप पदार्थ है। उदाहरण देते हुए कहते हैं कि 'भूतले घटो न' अर्थात् भूतल पर घड़ा नहीं है इससे यह सिद्ध होता है कि पहले घड़ा था लेकिन अब नहीं है अतः यह अभाव अभाव रूप पदार्थ है।[1330]

1330 द्वा. द. सो., पृ. १२१

समीक्षा

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रतिपादित वैशेषिक दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन

भारतीय चिन्तन सरणि में दर्शनसंग्राहक ग्रन्थों की एक अनूठी प्राचीन परम्परा रही है। जहाँ एक ओर कुछ दार्शनिक मौलिक ग्रन्थों के रूप में और अन्य उन ग्रन्थों पर भाष्य टीकादि के द्वारा स्वकीय तर्कबुद्धि का परिचय देते रहें हैं, वही दूसरी ओर कुछ दार्शनिक सभी दार्शनिक मतों को संग्रहित करते हुए, खण्डनमण्डन पूर्वक स्वमत पूर्वक स्वमत प्रस्तुत करते रहे हैं। आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित षड्दर्शनसमुच्चय, आचार्य शङ्कर कृत सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसङ्ग्रह, किसी अज्ञात जैनाचार्य विरचित सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, माधाव सरस्वती कृत सर्वदर्शनकौमुदी, राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय, मेरूतुङ्गाचार्य कृत षड्दर्शननिर्णय, मधुसूदनसरस्वती कृत प्रस्थानभेद, टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित सर्वमतसङ्ग्रह, गुणरत्नसूरि कृत तर्करहस्यदीपिका, सोमतिलक सूरि कृत लघुवृत्ति आदि प्रसिद्ध दर्शन संग्राहक ग्रन्थ है।

षड्दर्शनसमुच्चय में बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक जैमिनीय-दर्शन अर्थात् मीमांसा-दर्शन का वर्णन किया गया है। यहाँ बौद्धदर्शन के चार प्रस्थानों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है। आचार्य हरिभद्रसूरि ने बौद्ध एवं जैन दर्शन को भी आस्तिक की श्रेणी में रखा है क्योंकि नास्तिक दर्शन तो केवल चार्वाक के लिए कहा है। यह विचारणीय तथ्य है।

सांख्यदर्शन के अन्तर्गत योगदर्शन को रखा है, क्योंकि वे सांख्य को दो भागों में विभाजित करते हैं – १. निरीश्वर सांख्य २. सेश्वर सांख्य। निरीश्वर सांख्य में सांख्य मत का वर्णन किया है तथा सेश्वर सांख्य के अन्तर्गत योग मत का प्रतिपादन किया है। हरिभद्रसूरि ने योग तथा वेदान्तदर्शन का पृथक् रूप से प्रतिपादन नहीं किया है। योगदर्शन विषयक इनके चार ग्रन्थ प्राप्त होते हैं परन्तु वेदान्तदर्शन विषयक ग्रन्थ लिखा है या नहीं इसके विषय में कोई भी जानकारी उपलब्ध नहीं है। जैन योग के तो ये प्रथम प्रतिपादक आचार्य है।

षड्दर्शनसमुच्चयावचूर्णि में भी बौद्ध, न्याय, सांख्य, जैन, वैशेषिक, जैमीनीयदर्शन तथा अन्त में चार्वाक दर्शन का प्रतिपादन किया गया है। लघुषड्दर्शनसमुच्चय में भी इन्हीं दर्शनो का प्रतिपादन किया गया है।

राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय में लिङ्ग, वेष, आचार, देवता और गुरु की चर्चा की गई है। इसमें जैन, सांख्य, जैमिनीय, योग, वैशेषिक, सौगत अर्थात् बौद्धदर्शन का वर्णन प्राप्त होता है। इसका प्रारम्भ जैन दर्शन से होता है। यहाँ चार्वाक का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। वस्तुतः यह भी हरिभद्रसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय की प्रतिपादन शैली में लिखा गया ग्रन्थ है। लेकिन दोनों के सिद्धान्तों में अन्तर

है। इसमें बौद्ध दर्शन को अन्तिम में रखा है जबकि हरिभद्रसूरि ने प्रथम स्थान दिया है। जैन दर्शन को इसमें पहले स्थान पर रखा गया है जबकि हरिभद्रसूरि कृत षड्दर्शनसमुच्चय में चतुर्थ स्थान प्रदान किया है।

षड्दर्शननिर्णय में मेरुतुङ्ग ने प्रथम चिदानन्दैक रूप ईश्वर को प्रणाम किया है। धर्म तथा आश्रम की चर्चा प्रस्तुत की है जो अन्य किसी भी सङ्ग्रह-ग्रन्थ में द्रष्टव्य नहीं है। इसमें बौद्ध, मीमांसक, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक तथा जैनदर्शन का वर्णन प्राप्त होता है। इन्होंने अपने ग्रन्थ में वेद तथा गीता, उपनिषद् के तथ्यों को उद्धृत किया है।

सर्वसिद्धान्तप्रवेशक यह चिरन्तन जैन मुनि की रचना है। इन्होंने मङ्गलाचरण में जिन की स्तुति की है। इसका प्रारम्भ न्यायदर्शन से तथा अन्त लोकायतिक मत से होता है तथा मध्य में वैशेषिक, जैन, सांख्य, बौद्ध, मीमांसा, लोकायत मतों का प्रतिपादन किया गया है। इस ग्रन्थ की वर्णन शैली विलक्षण है। षड्दर्शनपरिक्रम में जैन, मीमांसा, बौद्ध, सांख्य, शैव तथा नास्तिकदर्शन इन छः मतों का प्रतिपादन है। यह ग्रन्थ लघु है अतः सभी मतों का संक्षेप में प्रतिपादन किया गया है।

माधवाचार्य कृत सर्वदर्शनसङ्ग्रह में चार्वाक, बौद्ध, आर्हत, रामानुज, पूर्णप्रज्ञ, नकुलीश-पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर, औलूक्य, अक्षपाद, जैमिनि, पाणिनि, सांख्य, पातञ्जल तथा शाङ्कर दर्शन का वर्णन प्राप्त होता है। इसमें पूर्वपक्ष का खण्डन तथा उत्तरपक्ष का मण्डन किया है तथा अन्त में वेदान्तदर्शन की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।

सर्वमतसङ्ग्रह में प्रमाण तथा प्रमेय का प्रतिपादन किया गया है। प्रमाण के अन्तर्गत सभी दर्शनों के प्रमाणों की चर्चा की गई है। प्रमेय के अन्तर्गत चार्वाक, क्षपणक, सुगत, कणाद, अक्षपाद, सेश्वर-निरीश्वर सांख्य मत का प्रतिपादन किया गया है।

प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, परिशिष्ट में सर्वप्रथम इतने दर्शनों के सिद्धान्तों का उल्लेख प्राप्त होता है। जिनका नाम है – न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त, शाङ्कर, भास्कर, रामानुज, मध्व, बल्लभ, श्रीकण्ठ, श्रीपति, निम्बार्क, बलदेव, चार्वाक, जैन, बौद्ध, रसेश्वर, पाणिनि, नकुलीश, शैव, वाद, ख्याति, ईश्वर, जीव, मोक्ष, प्रमाण, आदि की चर्चा की गई है। सभी दर्शनों की चर्चा अत्यन्त संक्षिप्त है।

सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में लोकायतिक, आर्हत, बौद्ध, वैशेषिक, नैयायिक, प्रभाकर, भट्टाचार्य, सांख्य, पतञ्जलि, वेदव्यास, वेदान्तदर्शन का प्रतिपादन है। सर्वदर्शनकौमुदी में वैशेषिक, न्याय, सांख्य, पातञ्जल, मीमांसा, अद्वैतवेदान्त, द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद,

अचिन्त्यभेदाभेदवाद, चार्वाक, बौद्ध, जैन तथा पश्चात्य दर्शन का प्रतिपादन है। इनमें से कुछ दर्शनों ने इसी सङ्ग्रह-ग्रन्थ में स्थान प्राप्त किया है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में पदार्थों का वर्णन अद्वितीय शैली में किया गया है। आचार्य सीताराम हेब्वार द्वारा कुछ सङ्ग्रहग्रन्थों में यथा षड्दर्शनसमुच्चय, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, पदार्थधर्मसङ्ग्रह, राजशेखर कृत षड्दर्शनसमुच्चय आदि में केवल छः भाव पदार्थ ही स्वीकार किये गए हैं। आधुनिक सङ्ग्रह-ग्रन्थों में यथा द्वाददशदर्शनसमीक्षणम्, द्वादशदर्शनसोपानावलि, तर्करहस्यदीपिका, लघुषड्दर्शनसमुच्चय आदि में अभाव को सातवें पदार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है।

सभी सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रथम पदार्थ द्रव्य है। जिसके नौ भेद प्राप्त होते हैं। सभी सङ्ग्रहकारों में अपनी-अपनी शब्दावली में नौ द्रव्यों का प्रतिपादन किया है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में बड़े गूढ़ दार्शनिक सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है यथा तर्करहस्यदीपिका में मन की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि मृत्यु के बाद मन अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अतिवाहिक शरीर में प्रवेश करता है तथा यह सूक्ष्म शरीर को स्वर्ग में ले जाता है तथा अपने अदृष्ट के अनुसार नवीन शरीर में प्रवेश भी अतिवाहिक शरीर के द्वारा ही होता है। इस प्रकार के गहन तथ्यों का भी प्रकाश कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में द्रव्यों का सामान्य परिचय दिया गया है।

अधिकांश सङ्ग्रहकारों ने चौबीस गुण स्वीकार किए हैं। कुछ तेइस भी मानते हैं यथा सर्वदर्शनकौमुदी में धर्म अधर्म को अदृष्ट शब्द से कह दिया है। अतः गुणों की संख्या तेइस हो गयी। षड्दर्शनसमुच्चयकार ने वेग का कथन स्वतन्त्र रूप से करने के कारण पच्चीस गुण माने हैं। षड्दर्शनसमुच्चय, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, षड्दर्शननिर्णय, लघुवृत्ति, लघुषड्दर्शनसमुच्चय में केवल गुणों का नामतः निर्देश किया गया है तथा उनके भेदों का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। द्वादशदर्शनसमीक्षणम्, द्वादशदर्शनसोपानावलि, सर्वदर्शनकौमुदी में सभी गुणों का लक्षण प्रस्तुत किया गया है। सभी सङ्ग्रहकारों ने कर्म का लक्षण एक समान ही दिया है। भाषा तथा कहने की शैली में अन्तर दृष्टिगोचर होता है। सभी सङ्ग्रहकारों ने पाँच ही भेद स्वीकार किए हैं। सामान्य के विषय में सभी सङ्ग्रहकारों का मत पृथक्-पृथक् प्रतीत होता है। षड्दर्शनसमुच्चय, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, सर्वदर्शनसङ्ग्रह में सामान्य के पर तथा अपर भेदों की चर्चा प्राप्त होती है तथा उनके लक्षण पर प्रकाश नहीं डाला गया है। द्वादशदर्शनसोपानावलि, सर्वदर्शनकौमुदी, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह में सामान्य के तीन भेद माने गए हैं – १. पर २. अपर ३. परापर। तर्करहस्यदीपिका में सामान्य का त्रिविध विभाजन किया है – १. महासामान्य २. सत्तासामान्य ३. सामान्यविशेष। इस प्रकार का विभाजन अन्य सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्राप्त नहीं होता है।

विशेष का प्रतिपादन सभी सङ्ग्रह-ग्रन्थों में एक-सा प्रतीत होता है। शैली में कुछ अन्तर दृष्टिगोचर होता है। सभी सङ्ग्रहकारों ने समवाय को अयुतसिद्ध पदार्थ माना है। सर्वदर्शनकौमुदी के अनुसार समवाय पाँच स्थानों में रहता है यह माना गया है।

अभाव का प्रतिपादन सर्वदर्शनसङ्ग्रह, सर्वदर्शनकौमुदी, सर्वमतसङ्ग्रह, द्वादशदर्शनसोपानावलि, द्वादशदर्शनसमीक्षणम्, तर्करहस्यदीपिका में प्राप्त होता है। अन्य सङ्ग्रह ग्रन्थों में अभाव की चर्चा प्राप्त नहीं होती है जिससे यह प्रतीत होता है कि यह सप्तपदार्थीकार से पूर्व के ग्रन्थ प्रतीत होते हैं तथा जिनमें अभाव का कथन किया गया है वे सभी ग्रन्थ सप्तपदार्थीकार से बाद के प्रतीत होते हैं ऐसा इनके सिद्धान्तों के अध्ययन से प्रतीत होता है।

कुछ ग्रन्थों में वाद-विवाद को भी सरल भाषा में प्रतिपादित किया गया है। सभी ग्रन्थकारों की महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि भारतीय दर्शन की सभी शाखाओं के लिङ्ग, वेष, आचारमीमांसा, तत्त्वमीमांसा तथा प्रमाणमीमांसा का प्रतिपादन किया गया है। एक ही ग्रन्थ में इस प्रकार की प्रमाणिक सामग्री का प्राप्त होना अध्येताओं के लिए अच्छा है।

शोधसार

भारतीय दार्शनिक चिन्तन परम्परा का विकास वैदिक काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त ज़ारी है। इस चिन्तन परम्परा का निदर्शन सर्वप्रथम ऋग्वेद के नासदीय सूक्त में दार्शनिक प्रश्नों के रूप में होता है। यह चिन्तन धारा ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् के रूप में प्रवाहित होती हुई लगभग ई. पू. सातवीं शताब्दी में विभिन्न दार्शनिक शाखाओं के रूप में व्यवस्थित हुई। उस समय तक विकसित दार्शनिक चिन्तन को दार्शनिकों ने विभिन्न शाखाओं के सूत्र-ग्रन्थों के रूप में निबद्ध किया। परवर्ती आचार्यों ने सूत्रग्रन्थों में निबद्ध दार्शनिक सिद्धान्तों को सुगम बनाने के लिए भाष्य, वार्त्तिक, टीका, वृत्ति आदि के रूप में व्याख्या ग्रन्थ लिखे। इस प्रकार प्रत्येक दार्शनिक शाखा का विकास सूत्र, भाष्य आदि ग्रन्थों के रूप में होता रहा। सातवीं-आठवीं शताब्दी ई. के निकट दार्शनिक शाखाओं के विपुल साहित्य की उपलब्धता होने के कारण आचार्यों को सभी शाखाओं का परिचय एक ही ग्रन्थ में उपलब्ध कराने की आवश्यकता अनुभव हुई, फलस्वरूप दार्शनिक सङ्ग्रह-ग्रन्थों की रचना होने लगी।

भारतीय चिन्तन सरणि में दर्शनसंग्राहक ग्रन्थों की एक अनूठी प्राचीन परम्परा रही है। जहाँ एक ओर कुछ दार्शनिक मौलिक ग्रन्थों के रूप में तथा अन्य उन ग्रन्थों पर भाष्य टीकादि के द्वारा स्वकीय तर्कबुद्धि का परिचय देते रहें हैं, वही दूसरी ओर कुछ दार्शनिक सभी दार्शनिक मतों को संग्रहित करते हुए, खण्डन-मण्डन पूर्वक स्वमत प्रस्तुत करते रहे हैं। आचार्य हरिभद्रसूरि विरचित **षड्दर्शनसमुच्चय**, आचार्य शङ्कर कृत **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह**, माधवाचार्य कृत **सर्वदर्शनसङ्ग्रह**, किसी अज्ञात जैनाचार्य विरचित **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक,** माधाव सरस्वती कृत **सर्वदर्शनकौमुदी**, राजशेखर कृत **षड्दर्शनसमुच्चय,** मेरूतुङ्गाचार्य कृत **षड्दर्शननिर्णय,** मधुसूदनसरस्वती कृत **प्रस्थानभेद**, टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित **सर्वमतसङ्ग्रह,** गुणरत्नसूरि कृत **तर्करहस्यदीपिका**, सोमतिलक सूरि कृत **लघुवृत्ति** आदि प्रसिद्ध दर्शन संग्राहक ग्रन्थ है।

भारतीय-दर्शन में सङ्ग्रह एक पारिभाषिक शब्द है जिसका अर्थ होता है कि सूत्र एवं भाष्यों में वर्णित विस्तृत सिद्धान्तों का संक्षेप में अर्थात् समासशैली में प्रतिपादन करना सङ्ग्रह कहलाता है। वर्त्तमान में उपलब्ध सङ्ग्रह-ग्रन्थों की संख्या तीस से भी अधिक है, जिनके सिद्धान्तों का वर्णन प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में किया गया है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों की निश्चित संख्या के विषय में अभी सर्वमान्य मत एक जैसा नहीं है क्योंकि अभी भी बहुत से सङ्ग्रह-ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों का अध्ययन नहीं किया गया है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों के प्रणयन का प्रारम्भ सातवीं-आठवीं शताब्दी से लेकर अद्यावधि पर्यन्त जारी है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों पर विभिन्न टीकाओं का प्रणयन किया गया है, जिनमें सङ्ग्रह-ग्रन्थों में विद्यमान दार्शनिक तथ्यों का विस्तार से वर्णन किया गया है। षड्दर्शनसमुच्चय में पर पाँच टीकाएं लघुवृत्ति,

तर्करहस्यदीपिका, विवृति, अवचूरी, अवचूर्णि, विवरण प्राप्त होती हैं। अन्य ग्रन्थों पर भी टीकाएं हैं जो अभी पाण्डुलिपि अवस्था में अनेक स्थानों में विद्यमान हैं जिनका विवरण कैटलॉग से प्राप्त होता है। सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह की संस्कृत में कोई टीका उपलब्ध नहीं होती है। आंग्लभाषा में इसका सम्पादन एवं प्रकाशन एम. रंगाचार्य ने विस्तृत भूमिका तथा व्याख्या के साथ किया है। सर्वदर्शनसङ्ग्रह पर वासुदेव शास्त्री की दर्शनाङ्कुर, E.B कावेल तथा गफ का अंगेजी अनुवाद तथा नोट्स, कंगले का सटीप मराठी में भाषान्तर, अंग्रेजी में एम. एम. अग्रवाल ने अनुवाद तथा व्याख्या की है।

आचार्य हरिभद्रसूरि का जैन धर्म में बहुत आदर एवं सम्मान है। महावीर स्वामी के बाद जैनाचार्यों में हरिभद्रसूरि का नाम ही अग्रगण्य है। इनके ग्रन्थों की संख्या १४००, १४४०, १४४४ बतायी गयी है। जिनमें से ७० ग्रन्थों का प्रकाशन लालभाई दलपतभाई प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान अहमदाबाद तथा पार्श्वनाथ विद्यापीठ वाराणसी से किया गया है। इन्होंने आगम ग्रन्थों पर टीकाएं, स्वरचित स्वोपज्ञ टीकाएं, कथा- साहित्य, दर्शन-साहित्य, योग-साहित्य आदि विधाओं पर ग्रन्थों का प्रणयन किया है।

षड्दर्शनसमुच्चय में छः दर्शनों, बौद्ध, न्याय, साङ्ख्य, जैन, वैशेषिक एवं मीमांसा के दार्शनिक मूल सिद्धान्तों को सरस व सुबोध शैली में सुव्यवस्थित व सन्तुलित रुप में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार इस ग्रन्थ की यह विशेषता है कि इसमें षड्दर्शनों के अन्तर्गत वैदिक और अवैदिक दोनों दर्शनों का समावेश किया गया है। हरिभद्रसूरि ने विवेचनीय दर्शनों के विषयों का प्रतिपादन निष्पक्ष रूप से पूर्ण निष्ठा के साथ किया है। आचार्य हरिभद्र अपने ग्रन्थ **शास्त्रवार्तासमुच्चय** के प्रारम्भ में ग्रन्थ रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसका अध्ययन करने से अन्य दर्शनों के प्रति द्वेष बुद्धि समाप्त होकर तत्त्व का बोध हो जाता है। इसका विषय विभाजन तत्त्व की दृष्टि से किया गया है। इसमें सर्वप्रथम चार्वाक के भौतिकपक्ष का उल्लेख किया गया है। **शास्त्रवार्तासमुच्चय** में कहा गया है कि जीवमात्र तात्त्विक दृष्टि से शुद्ध होने के कारण परमात्मा का अंश है और वह अपने अच्छे-बुरे का कर्त्ता भी है। इस प्रकार जीव ईश्वर है और वही कर्त्ता है।

शङ्कराचार्य ने सम्पूर्ण भारत में वेद तथा वेदान्त की स्थापना कर हिन्दू धर्म को जागृत किया। अल्पायु में भी इन्होंने अनेक दार्शनिक ग्रन्थों, स्तोत्रों, भाष्यों तथा प्रकरण ग्रन्थों की रचना की है। आचार्य शङ्कर के विना वेद तथा वेदान्त की कल्पना अधूरी प्रतीत होती है। शङ्कराचार्य का दर्शन विषयक ग्रन्थ **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह** है। जिसमें विभिन्न दार्शनिक मतों का परिचय दिया गया है। इसमें चौदह अर्थात् लोकायतिक पक्ष, आर्हत पक्ष, बौद्ध (माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक) पक्ष, वैशेषिक पक्ष, नैयायिक पक्ष, प्रभाकर पक्ष, भट्टाचार्य पक्ष, साङ्ख्य पक्ष, पतञ्जलि पक्ष, वेदव्यास पक्ष एवं वेदान्त मत के दार्शनिक शाखाओं को समाहित किया गया है। इस ग्रन्थ में लोकायतिक पक्ष, पतञ्जलि पक्ष, वेदव्यास पक्ष एवं वेदान्त पक्ष को प्रथम बार स्थान मिला है। बौद्ध-शाखा को माध्यमिक,

योगाचार, सौत्रान्तिक एवं वैभाषिक इन चार भागों में विभक्त कर दिया गया है। मीमांसा को भी प्राभाकर और कुमारिल पक्ष के रूप में स्थापित किया गया है।

सर्वदर्शनसङ्ग्रह के कर्त्ता माधवाचार्य ने धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, संगीत आदि विषयों पर ग्रन्थों का प्रणयन किया है। सर्वदर्शनसङ्ग्रह दर्शन विषयक ग्रन्थों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सर्वदर्शनसङ्ग्रह में चार्वाकदर्शन, बौद्धदर्शन, आर्हत दर्शन, रामानुज दर्शन, पूर्णप्रज्ञ दर्शन, नकुलीश-पाशुपतदर्शन, शैवदर्शन, प्रत्यभिज्ञा-दर्शन, रसेश्वर-दर्शन, औलूक्य दर्शन, अक्षपाददर्शन, जैमिनि दर्शन, पाणिनि-दर्शन, साङ्ख्यदर्शन, पातञ्जल दर्शन, शांकर दर्शन नामक सोलह दर्शनों का वर्णन किया गया है।

प्रस्थानभेद मधुसूदन सरस्वती की रचना है। इसका प्रारम्भ चतुर्दश विद्याओं से होता है। इसमें द्वादश दार्शनिक शाखाओं का न्याय, वैशेषिक, कर्ममीमांसा, शारीरकमीमांसा, पातञ्जल, पाञ्चरात्र, पाशुपत, बौद्ध, दिगम्बर, चार्वाक, साङ्ख्य एवं औपनिषद् नामोल्लेखपूर्वक विवेचन है। इसमें सौगतदर्शन के प्रस्थान चतुष्टय, चार्वाक तथा जैनों का नामतः निर्देश कर उनको पुरुषार्थ में अनुपयोगी बतला कर छोड़ दिया गया है। मधुसूदन सरस्वती ने नास्तिकों के छः प्रस्थानों का उल्लेख किया है माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक तथा चार्वाक और दिगम्बर। न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, पाशुपत और वैष्णव दर्शनों को भी वैदिक आस्तिक दर्शनों में रखा है। इसमें वेद को धर्म, ब्रह्म प्रतिपादक, अपौरुषेय कहा है। वेद को दो भागों में विभाजित किया है मन्त्र और ब्राह्मण। इसमें उपवेद वेदाङ्गों, अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र, नीतिसार की चर्चा प्राप्त होती है। यहाँ पर औपनिषद् दर्शन की नवीन स्वीकृति हुई है।

सर्वसिद्धान्त अर्थात् सभी भारतीय दर्शनों का परिचायक **सर्वसिद्धान्तप्रवेशक** जैसलमेर ग्रन्थालय में विद्यमान ताड़पत्र पर लिखित इस ग्रन्थ की दो प्रतियाँ प्राप्त होती हैं। इन पाण्डुलिपियों के कर्त्ता का नाम अज्ञात है। ताड़पत्र पर लिखी गयी इन प्रतियों में ग्रन्थकार ने अपने नाम का कहीं कोई उल्लेख नहीं किया है, परन्तु मङ्गलाचरण के अनुसार जैन मुनि ही इस ग्रन्थ के रचयिता प्रतीत होते हैं। इसमें उस काल के प्रधान एवं प्रसिद्ध दर्शनों यथा न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, बौद्ध, जैन, मीमांसा और लोकायत का वर्णन किया गया है।

सर्वदर्शनकौमुदी का विभाजन वैदिक और अवैदिक रूप में किया है। वेद को प्रमाण मानने वालों को वह शिष्ट मानता है और वेद के प्रमाण को स्वीकार नहीं करने वाले बौद्ध आदि को अशिष्ट मानता है। वैदिक दर्शनों में इनके अनुसार तर्क, तन्त्र, साङ्ख्य ये तीन दर्शन हैं। तर्क के दो भेद सर्वदर्शनकौमुदीकार ने दिए हैं- वैशेषिक और न्याय। तन्त्र के दो भेद दिए हैं - शब्दमीमांसा (व्याकरण) तथा अर्थमीमांसा।

अर्थमीमांसा के दो भेद हैं पूर्वमीमांसा और उत्तर मीमांसा। पूर्वमीमांसा के दो भेद हैं- भाट्ट और प्राभाकर।

साङ्ख्यदर्शन के दो भेद हैं - निरीश्वरसाङ्ख्य प्रकृतिपुरुष के भेद का प्रतिपादक तथा सेश्वरसाङ्ख्य योग-दर्शन । इस प्रकार वैदिकदर्शनों के छः भेद हैं – योग, साङ्ख्य, पूर्वमीमांसा, उत्तरमीमांसा, न्याय, वैशेषिक। वैशेषिक-दर्शन के अन्तर्गत ही जैन-दर्शन का वर्णन प्राप्त होता है। इसका प्रारम्भ वैशेषिक-दर्शन से होता है। तत्पश्चात् न्याय, मीमांसा, साङ्ख्य और योग-दर्शन आदि का उल्लेख है। अवैदिक दर्शन के तीन भेद हैं – बौद्ध, चार्वाक और आर्हत। बौद्ध-दर्शन के चार भेद हैं – माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक, वैभाषिक।

षड्दर्शनसमुच्चय में जैन, साङ्ख्य, जैमिनीय अर्थात् पूर्वमीमांसा, योग, वैशेषिक तथा सौगत अर्थात् बौद्ध इन छह दार्शनिक शाखाओं का विवेचन है। इसके प्रारम्भ में लिङ्ग, वेष, आचार, गुरु और मुक्ति का तथा अन्त में उस दर्शन सम्प्रदाय के प्रमुख ग्रन्थों का उल्लेख भी किया गया है। इसमें चार्वाक-दर्शन को दर्शन श्रेणी में नहीं रखा गया है किन्तु अन्त में चार्वाक का भी संक्षिप्त परिचय दिया गया है। **लघुषड्दर्शनसमुच्चय** का प्रारम्भ जैन-दर्शन से होता है। चार्वाक-दर्शन को नास्तिक स्वीकार किया गया है तथा इसकी गणना सातवें दर्शन के रूप में की गयी है। षड्दर्शननिर्णय में बौद्ध, मीमांसा, साङ्ख्य, न्याय, वैशेषिक और जैन-दर्शन का उल्लेख किया गया है। इसमें मुख्य रूप से देव, गुरु, धर्म का वर्णन किया गया है। इसमें जैन-दर्शन का प्राधान्य है।

द्वादशदर्शनसमीक्षणम् में वर्णित द्वादश दर्शन न्यायदर्शनम् वैशेषिकदर्शनम् सांङ्ख्यदर्शनम् योगदर्शनम् मीमांसादर्शनम् वेदान्तदर्शनम् चार्वाकदर्शनम् जैनदर्शनम् बौद्धदर्शनम् सौत्रान्तिकदर्शनम् योगाचारदर्शनम् माध्यमिकदर्शनम् हैं। द्वादशदर्शनसोपानावलि में चार्वाक, वैभाषिक, सौत्रान्तिक, योगाचार, माध्यमिक, जैन, न्याय, वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, पूर्वमीमांसा और उत्तरमीमांसा इन बारह मतों का वर्णन किया गया है। इसमें उत्तरमीमांसा के मध्व, रामानुज, वल्लभ और शङ्कर के मत का विवेचन प्राप्त होता है।

सर्वमतसङ्ग्रह दर्शनसङ्ग्राहक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ की उपलब्ध पाण्डुलिपियों में रचनाकार का नाम, जन्म-प्रदेश, जीवनवृत्यादि विषयक कोई सङ्केत नही है। सर्वमतसङ्ग्रह ग्रन्थ को सर्वप्रथम प्रकाश में लाने का श्रेय महामहोपाध्याय टी. गणपति शास्त्री को है। उन्होंने इस ग्रन्थ का सम्पादन सन् १९१८ ई. में किया। उन्होंने ग्रन्थ की सङ्क्षिप्त भूमिका मेंउल्लेख किया है कि इस ग्रन्थ का सम्पादन दो

पाण्डुलिपियों पर आधृत है। ये दोनों पाण्डुलिपियाँ चङ्गारप्पल्लिम मठ के स्वामी 'श्रीयुत परमेश्वरपोत्ति महाशय से प्राप्त हुईं थी।' दोनों ही पाण्डुलिपियाँ ताड़पत्रों पर केरलीय लिपि में थीं।

अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह ग्रन्थ अप्राप्त है। इसमें बौद्ध-दर्शन के सौत्रान्तिक, वैभाषिक, योगाचार और माध्यमिक इन चार सम्प्रदायों के सिद्धान्तों का परिचय दिया गया है। अन्त में जैनदर्शन का उल्लेख किया गया है। यहाँ चार्वाकदर्शन का वर्णन नहीं प्राप्त होता है।

आर्यविद्यासुधाकर में चार्वाक, बौद्धमत के माध्यमिक, योगाचार, सौत्रान्तिक तथा वैभाषिक सम्प्रदाय और जैन इन छः नास्तिक दर्शनों के साथ न्याय-वैशेषिक, साङ्ख्य, योग, मीमांसा, वेदान्त इन दर्शनों का संक्षेप में वर्णन किया गया है। इसमें न्याय-वैशेषिक को एक दर्शन माना गया है। आर्यविद्यासुधाकर के अन्त में पुराणमत, तान्त्रिकमत, विष्णुस्वामी, रामानुज, मध्व, वल्लभ, पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा, रसेश्वर दर्शनों का वर्णन किया गया है। षड्दर्शनपरिक्रम के कर्त्ता अज्ञात है। इसमें जैन, मीमांसा, बौद्ध, साङ्ख्य, शैव, चार्वाकमत का संक्षेप में वर्णन किया गया है। यहाँ पर शैव दर्शन के अन्तर्गत न्याय और वैशेषिक को रखा गया है।

भारतीय-दर्शन का विभाजन दो प्रकार से होता है - आस्तिक, नास्तिक। आस्तिक नास्तिक का अर्थ के आधार पर दो प्रकार से विभाजन किया जाता है। प्रथम अर्थ के अनुसार आस्तिक दर्शन वह है जो वेद को मानते हैं, इसके अन्तर्गत मीमांसा, वेदान्त, साङ्ख्य, योग, न्याय तथा वैशेषिक आते हैं। इन्हें षड्दर्शन कहा जाता है। इन छः दर्शनों के अतिरिक्त और भी आस्तिक दर्शन हैं यथा शैवदर्शन, पाणिनीय दर्शन, रसेश्वर-दर्शन आदि। नास्तिक दर्शन, जो दर्शन वेद को स्वीकार नहीं करते हैं उनको नास्तिक दर्शन कहा जाता है, यथा चार्वाक, बौद्ध तथा जैन।

द्वितीय अर्थ के अनुसार, आस्तिक वह जो परलोक में विश्वास रखता है, इस अर्थ के अनुसार बौद्ध, जैन, साङ्ख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त को आस्तिक दर्शन कहते हैं। नास्तिक उसको कहते हैं जो परलोक में विश्वास नहीं रखता है, वह नास्तिक है। यथा- चार्वाक-दर्शन।

चार्वाक-दर्शन को सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वार्हस्पत्य, पाषाण्ड, लोकायतिक, चार्वाक आदि नामों से अभिहित किया गया है। इसमें पृथिवी, जल, तेज, वायु चार महाभूत स्वीकार किये गए हैं। सभी वस्तुएं प्रत्यक्षगम्य हैं, कुछ भी अदृष्ट नहीं है। इस संसार में सुख-दुःख से धर्म, अधर्म की कल्पना नहीं करनी चाहिए क्योंकि व्यक्ति स्वभाव से ही सुखी और दुःखी होता है। स्थूल, तरूण, वृद्ध, युवा इत्यादि विशेषणों से युक्त विशिष्ट देह ही आत्मा है। जड़ और भूतों के संयोग से चैतन्यता आ जाती है यथा पान सुपारी के संयोग से लालिमा उत्पन्न हो जाती है। इस लोक से अतिरिक्त कोई अन्य लोक नहीं है। प्राण

वायु का निकलना ही मृत्यु है, उसको मोक्ष कहा गया है। तप, व्रत, उपवास आदि के द्वारा मूर्ख ही प्रसन्न होता है। पण्डित परिश्रम नहीं करता है क्योंकि उनको विना परिश्रम के ही सुवर्ण, भूमि आदि को लोग दान कर देते हैं। इन मार्गों की लोग हमेशा प्रशंसा करते हैं। तीनों वेद, अग्निहोत्र, भस्म लगाना इत्यादि कार्य बुद्धि तथा शक्ति से हीन लोग करते हैं ऐसा सङ्ग्रह-ग्रन्थों में चार्वाक दार्शनिकों का मानना हैं।

अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में बौद्धदर्शन के चार सम्प्रदाय स्वीकार किये गये हैं माध्यमिक, योगाचार सौत्रान्तिक और वैभाषिक। वैभाषिक ज्ञान और ज्ञेय दोनों को प्रत्यक्ष मानते हैं, किन्तु सौत्रान्तिक ज्ञेय अर्थ को अनुमेय मानते हैं। योगाचार केवल ज्ञान को ही मानते हैं। घट आदि पदार्थ ज्ञानरूप हैं। माध्यमिक कहते हैं कि ज्ञान और ज्ञेय दोनों शून्य हैं उनकी सत्ता भ्रमरूप हैं।

जैन-दर्शन के मूल प्रवर्तक आदि तीर्थंकर ऋषभदेव हैं। उनके पश्चात् तेइस तीर्थंकर और हुए हैं। भगवान् महवीर जैन धर्म के अन्तिम के अन्तिम तीर्थंकर थे। जैन-दर्शन में देवता के रूप में जिन को स्वीकार किया गया है। जिसके राग द्वेष तथा कर्म क्षय हो गये हैं उसको जिन कहते हैं। **लघुषड्दर्शनसमुच्चय** के अनुसार नौ तत्त्व जैन-दर्शन में स्वीकार किये गए हैं। सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र ये मोक्ष प्राप्ति के मार्ग हैं। सम्पूर्ण कर्मों का क्षय, नित्य ज्ञान की प्राप्ति मोक्ष है। **सर्वदर्शनकौमुदी** में जैन बौद्ध को एक ही दर्शन स्वीकार किया गया है। दो प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्ष माने गए हैं।

शङ्कराचार्य कृत **सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह** में कहते हैं कि पाखण्डी दुर्जनों से तर्क के वेद अर्थात् न्याय की रक्षा की गई है। अक्षपाद के मत में प्रमाणादि षोडश पदार्थों के ज्ञान से जीवों की मुक्ति होती है। सभी सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितण्डा, हेत्वाभास, छल, जाति, निग्रहस्थान ये सोलह पदार्थ हैं। न्याय-वैशेषिक को समान शास्त्र के रूप में प्रतिपादित किया गया है। राजशेखर कृत **षड्दर्शनसमुच्चय** में न्याय-दर्शन को शैव मत कहा गया है क्योंकि कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में महेश्वर को न्यायमत का देवता स्वीकार किया गया है।

अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में साङ्ख्य-दर्शन को सेश्वर साङ्ख्य और निरीश्वर साङ्ख्य रूप से विभाजित किया गया है। निरीश्वर साङ्ख्य के प्रवर्तक कपिल और सेश्वर के पतञ्जलि हैं। **सर्वदर्शनकौमुदी** के अनुसार में साङ्ख्य शास्त्र के आचार्य कपिल मुनि का परिचय दिया गया है। इनके पिता का नाम 'कर्द्दम' माता का नाम 'देवहूति' बताया गया है। यह भगवान् के पाचवें अवतार थे। इनके विषय में कहा जाता है कि स्वयं ब्रह्मा ने आकर इनके पिता से कहा था कि यह पुत्र ईश्वर का अवतार है तथा सृष्टि में साङ्ख्य मत का प्रचार करने के लिए भेजा है। साङ्ख्य शास्त्र में पच्चीस तत्त्वों का वर्णन किया गया है। इसमें तीन प्रमाण प्रत्यक्ष, अनमान, शब्द माने गए हैं।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में योगदर्शन को पतञ्जलि पक्ष के रूप में उपस्थापित किया गया है। सेश्वर साङ्ख्य के प्रवर्तक पतञ्जलि को स्वीकार किया गया है। इसमें भी साङ्ख्य सम्मत पच्चीस तत्त्वों को स्वीकार किया

गया है। योग को जानने से दोषों का नाश हो जाता है। पच्चीस तत्त्वों में पुरुष, प्रकृति, महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्रा, सोलह विकार हैं। योग में ज्ञान से मुक्ति मानी गयी है। इसको शङ्कराचार्य आलस्य का लक्षण मानते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द तीन प्रमाण माने गए हैं।

मीमांसादर्शन के प्रणेता व्यास शिष्य जैमिनि हैं। भारत में जब उपनिषद् दर्शन का प्रभाव सर्वत्र विद्यमान था तथा लोगों के मन में कर्मकाण्ड के प्रति अरूचि हो गई थी उस समय महर्षि जैमिनि ने विचारशास्त्र अर्थात् मीमांसा-दर्शन की रचना कर वेद की रक्षा की है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में कुमारिल भट्ट और प्रभाकर मिश्र दोनों के मतों का वर्णन किया गया है। **सर्वदर्शनसङ्ग्रह** के मीमांसा पक्ष में प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, अर्थापत्ति, अनुपलब्धि नामक छः प्रमाण स्वीकार किए गए हैं। मीमांसा शास्त्र में ईश्वर की चर्चा नहीं होने से शङ्कराचार्य आदि ने नास्तिक दर्शन कहा है। मेरूतुङ्गाचार्य ने मीमांसकों की अप्रशंसा की है –

यूपं छित्त्वा पशून् हत्वा कृत्वा रूधिरकर्दमम्।

यद्येवं गम्यते स्वर्गे नरके केन गम्यते ॥

कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वेदान्त का वर्णन प्राप्त नहीं होता है, यह विचारणीय विषय है। कुछ ग्रन्थों में वेदान्त-दर्शन की स्थापना तथा श्रेष्ठता के लिए अन्य भारतीय दर्शनों की समालोचना प्रस्तुत कर अन्त में वेदान्त मत की स्थापना की गयी है। वेदान्त में जगत् की सृष्टि माया के कारण होती है। अतः जगत् मायिक कहा जाता है। ब्रह्म सत्य है। जगत् मिथ्या है। जीव ब्रह्म ही है। माया से विशिष्ट सगुण ब्रह्म को जगत् का कर्त्ता कहा गया है।

अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में इन्हीं दर्शनों का वर्णन प्राप्त होता है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों यथा **प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, सर्वदर्शनसङ्ग्रह, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, द्वादशदर्शनसोपानावलि, द्वादशदर्शनसमीक्षणम्** आदि में वेदव्यासपक्ष, द्वैतदर्शन, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत, अचिन्त्यभेदवाद, भास्कर सिद्धान्त, रसेश्वर, पाणिनि, नकुलीश पाशुपत, शैव, प्रत्यभिज्ञा आदि मतों का वर्णन किया गया है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सभी दर्शनों का वर्णन किया गया है लेकिन किसी भी मत को दर्शन शब्द की संज्ञा से अभिहित नहीं किया गया है। सभी दर्शनों को पक्ष, मत, सिद्धान्त, प्रस्थान आदि शब्दों से कहा गया है।

पदार्थधर्मसङ्ग्रह के अनुसार पदार्थों के साधर्म्य-वैधर्म्य के तत्त्वज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति बतलायी गयी है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों में पदार्थों की संख्या छः है। अधिकांश सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अभाव का निरूपण नहीं किया गया है। छः पदार्थ द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय हैं। सङ्ग्रह-ग्रन्थों में प्रथम पदार्थ द्रव्य है। द्रव्य पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा, मन भेद से नौ हैं। जिसमें गन्ध

समवाय सम्बन्ध से रहती है, वह द्रव्य पृथिवी है। शीत-स्पर्श जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह जल है। उष्ण-स्पर्श जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहता है, वह तेज है। रूपरहित तथा स्पर्श गुण से युक्त वायु है। इन चारों द्रव्यों के नित्य और अनित्य दो भेद होते हैं। पुनः इनके तीन भेद शरीर, इन्द्रिय, विषय हैं। अधिकतर सङ्ग्रह-ग्रन्थों में द्रव्यों का लक्षण तथा द्रव्य में रहने वाले गुणों की चर्चा की गई है। आकाश, काल, दिक् को नित्य, एक, विभु द्रव्य माना गया है। दिक् के उपाधि भेद से दस भेद स्वीकार किये गए हैं। आत्मत्व जाति से युक्त आत्मा है। आत्मा में चौदह गुण बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, धर्म, अधर्म, संस्कार, संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग रहते हैं। मनस्त्व जाति जिसमें समवाय सम्बन्ध से रहती है वह मन है। क्रम पूर्वक ज्ञान की उत्पत्ति में मन कारण है। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, वेग नामक आठ गुणों से युक्त मन है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, विभाग, परत्व, अपरत्व, बुद्धि, सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, गुरूत्व, द्रवत्व, स्नेह, संस्कार, धर्म, अधर्म, शब्द ये पच्चीस गुण स्वीकार किये गए हैं। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में संस्कार के तीन भेद अर्थात् वेग, भावना, संस्कार का पृथक् से परिगणन किया गया है। अदृष्ट शब्द से धर्म, अधर्म का ग्रहण किया गया है।

पदार्थधर्मसङ्ग्रह में पच्चीस गुणों का विभाजन ग्यारह प्रकार से किया गया है, जो अधोलिखित है – मूर्त- अमूर्त उभयगुण, एक वृत्तिगुण, अनेकवृत्ति गुण, विशेष और सामान्य गुण, बाह्यैकैकेन्द्रियग्राह्य, द्वीन्द्रियग्राह्य, अन्तःकरणग्राह्य, अतीन्द्रिय, कारणगुणपूर्वक, अकारणगुणपूर्वक, संयोगज, कर्मज, विभागज, बुद्ध्यपेक्ष, समानजात्यारम्भक, असमानजात्यारम्भक, समानासमानजात्यारम्भक, स्वाश्रयसमवेतारम्भक, परत्रारम्भक, उभयत्रारम्भक, क्रियाहेतु, असमवायिकारण, निमित्तकारण, उभयकारण, अकारण, व्याप्यवृत्ति, अव्याप्यवृत्ति, यावद्द्रव्यभावी, अयावद्द्रव्यभावी। पदार्थधर्मसङ्ग्रहकार का यह विभाजन बड़ा वैज्ञानिक और अद्भुत है क्योंकि गुणों का इतना विभाजन किसी भी ग्रन्थ में उपलब्ध नहीं होता है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में गुण के सन्दर्भ में गुणत्व जाति की या सामान्य की सिद्धि की गयी है। कुछ सङ्ग्रह-ग्रन्थों में चौबीस गुण तथा कुछ में पच्चीस गुण स्वीकार किये गए हैं। पच्चीसवें गुण के रूप में वेग को स्वीकार किया गया है। किसी भी नवीन गुण की उद्भावना यहाँ दृष्टि गोचर नहीं होती है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में कर्म का स्वरूप एक जैसा प्रतीत होता है। कर्म, संयोग और विभाग का असमवायिकारण है और कर्मत्व सामान्य से युक्त है। गुण के समान कर्म भी द्रव्य पर आश्रित रहने वाला धर्म है, किन्तु गुण से भिन्न है। कर्म पाँच प्रकार का है –उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुञ्चन, प्रसारण,

गमन। सङ्ग्रह-ग्रन्थों के अनुसार कर्म द्रव्य एवं गुण से भिन्न एक पृथक् पदार्थ है तथा उसके अन्तर्गत भौतिक एवं मानसिक सभी प्रकार की क्रियाओं का समावेश है। कर्म की उत्पत्ति गुण पदार्थ के अनन्तर होती है।

सङ्ग्रह-ग्रन्थों में सामान्य को दो प्रकार का बतलाया गया है - पर सामान्य तथा अपर सामान्य। पर सामान्य को सत्ता कहते हैं। यह द्रव्य, गुण, कर्म में रहता है। द्रव्यत्व, गुणत्व, कर्मत्वादि अपर सामान्य हैं। कुछ आचार्यों ने महा सामान्य, सत्तासामान्य, सामान्यविशेष भेद से सामान्य को तीन प्रकार का स्वीकार किया है। महासामान्य छः पदार्थों में रहता है क्योंकि इन छः पदार्थों में पदार्थत्व जाति रहती है। सत्तासामान्य द्रव्य, गुण और कर्म इन तीन पदार्थों में रहता है। द्रव्यत्व आदि सामान्यविशेष सामान्य है। सभी ग्रन्थों में विशेष को अन्त्य कहा गया है, क्योंकि यह अन्तिम द्रव्य में रहता है। विशेष नित्य है क्योंकि यह नित्य द्रव्यों में रहता है। वैशेषिक-दर्शन के अनुसार एक नित्य द्रव्य में एक ही विशेष रहता है, अतः विशेष अनन्त हैं। विशेषों में सामान्य अर्थात् जाति नहीं रहती है। सभी ग्रन्थों में सामान्य का एक सा स्वरूप ही परिलक्षित होता है। विशेष नामक पदार्थ वैशेषिक-दर्शन की भारतीय-दर्शन को विशेष देन है। सङ्ग्रह-ग्रन्थों के अनुसार अयुतसिद्धों में आधार और आधेय स्वरूप भावों के ज्ञान का कारणभूत सम्बन्ध को समवाय कहते हैं। प्राचीन सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वैशेषिक मत में छः ही पदार्थ माने गये हैं। आधुनिक सङ्ग्रह-ग्रन्थों में अर्थात् **द्वादशसमीक्षणम्** तथा **द्वादशदर्शनसोपानालि** में अभाव को सातवें पदार्थ के रूप में स्वीकार किया गया है। इससे यह ज्ञात होता है कि वैशेषिक-दर्शन में पहले छः ही पदार्थ थे बाद में अभाव को मिलाकर सात पदार्थ स्वीकार किये गए हैं। इस प्रकार सङ्ग्रह-ग्रन्थों में वैशेषिक-दर्शन का बहुत ही सरस, सुबोध, तथा नवीन शैली में प्रतिपादन किया गया है। आगामी शोध अध्येताओं के लिए सङ्ग्रह-ग्रन्थों में चार्वाक, बौद्ध, जैन, साङ्ख्य, योग, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा आदि दर्शनों पर पृथक् पृथक् शोध अपेक्षित है। यह भारतीय-दर्शन में शोध का एक नवीन मार्ग है। जिसमें अध्येताओं को नवीन तथ्यों की प्राप्ति संभव है।

॥ सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची ॥

प्राथमिक स्रोत

(क) साक्षात् स्रोत

संस्कृत एवं हिन्दी ग्रन्थ –

- अवैदिकदर्शनसङ्ग्रह, वाजपेययाजी गङ्गाधर, श्रीवाणीविलासमुद्रायन्त्रालय, श्रीरङ्गम, १९११
- आर्यविद्यासुधाकर, चिमणभट्ट यज्ञेश्वर, सं. कुणाल. एस.डी, पंञ्जाब संस्कृत बुक डिपो, लाहौर, १९२२
- द्वादशदर्शनसोपानावलि, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, गुड कम्पेनियन्स, वडोदरा, १९९३
- द्वादशदर्शनसोपानावलि, श्रीपादशास्त्री हसूरकर, सहकारी मुद्रणालय, इन्दौर, १९३८
- द्वादशदर्शनसमीक्षणम्, सीताराम हेब्बार, गायत्री आश्रम सालिग्राम, उडुपि तालूक, दक्षिणकन्नड कर्नाटक स्टेट, १९८०
- प्रशस्तपादभाष्यम्, व्या. आचार्य ढुण्ढिराज शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि. सं. २०५९
- प्रशस्तपादभाष्यम् 'न्यायकन्दली टीकासहितम्', व्या. पं. दुर्गाधर झा शर्मा, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९७
- प्रशस्तपादभाष्य, प्रशस्तपादः, सं.श्रीनिवासशास्त्री,इण्डो-विजन-प्राइवेट लिमिटेड,गाजियाबाद,प्र.सं.१९८४
- प्रस्थानभेद, मधु सूदन सरस्वती, भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली, २००८
- प्रत्यभिज्ञाप्रदीप, रंगेशनाथमिश्र, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, १९९८

- लघुषड्दर्शनसमुच्चय, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, सं. संयम कीर्ति विजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- शास्त्रवार्तासमुच्चयः, हरिभद्र सूरि, अनु. डा. कृष्ण कुमार दीक्षित, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद,१९६९(प्रथम संस्करण)
- शास्त्रवार्तासमुच्चय, हरिभद्रसूरि, अनु. डा. कृष्ण कुमार दीक्षित, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, द्वितीय सं. २००२
- षड्दर्शनदर्पण, अज्ञात, क्रिश्चियन ट्रैक्ट एण्ड बुक सोसाइटी, कललत्ता, १८६०
- षड्दर्शनसमुच्चय, हरिभद्रसूरि, सं. महेन्द्र कुमार जैन, आत्मानन्द सभा, भावनगर, गुजरात द्वि. सं. १९८१
- षड्दर्शनसमुच्चय, हरिभद्रसूरिविरचित, (लघुवृत्ति टीका), व्या.कामेश्वरनाथ मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी, सं. १९७९
- षड्दर्शनसमुच्चय, हरिभद्रसूरि, व्या. गोस्वामी, श्रीदामोदरलाल शास्त्री, चौखम्बा संस्कृत बुक डिपो, वाराणसी, १९५७
- षड्दर्शन, राव, रामलिङ्गेश्वर एम. सी., अनु प्रकाशन, मेरठकैन्ट, १९७६
- षड्दर्शनपरिक्रम, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, संयमकीर्तिविजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, संयमकीर्तिविजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- षड्दर्शनसमुच्चय 'तर्करहस्यदीपिका टीकासहित', सातवाँ सं, सं. महेन्द्र कुमार जैन न्यायाचार्य, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, २००९
- षड्दर्शनसमुच्चय, हरिभद्रसूरि, (लघुवृत्ति टीका), व्या. आचार्य रुद्र प्रकाश दर्शनकेसरी, कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, २०१२
- षड्दर्शनसमुच्चयवृत्ति, मणिभद्रसूरि, बिब्लोथिका इण्डिका, कलकत्ता, १९२६
- षड्दर्शननिर्णय, मेरूतुंग, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, सं. संयम कीर्ति विजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- षड्दर्शनपरिक्रम, अज्ञात, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, सं. संयम कीर्ति विजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- षड्दर्शनसमुच्चय, राजशेखरसूरि, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, सं. संयम कीर्ति विजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०

- षड्दर्शनसमुच्चय(गुजराती अनुवाद),चन्द्रसिंहसूरि, जैन तत्त्वादर्श सभा, अहमदाबाद, ई.१८९२
- षड्दर्शनरहस्य, रङ्गनाथ पाठक, बिहारराष्ट्रभाषापरिषद्, पटना, १९५८
- सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, चिरन्तन जैनमुनि, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, सं. संयम कीर्ति विजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- सर्वदर्शनकौमुदी, दामोदर महापात्र, ओडिशा साहित्य एकाडेमी भुवनेश्वर, १९७५
- सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रह, शङ्कराचार्य, अजय बुक सर्विस, दिल्ली, १९८३
- सर्वदर्शनसङ्ग्रह, माधवाचार्य, भा. उमा शङ्कर शर्मा 'ऋषि', चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, २००८
- सर्वसिद्धान्तप्रवेशक, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, संयमकीर्तिविजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- सर्वदर्शनकौमुदी, सरस्वती, माधव, संस्कृतग्रन्थमाला त्रिवेन्द्रम्, १९३८
- सर्वमतसङ्ग्रह, शास्त्री, टी. गणपति, भारतीय बुक कारपोरेशन, दिल्ली,२००८

अंग्रेजी ग्रन्थ –

- Shad-darsana-samuccaya, Haribhadrasuri, Luigi Suali, The Asiatic Society, Calcutta, 1905
- Shad-darsana-samuccaya, Haribhadrasuri, M. Sivakumara Swamy, Bangalore University, Bangalore, 1977
- Shad-darsana-samuccaya, A review of the Six Systems of Hindu Philosophy, With Gunaratna's Commentary Tarkarahasyadipika, Haribhadrasuri, Gunaratna, L. Suali, The Asiatic Society, Calcutta, 1986
- Shad-darsana-samuccaya, A Compendium of Six Philosophies, Haribhadrasuri, K. Satchidananda Murty, Eastern Book Linkers, Delhi, 1986
- Vaisheshika-sutra of Kanada, Chakrabarty, Debasish, D.K. PrintWorld PVT.LTD. Delhi, 2003

(ख) असाक्षात् स्रोत -

- अष्टाध्यायी, पाणिनि, रामलाल कपूर ट्रस्ट, सोनीपत हरियाणा, २०१२
- अष्टाध्यायीभाष्यप्रथमावृत्ति, जिज्ञासु, ब्रह्मदत्त, रामलाल कपूर ट्रस्ट्, हरियाणा, वि. सं. २०७०
- वैशेषिकसूत्रम्, कणाद, सं. नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६६

- तर्कसङ्ग्रह, (तर्कदीपिका टीका), अन्नं भट्ट, सं. कांशी राम, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, २०१०
- तर्कसङ्ग्रहः, अन्नभट्टः,राकेश शास्त्री,चौखम्बा-संस्कृत-प्रतिष्ठानम्, दिल्ली, २०११
- तर्कसङ्ग्रहः(स्वोपज्ञसहितम्),अन्नभट्टः,हि.व्या.दयानन्द भार्गव, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, प्र.सं.१९७१
- तर्कसङ्ग्रहः, अन्नभट्टः,पंकजमिश्र, परिमल पब्लिकेशन्स,दिल्ली,प्र.सं.२००१
- तर्कभाषा, केशवमिश्र,सुरेन्द्रदेवशास्त्री,चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,वाराणसी,पु,मु.२००३.
- तर्कभाषा, केशवमिश्र, व्या. आचार्य विश्वेश्वर सिध्दान्तशिरोमणि,चौखम्बा संस्कृत संस्कृत वाराणसी, वि. सं. २०६२,
- तत्त्वचिन्तामणिः,गङेशोपाध्यायः,सं. आनन्दझा,दरभङ्गा-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, दरभङ्गा, प्र.सं.१९८५
- न्यायकन्दली, टीकात्रयोपेता, सं.जे एस.जेटली, वसन्त जी पारीख, ओरियन्टल रिसर्च-इंस्टीट्यूट, बडोदरा, प्र.सं.१९९१
- न्यायकन्दली, श्रीधरः, हि.व्या.दुर्गाधर झा, सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी, १९९७
- लघुसिद्धान्तकौमुदी, शास्त्री, भीमसेन, भैमी प्रकाशन,दिल्ली, २००७
- वैशेषिकसूत्रम्, कणाद, सं. नारायण मिश्र, चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणसी, १९६६
- वैशेषिकसूत्रोपस्कारः, शङ्करमिश्रः ढुण्ढिराजशास्त्री,चौखम्बा-प्रकाशनम्, वाराणसी, द्वि.सं.वि.सं.२०५९
- वैशेषिकदर्शनम्, विद्योदयभाष्य, उदयवीरशास्त्री, गोविन्दराम हासानन्द, दिल्ली, २००९
- वैशेषिकदर्शनार्य्यभाष्य, आर्यमुनिः, हरयाणा-साहित्य संस्थान, झज्जर, हरियाणा, वि.सं २०३९
- वैशेषिकदर्शन, प्रशस्तपादभाष्य, शास्त्री,ढुण्ढिराज, (हिन्दी) चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, वि.सं.२०५९
- वैशेषिक-दर्शनः विद्योदय भाष्य, उदयवीर शास्त्री, विरजानन्द वैदिक संस्थान, गाजियाबाद, १९७२
- षड्दर्शनम्, एम. सी. आर. राव, अनु पब्लिकेशन्स, मेरठ, उत्तर प्रदेश
- समराइच्चकहा, हरिभद्रसूरिरचित, सं.अनु. रमेशचन्द्र जैन, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, १९९३

- सप्तपदार्थी, सदाशिव, व्या. जिनवर्धनसूरि, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृत विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, १९७०
- अनेकान्तजयपताका, हरिभद्रसूरि, प्रथम, द्वितीय भाग, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १९४०
- अनेकान्तवादप्रवेश, हरिभद्रसूरि हेमचन्द्राचार्य ग्रन्थावली, पाटन, १९१९
- अनुयोगद्वारसूत्रम्, हरिभद्रसूरि जैन बन्धु यन्त्रालय इन्दौर, १९२८
- अष्टकप्रकरणम्, हरिभद्रसूरि सं. सागर मल जैन, अनु. अशोक कुमार सिंह, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, २०००
- आवश्यकवृत्ति, हरिभद्रसूरि, आगमोदय समिति, मेहसाना, १९१६
- आवश्यकसूत्र-शिष्यहिता टीका, (संस्कृत) हरिभद्रसूरि, आगमोदय समिति, गोपीपुरा, सूरत
- आवश्यकनिर्युक्ति, भद्रबाहुस्वामि, गाथा-४२७, भेरूलाल कनैयालाल कोठारी धार्मिक ट्रस्ट, १९७१
- उपदेशपद, हरिभद्रसूरि, टी. चन्द्रसूरि, संशोधित प्रतापविजय, मुक्तिकमल जैन मोहनमाला, बडौदा, १९२३-२५
- क्रियारत्नसमुच्चय, गुणरत्नसूरि, श्री यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, काशी, वीर.सं. २४३८
- कुवलयमाला, (प्राकृत), उद्द्योतनसूरि, सिन्धी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बम्बई
- गुर्वावली (संस्कृत), मुनिचन्द्रसूरि, श्री यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, बनारस
- जम्बूद्वीप (लघु) सङ्ग्रहणी, हरिभद्रसूरि, सं. नन्दीघोष विजय, जैन ग्रन्थ प्रकाशन समिति, संभात, १९८८
- जैनस्याद्वादमुक्तावली, षड्दर्शन सूत्रसङ्ग्रह एवं षड्दर्शन विषयक कृतयः, संयमकीर्तिविजयजी, सन्मार्ग प्रकाशन, अहमदाबाद, २०१०
- दीर्घनिकाय, सांकृत्यायन, राहुल, गौतम बुक सेन्टर, दिल्ली, १९३५
- दशवैकालिक वृत्ति, हरिभद्रसूरि, भारतीय प्राच्य तत्त्व प्रकाशन समिति, पिंडवाडा, वि.सं. २०३७
- द्विजमुखचपेटिका, हरिभद्रसूरि, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १९९१
- द्रव्यसङ्ग्रह, नेमिचन्द, सं. दरबारीलाल कोठिया, श्री गणेश प्रसादवर्णी जैन ग्रन्थमाला १६, वाराणसी, १९६६

- धर्मसङ्ग्रहणी (संस्कृत), कल्याणविजयजी, श्री देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, सूरत,१९१८
- धूर्ताख्यान, हरिभद्रसूरि, आदिनाथ नेमिनाथ उपाध्याय, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, २००२
- धूर्ताख्यान, हरिभद्रसूरि, सं. जिनविजय, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, २००२
- धर्मसङ्ग्रहणी, हरिभद्रसूरि, देवचन्द लालभाई ग्रन्थोद्धार फण्ड, बम्बई, १९१८
- धर्मबिन्दुप्रकरण, हरिभद्रसूरि, सार्वजनिक पुस्तकालय, अहमदाबाद, १९५१
- न्यायकुमुदचन्द्र, प्रस्तावना, भाग-१, न्यायशास्त्री, महेन्द्रकुमार, मानिकचन्द दिगम्बर जैन ग्रन्थमाला समिति, १९३८
- न्यायप्रवेश पर टीका, हरिभद्रसूरि, अनु.सं. सेम्पा दोर्जे, केन्द्रीय उच्च तिब्बत शिक्षा संस्थान, वाराणसी, १९८३
- नन्दी वृत्ति, हरिभद्रसूरि, सं. पुण्य विजय, प्राकृत ग्रन्थ परिषद, वाराणसी, १९६६
- न्यायसिद्धान्तमुक्तावली (प्रत्यक्ष खण्ड), श्रीविश्वनाथपञ्चाननभटटाचार्य, व्या. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९८५
- प्रमाणमीमांसा, सं. सुखलाल संघवी, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, १९८९
- पञ्चसूक्तम्, हरिभद्रसूरि, सं. जम्बू विजय, ले. चिरन्तनाचार्य, भोगीलाल लेहरचन्द इन्स्टिट्यूट आँफ इण्डोलाजी, दिल्ली, १९८६
- प्रज्ञापनाप्रदेश व्याख्या, हरिभद्रसूरि, ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, बडौदा, १९८०-८१
- पञ्चवस्तुकग्रन्थ, हरिभद्रसूरि, देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड बंबई, १९२७
- पञ्चाशक, हरिभद्रसूरि, अनु. दीनानाथ शर्मा, सं. सागर मल जैन एवं कमलेश कुमार जैन, पार्श्वनाथ विद्यापीठ, वाराणसी, १९९७
- ब्रह्मसिद्धान्तसार, हरिभद्रसूरि, ऋषभदेव केशरीमल श्वेताम्बर संस्था, रतलाम, १९९२
- योगदृष्टिसमुच्चय, हरिभद्रसूरि, सं. अनु. छगनलाल शास्त्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, १९८२
- योगबिन्दु, हरिभद्रसूरि, सं. अनु. छगनलाल शास्त्री हजारीमल स्मृति प्रकाशन, १९८२
- योगविंशिका, हरिभद्रसूरि, सं. अनु. छगनलाल शास्त्री, हजारीमल स्मृति प्रकाशन, १९८२
- योगदृष्टिसमुच्चय, हरिभद्रसूरि, जह्वेरी, देवचन्द्र लालभाई, जवेरी बाजार, बम्बई, १९१२
- ललितविस्तरा, हरिभद्रसूरि, सं. राजेन्द्र विजय, शाह चतुरदास चीमनलाल, अहमदाबाद, १९६५

- लोकतत्त्वनिर्णय, हरिभद्रसूरि, जैन धर्म प्रसारक सभा, भाव नगर, वि. सं. १९५८
- विंशतिविंशिका, हरिभद्रसूरि, सं. प्रका. काशीनाथ वासुदेव अभ्यंकर, पूना, १९३२
- वैशेषिकसिद्धान्तानां गणितीयपद्धत्या विमर्शः,नारायण गोपार डोंगरे,संपूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः, वाराणसी, प्र.सं.१९७९
- वैदिकदर्शनेषु ज्ञानम्, आत्मानन्द परमहंस, राजप्रकाशनम्, वाराणसी, प्र.स.१९८२
- श्रीमहाराणाप्रतापसिंहचरितम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, जगतहितेच्छु प्रेस, पूना, १९२०
- श्रीशिवाजीमहाराजचरितम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, मालवा स्टेशनरी एण्ड प्रिटिंग वर्क्स, इन्दौर
- श्रीपृथ्वीराजचह्वाणचरितम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर श्रीगजानन प्रिटिंग वर्क्स, इन्दौर
- श्रीमद्वल्लभाचार्यचरितम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, निर्णय सागर प्रेस बम्बई
- श्रीरामदासस्वामिचरितम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, निर्णय सागर प्रेस बम्बई, १९२२
- श्रीशीखगुरूचरितम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, सहकारी मुद्रणालय, इन्दौर, १९३३
- श्रावकप्रज्ञप्ति, हरिभद्रसूरि, सं. बालचन्द्र शास्त्री, भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली, १९८१
- श्रावक धर्म विधि, हरिभद्रसूरि, अनु. सं. विनय सागर, प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर, २००१
- शास्त्रसिद्धान्तलेश सार सङ्ग्रह, स्वामी त्रिदण्डी,, उर्मिला पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९८३
- षोडश-प्रकरणम्, हरिभद्रसूरि, महावीर श्वेताम्बर मूर्तिपूजक तपगच्छ जैन संघ ट्रस्ट, बंबई
- सम्बोधप्रकरण, हरिभद्रसूरि, लालभाई दलपतभाई, भारतीय संस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद, १९१६
- सम्यक्त्वसप्तति, हरिभद्रसूरि, देवचन्द लालभाई जैन पुस्तकोद्धार फण्ड, बंबई, १९१६
- समराइच्चकहा, हरिभद्रसूरि, अखिल भारतीय साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर, १९७६-१९८४
- सिद्धसिद्धान्तसङ्ग्रह, बलभद्र, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, १९८६
- सर्वज्ञसिद्धि, हरिभद्रसूरि, व्या. विजयामृतसूरिवर, जैन साहित्य वर्धक सभा, शिरपुर, सम्वत् २०२०
- साहित्यमञ्जरी, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर सहकारी मुद्रणालय, इन्दौर, १९३८
- सुबोधसंस्कृतमालायाः प्रथमं पुस्तकम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर मुंबई वैभव प्रेस, गिरगांव, बम्बई, १९४५
- सुबोधसंस्कृतमालायाः द्वितीयं पुस्तकम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, मुंबई वैभव प्रेस, गिरगांव, बम्बई, १९४५

- सुबोधसंस्कृतमालायाः तृतीयं पुस्तकम्, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, मुंबई वैभव प्रेस, गिरगांव, बम्बई, १९४५

गौण स्रोत –

हिन्दी ग्रन्थ -

- अवस्थी, ब्रह्ममित्र, भारतीय न्यायशास्त्र: एक अध्ययन, इन्दु प्रकाशन, दिल्ली, १९६७
- उपाध्याय, बलदेव, भारतीय-दर्शन, शारदा मन्दिर, वाराणसी, १९९६
- उपाध्याय, सरोज, वैशेषिक-दर्शन की आयुर्वेद को देन, कला प्रकाशन, वाराणसी, १९७४
- कुमार, शशिप्रभा, वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ निरूपण, डी. के. प्रिण्टवर्ल्ड प्रा. लि., दिल्ली, २०१३
- कुमार, शशिप्रभा, वैशेषिक-दर्शन परिशीलन, विद्या निधि प्रकाशन, दिल्ली, १९९९
- कापड़िया, हीरालाल रसिकलाल, अनेकान्तजयपताका, गायकवाड़ ओरिएण्टल सिरीज, बडौदा
- गैरोला, वाचस्पति, भारतीय-दर्शन, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६६
- चटर्जी एवं दत्त, भारतीय-दर्शन, पुस्तक भण्डार, पटना, १९९४
- चौधरी, गुलाब चन्द्र जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, वाराणसी, १९७३
- जैन, सागरमल, सं. जे.बी.शाह, जैन-दर्शन में द्रव्य गुण पर्याय की अवधारणा, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर, अहमदाबाद, २०११
- जैन, जगदीश, प्राकृत साहित्य का इतिहास, चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, १९६१
- जोशी, केदारनाथ, श्रीपाद शास्त्री हसूरकर, व्यक्ति एवं अभिव्यक्ति, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, १९९५
- जैन, कमल हरिभद्र साहित्य में समाज एवं संस्कृति, सं. अशोक कुमार सिंह, सोहनलाल स्मारक पार्श्वनाथ, वाराणसी, १९९४
- जिनविजय जी, हरिभद्रसूरि का समय निर्णय, सं. सागर मल जैन, पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, १९८८
- झा, किशोरनाथ, न्यायपरिचय, फणि भूषण, सं दिनेश गुह,चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, प्र.सं.१९६८
- देसाई, एस. एम., हरिभद्र का योग कार्य एवं फिजियोथेरेपी, लालभाई दलपतभाई इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डोलाजी, १९८३
- दलसुखमालवाणिया, आगमयुग का जैनदर्शन, सम्मति ज्ञानपीठ, आगरा, १९६५

- नेमीचन्द, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य के आलोचनात्मक परिशीलनम्, रिसर्च इन्स्टीट्यूट ऑफ प्राकृत जैनालॉजी और अहिंसा, बिहार, १९६५
- न्यायाचार्य, महेन्द्र कुमार, जैन-दर्शन, गणेश प्रसादवर्णी जैन ग्रन्थमाला, काशी, १९५५
- नाथूनाम, प्रेम, जैन साहित्य और इतिहास, मुम्बई, १९५६
- मेहता, मोहन लाल, जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, सं. दलसुखमालवणिया, पार्श्वनाथविद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, द्वितीय संस्करण-१९८१
- मिश्र, उमेश, भारतीय-दर्शन, प्रकाशन ब्यूरो, सूचना विभाग, लखनऊ, १९६४
- मिश्र, नारायण, वैशेषिक-दर्शन: एक अध्ययन, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, १९६८
- मिश्र, पंकज कुमार, वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, १९९८
- राधाकृष्णन्, भारतीयदर्शन, भाग-२, अनु.नन्दकिशोर, राजपाल एण्ड संन्ज, दिल्ली, १९६९
- वेदालंकार, जयदेव, भारतीय-दर्शन का इतिहास (न्याय-वैशेषिक), न्यू भारतीय बुक कार्पोरेशन, दिल्ली, २००४
- शर्मा, श्रीराम, भगवती शर्मा, न्याय एवं वैशेषिकदर्शन, युग निर्माण योजना, उत्तरप्रदेश, सं.२०५९
- शर्मा, राममूर्ति, भारतीय-दर्शन की चिन्तनधारा, चौखम्बा ओरियन्टालिया, दिल्ली, 2008
- शर्मा, राममूर्ति, न्याय वैशेषिक-एकचिन्तन, दिल्ली राष्ट्रीयसंस्कृतसंस्थानम्, दिल्ली, १९९८
- शर्मा, रमाशङ्कर, डी.डी.बदिष्टे, भारतीय दार्शनिक निबन्ध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, द्वि.सं.१९९१
- शास्त्री, धर्मेन्द्रनाथ, भारतीय-दर्शन-शास्त्र (न्याय- वैशेषिक), मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, १९५३
- शास्त्री, सुव्रतमुनि, योगबिन्दु के परिप्रेक्ष्य में जैनयोग साधना का समीक्षात्मक अध्ययन, श्री आत्मज्ञान पीठ, मानसामण्डी, भटिण्डा, पञ्जाब, १९९१
- शास्त्री नेमिचन्द्र, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन, वेशाली, १९६५
- संघवी, सुखलाल, जैन तर्कभाषा, सरस्वती पुस्तक भण्डार, अहमदाबाद, १९९३
- संघवी, सुखलाल, दर्शन और चिन्तन , सुखलाल जी सम्मान समिति, गुजरात विद्यासभा, अहमदाबाद, १९५७

- संघवी, सुखलाल, भारतीय तत्त्वविद्या, ज्ञानोदय ट्रस्ट अहमदाबाद, १९६०
- सांकृत्यायन, राहुल, दर्शन दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४३
- सिंह, बदरीनाथ, वैशेषिक-दर्शन: एक तुलनात्मक अध्ययन, आशा प्रकाशन, वाराणसी, १९७९
- सोहनलाल, जैन योग का आलोचनात्मक अध्ययन, जैनधर्म प्रचार समिति, अमृतसर, १९८१
- संघवी, सुखलालजी, "समदर्शी आचार्य हरिभद्र", राजस्थान ओरियंटल सीरिज, जोधपुर, १९६३
- सिंह, बदरीनाथ, वैशेषिक-दर्शन: एक तुलनात्मक अध्ययन, आशा प्रकाशन, वाराणसी, १९७९
- सिन्हा, हरेन्द्र प्रसाद, भारतीय-दर्शन की रूपरेखा, मोतीलाल बनारसीदास, १९९२
- सांकृत्यायन, राहुल, दर्शन दिग्दर्शन, किताब महल, इलाहाबाद, १९४३
- हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द, हरिभद्रसूरिचरित्र, श्री यशोविजय जैन ग्रन्थमाला, भावनगर
- हिरियन्ना, एम., भारतीय-दर्शन की रूपरेखा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, १९६९

मराठी ग्रन्थ -

- हसूरकर, श्रीपाद शास्त्री, नीतिधर्मशिक्षणाचें, दी मालवा स्टेशनरी एण्ड प्रिंटिंग वर्क्स लि. इन्दौर

गुजराती ग्रन्थ -

- दोशी, बेचरदास जीवराज, जैनदर्शन (गुजराती), १२ बी भारती निवास सोसाइटी, एलिस ब्रिज, अहमदाबाद
- देसाई, मोहनलाल दलीचन्द, जैनसाहित्यनो सङ्क्षिप्त इतिहास (गुजराती), जैन श्वेताम्बर कान्फ्रन्स, पायधूनी, बम्बई

अंग्रेजी ग्रन्थ -

- Agrawal, M.M, Aspects of indian philosophy, Shree publishing House, New Delhi, 1968
- Bahadur, K.P. The Wisdom of Vaiśeṣika, Sterling Publishers Pvt., Ltd., New Delhi, 1979
- Bhaduri, Sadananda, Studies in nyaya-Vaisheshika metaphysics, bhandarkar oriental research institute poona, first edition 1947

- Bhattacharyya, Janki Ballabha, Negation, Indian studies, first edition, 1965
- Chattarjee, Satish, Chandra, Nyaya Theory of Knowledge (A Critical Study of Some Problems of Logic and Metaphysics, University of Calcutta, Calcutta, 1965
- Dasgupta, S.N, History of Indian Philosophy (5 vols.), Motilal Banarasidas, Delhi, 1975
- Faddegon, Barend, The Vaiśeṣika System, Johannes Muller, Amsterdam, 1918
- Gough, A.E, The Vaiśeṣika Aphorisms of Kaṇāda, Oriental Books Reprint Corporation, New Delhi, 1975
- Gajendragadkar, Veena, s, kanada Doctrine of Padarthas, Sri satguru publications, delhi, first edition 1988
- H.UI, ed. F.W.Thomas,The Vaisheshika Philosophy according to the Dasapadarthasastra, Choukhamba Sanskrit Series Office, Varanasi,1962
- Hallfass, Wilhelm, On being and What There Is, Indian Book Center, Delhi, 1993
- Hirano, Katsunori,The Nyāya- Vaiśika Philosophy and text Science, Motilal Benarsi Das,Delhi, 2012
- Kumar, Shashi Prabha, Classical Vaiśeṣika in Indian philosophy, Routledge, Park Square, Milton Park, Abingdon, New York, 2013
- Kaviraj, Gopinath, The History and Bibliography of Nyaya- Literature, Sampurnanand Sanskrit University,Varanasi,Re.ed.1982
- Max Muller, F, Six Systems of Indian Philosophy, Chaukhamba Sanskrit Series, Varanasi, 1971
- Radhakrishnan, S., Indian Philosophy, George Allen and Unwin Ltd., London, 1940
- Shah, Nagin, j., Indian philosophy, Sanskrit Sanskriti Granthamala, Ahmedabad, 1998
- Thakur, Anantalal, Origin and Development of the Vaisheshika System, Center for Studies in Civilizations, 2003
- Umesh, Mishra, Nyaya Vaisheshika Conception of Matter in Indian Philosophy, Bhartiya kala Prakashan, Delhi, 2006

अप्रकाशित ग्रन्थ –

- काव्यप्रकाश भारती टीका, अप्रकाशित
- न्यायकुसुमाञ्जलि परिमल टीका, अप्रकाशित
- महाराष्ट्रसतीनवरत्नहारः, अप्रकाशित
- महाराष्ट्र क्षत्रियवीररत्नमञ्जूषा, अप्रकाशित
- महाराष्ट्रब्राह्मणवीररत्नमञ्जूषा, अप्रकाशित
- राजस्थानसतीनवरत्नहारः, अप्रकाशित

- विजयनगरसाम्राज्यम्, अप्रकाशित
- वेदान्तपरिभाषाप्रदीपिका टीका, अप्रकाशित
- श्रीवर्धमानस्वामिचरितम्, अप्रकाशित
- श्रीबुद्धदेवचरितम्, अप्रकाशित
- श्रीशङ्कराचार्यचरितम्, अप्रकाशित
- शङ्कर चम्पू, अप्रकाशित
- सौराष्ट्रवीररत्नावलिः, अप्रकाशित

शोध-प्रबन्ध एवं लघु-शोध प्रबन्ध –

- कुमार, शशिप्रभा, वैशेषिक-दर्शन में पदार्थ निरूपण, प्रकाशन विभाग, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९९२
- कुमारी, दर्शना, वैशेषिकसूत्रों में प्रमाणमीमांसा, (अप्रकाशित, लघुशोधप्रबन्ध), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९९६
- जैन, सपना, वैशेषिकदर्शन एवं जैन-दर्शन में परमाणुवाद, (अप्रकाशित, लघुशोधप्रबन्ध), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, २०१०
- तिवारी, अशोक, वैशेषिकसूत्रों में आचारमीमांसा, (अप्रकाशित, लघुशोधप्रबन्ध) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९९०
- द्विवेदी, तरूण कुमार, हरिभद्रसूरिकृत षड्दर्शनसमुच्चय के मूलाधार, (अप्रकाशित शोध-प्रबन्ध २०१०) दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- मिश्र, पंकज, वैशेषिक एवं जैन तत्त्वमीमांसा में द्रव्य का स्वरूप, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, १९९८
- मीणा, अनीता, प्रशस्तपादभाष्य में प्रतिपादित पदार्थ साधर्म्य-वैधर्म्य, (अप्रकाशित, लघुशोधप्रबन्ध), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, २०११
- राठौर, भूपेन्द्रकुमार, वैशेषिक-दर्शन के प्रमुख प्रमाणिक ग्रन्थों के सन्दर्भ में सर्वदेवाचार्य रचित प्रमाणमञ्जरी का विवेचनात्मक अध्ययन, (पी. एच. डी.) कोटा विश्वविद्यालय, राजस्थान, २००८
- राज, किरेश, सर्वदर्शनसङ्ग्रह में औलूक्यदर्शन, (अप्रकाशित, लघुशोधप्रबन्ध), दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली
- राज किशोर, षड्दर्शनसमुच्चय में प्रतिपादित वैशेषिक-दर्शन एक अनुशीलन, (अप्रकाशित, लघुशोधप्रबन्ध), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, २०१४

- विश्वेशः, वैशेषिकसूत्रेषु शब्दार्थविमर्शः, (लघुशोधप्रबन्ध), जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, २०११
- शर्मा, नीलम, टी. गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित 'सर्वमतसङ्ग्रह' का अध्ययन, दि. वि. दि., २०१०
- सिंह, सरला, जैनधर्म के योगशास्त्र विषयक ग्रन्थ तथा पातञ्जल योगदर्शन का तुलनात्मक अध्ययन, (पी. एच. डी.) आगरा विश्वविद्यालय, आगरा, १९६८

शोध-पत्र एवं पत्रिकाएँ :

हिन्दी -

- जे.बी, शाह, "सम्बोधि", अङ्क. Xxxiv, लालभाई दलपतभाई भारतीय संस्कृति विद्यामन्दिर अहमदाबाद, २०११
- संघवी, सुखलालजी, "समदर्शी आचार्य हरिभद्र", राजस्थान ओरियंटल सीरिज, सं. ६८, जोधपुर, १९६३

अङ्ग्रेजी -

- Chakravorty, Nisith Nath, "Nyāya-Vaiśeṣika Atomism (paramāṇuvāda) : A critical exposition", Vishwabhārati Journal of philosophy, 1992
- Jha, Vasudev, A, "A lost work of Prasastpada", PAIOC20 [Proceedings of the All-India Oriental Conference (Listed by Volume and Year)], 1-36(1986-87), 1959,299-302

Russian -

- GOSTEEVA, E.I. "Study of Atom in the Vaiśeṣika system (in Russian)", , Vedāntakeśari, Madras, १९९२

संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश -

- अमरसिंह, अमरकोश, निर्णय सागर प्रेस, बम्बई, १९६१
- अभिमन्यु, मन्नालाल, अमरकोष, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, सं. २०१२
- अवस्थी, बच्चूलाल, भारतीय-दर्शन बृहत्कोश, (प्रथम-चतुर्थ भाग) शारदा पब्लिशिंग हाउस, २००४
- कुमार, शशिप्रभा, अनु., संस्कृतसूक्तिसमुच्चयः, (अष्टमो भागः), दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली सर्वकारः, दिल्ली, २००१

- कुमार शशिप्रभा, बृहद् वैशेषिक कोश, (अप्रकाशित, विशिष्टसंस्कृताध्ययनकेन्द्र, ज. ने. वि. नई दिल्ली)
- वर्णेकर, श्रीधर भास्कर, संस्कृत वाङ्मयकोश, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, द्वि.सं. २००१
- शुक्ल, दीनानाथ, भारतीय-दर्शन परिभाषाकोश, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, १९९३

अंग्रेजी शब्दकोश

- Lacey, A.R., ‘A Dictionary of Philosophy’, Routlege & Kegan Paul, London 1976
- Potter, Karl H., Encyclopedia of Indian Philosophies, Vol.1-2,` Motilal Banarasidas, Delhi, 1970
- Potter, Karl H., Encyclopedia of Indian Philosophy(upto Gangesha),vol 2,5, Motilal Benarsi Das,Delhi,1977
- Willams, Monier, English-Sanskrit Dictionary, Munshiram Manoharlal, Delhi, 1976

अन्तर्जालीय स्रोत (E-Sources) :

- Analytic Philosophy in *Early Modern India* (*Stanford* Encyclopedia of ...
- *plato.stanford.edu/entries/early-modern-india* /india/,p.1-modern-http://plato.stanford.edu/entries/early
- *Epistemology* in Classical *Indian* Philosophy (*Stanford* Encyclopedia)
- http://plato.standford.edu/entries/epistemology-india/, pp.1-28
- http://www.worldcat.org
- http://books.google.co.in/books?id=fZ6qQMNCsW8C&redir_esc=y
- http://books.google.co.in/books?id=jdjNkZoGFCgC&redir_escy
- http://books.google.co.in/books/about/Jainism.html?id=WzEzXDk0v6C
- http://www.jaindharmonline.com/acharya/haribadr.htm
- http://jainsquare.com/2012/04/14/acharya-haribhadra-suri/
- http://www.britannica.com/EBchecked/topic/25527/Haribhadra
- http://www.jainlibrary.org/index1.php